साहित्य अमृत

मासिक

वर्ष-२४ अंक-११ ❖ पृष्ठ ८४ | ज्येष्ठ-आषाढ, संवत्-२०७६ | जून २०१९

संस्थापक संपादक

स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र

❖

पूर्व संपादक

स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

❖

संपादक

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

❖

प्रबंध संपादक

श्यामसुंदर

❖

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

❖

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२

फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

❖

शुल्क

एक अंक —₹ ३०

वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००

वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००

विदेश में

एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)

वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

❖

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२
से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६,
कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

❖

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

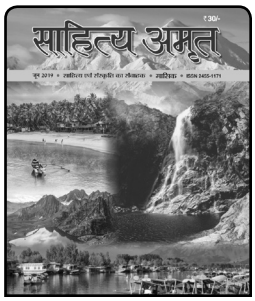

इस अंक में

संपादकीय

लोकतंत्र का भविष्य एवं लोकसभा का चुनाव ४

प्रतिस्मृति

चेतना/ *नवल बिहारी मिश्र* १०

कहानी

बोनस में आशीर्वाद/ *मालती जोशी* १६

अनुपयोगी/ *मनमोहन गुप्ता* २४

मातेव पुत्रान् रक्षस्वी/ *जगदीश खरे 'जीवमित्र'* ३०

काँटोंवाला बरगद/ *श्याम सुंदर चौधरी* ३८

दो कौड़ी का न्याय/ *विजय कुमार सिंह* ४४

घर वापसी/ *रामगोपाल राही* ५०

आँच/ ऋचा सत्यार्थी ७२

लघुकथा

कंधे पर लाश/ *चित रंजन गोप* २६

शेर को सवासेर/ *श्यामसुंदर गर्ग* ३७

दिखावा/ श्यामसुंदर गर्ग ७४

आलेख

मौलिकता : भारतीय और भारतेतर आचार्यों की दृष्टि/ *बलराम अग्रवाल* २२

महात्मा/ लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला ३४

कबीर साहित्य की सामाजिक प्रासंगिकता/ राहुल ४६

जल है तो सुनहरा कल है/ दुर्गादत्त ओझा ५३

भारतीय ज्ञान-परंपरा/ वेदप्रकाश ६४

कविता

उर्वशी की कलम से/ *उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'* २१

जीवन उधार जैसा है/ *जहीर कुरेशी* ३३

सच्चे मित्र हैं पेड़/ *सूरजपाल चौहान* ५५

भावी पीढ़ी के लिए/ *दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'* ६०

यह जग मेरा, यह जग तेरा/ *घमंडीलाल अग्रवाल* ६१

डायरी-अंश

मातृ-दिवस/ *रामदरश मिश्र* १५

स्मरण

शेरजंग गर्ग : अपनी किस्म का एक अदद व्यंग्य-गुरु/ *हरीश नवल* २७

राम झरोखे बैठ के

अपने-अपने अवसाद/ *गोपाल चतुर्वेदी* ४१

साहित्य का भारतीय परिपार्श्व

कोई तो है/ *गायत्री सराफ* ५६

व्यंग्य

हुक्मरान की भैंस/ *मीना अरोड़ा* ६२

साहित्य का विश्व परिपार्श्व

जीवन-झरना/ *एमिलिया पार्डो बाजान* ६६

ललित-निबंध

मैं तीसरे गाँव का आदमी हूँ/ *राजीव रंजन* ६८

यात्रा-वृत्तांत

द्वारका-सोमनाथ दर्शन/ *विनोद शंकर गुप्त* ७५

बाल-संसार

बताओ तो जानें/ *माणिक तुलसीराम गौड़* ७८

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ७९

वर्ग-पहेली ८०

साहित्यिक गतिविधियाँ ८१

संपादकीय

लोकतंत्र का भविष्य एवं लोकसभा के चुनाव

देश इस समय २०१९ के लोकसभा के चुनावों की गरमी में तप रहा था। पड़ोसियों के ही नहीं, सारे विश्व की आँखें भारत में आम चुनाव के नतीजों की ओर लगी थीं। 'साहित्य अमृत' का जून मास का अंक आपको मिलने के पहले चुनाव के नतीजे जनता के सामने आ चुके होंगे। कौन जीतेगा और अगली सरकार किसकी होगी, हम इस कयास में नहीं पड़ना चाहते हैं। चुनाव की सातवीं कड़ी अभी बाकी है। चुनाव के सातवें पड़ाव पर पहुँचते-पहुँचते देश में राजनीतिक माहौल विकृत हो गया है। छठे पड़ाव में पश्चिम बंगाल में जिस प्रकार हिंसा और पारस्परिक आरोप-प्रत्यारोप का जो वातावरण बना, वह एक प्रजातंत्रात्मक देश के लिए अशोभनीय एवं शोचनीय है। इस स्तंभ में हम निरंतर गिरती हुई राजनैतिक संवाद की भाषा की आलोचना समय-समय पर करते रहे हैं। लोकतंत्र के भविष्य के लिए हम इसको एक गंभीर चुनौती मानते हैं। चुनावी ऊँट किस करवट बैठता है, यह २३ जून की संध्या तक स्पष्ट हो जाएगा। अगली सरकार के बनने की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाएगी। इस समय प्रार्थना यही कर सकते हैं कि १९ जून के अंतिम चुनावी पड़ाव में जनता द्वारा शांतिपूर्वक मतदान हो सके। चुनाव निष्पक्ष हों, अहिंसक वारदातों से बचा जा सके, यही हर नागरिक की कामना है। जिस प्रकार की अवांछनीय और हिंसक घटनाएँ पश्चिम बंगाल में घटित हुईं, वे हमारे लोकतंत्र की छवि पर एक काला धब्बा हैं। यह सोचने को विवश होना पड़ता है कि क्या यह वही बंगाल है, जिसके विषय में गोपाल कृष्ण गोखले ने बड़े गौरव से सौ साल पहले कहा था कि 'जो बंगाल आज सोचता है, पूरा देश कल सोचेगा।' बंगाल ही आधुनिक भारत का जन्मदाता है। भारतीय नवजागरण अथवा नवोत्थान का प्रारंभ बंगाल से हुआ था। हमारे स्वराज्य के युद्ध के मार्ग में बंगाल ही समूचे देश का पथ-प्रदर्शक बना। क्या अब वह उदाहरण ममता बनर्जी के नेतृत्ववाली पश्चिम बंगाल की सरकार के अंतर्गत संभव है?

सात कड़ियों वाला चुनाव अप्रत्याशित था। चुनाव कराने का दायित्व चुनाव आयोग को है। चुनाव आयोग आकलन करता है, तारीखें निश्चित करने के पहले कि शांतिपूर्ण चुनाव में क्या बाधाएँ आ सकती हैं, कहाँ और कितनी हिंसक गतिविधियों की आशंका है। शांति बनाए रखने के लिए रक्षादल कब और कैसे पहुँचाए जा सकते हैं। साधारणतया यह दायित्व राज्य सरकार की पुलिस का है। दुर्भाग्यवश जनता को उसकी निष्पक्षता में विश्वास कम होता जा रहा है। दूसरे, स्थानीय पुलिस को अपने दैनिक अन्य कर्तव्यों का निर्वाह भी करना होता है। अतएव चुनाव के समय केंद्र के रक्षाबलों की आवश्यकता होती है। साधारणतया वे जिला अधिकारी के आदेशानुसार आवश्यकता होने पर कहाँ रखे जाएँ, तय होता है। जम्मू-कश्मीर और उत्तरी-पूर्वी राज्यों में आतंकवाद की जटिल समस्या है। उसको नजरंदाज नहीं किया जा सकता। लेकिन संविधान ने चुनाव आयोग को अधिकार दिया है कि चुनाव की प्रक्रिया के दौरान किसी प्रकार की आशंका हो तो वे अधिकारियों का भी बदलाव कर सकते हैं। १९५१ से लेकर आजतक के सब चुनावों को हमें देखने का अवसर मिला है। अधिकारियों और पुलिस के बढ़ते राजनीतीकरण की वजह से इस तरह की शिकायतों में इतनी बढ़ोतरी हुई है, जैसा कभी सोचा नहीं गया था। इससे भी चुनाव आयोग का काम बढ़ गया है। प्रारंभ में चुनाव पर्यवेक्षकों की आवश्यकता नहीं होती थी, क्योंकि स्थानीय अधिकारियों में लोगों का विश्वास था। राज्य सरकारों को यह सब नागवार लगता है। पश्चिम बंगाल के पंचायत के चुनाव की धाँधली के कारण चुनाव आयोग को अधिक सतर्कता बरतनी पड़ी। रिगिंक और अनियमितताएँ पहले भी होती थीं, पर बड़े स्तर पर नहीं। मीडिया की उपस्थिति भी इतनी नहीं थी। हर नागरिक वोट का महत्त्व भी धीरे-धीरे समझने लगा है। इससे चुनावी माहौल में वैसे भी बहुत गंभीरता आ रही है।

भारतीय चुनाव आयोग अपनी दक्षता और निष्पक्षता के लिए जाना जाता है। पहले एक मुख्य चुनाव अधिकारी होता था। टी.एन. सेशन के कार्यकाल में पी.वी. नरसिंहाराव की सरकार ने कानून में परिवर्तन कर तीन सदस्यों का आयोग बना दिया। टी.एन. सेशन को अपने अधिकार क्षेत्र के उल्लंघन पर सर्वोच्च न्यायालय से डाँट भी खानी पड़ी थी, क्योंकि संविधान सब अधिकारियों से अपनी समीओं में रहकर कार्य करने की अपेक्षा करता है। बढ़ते हुए राजनीतिक वातावरण में चुनाव आयोग की आलोचना शुरू हो गई। प्रधानमंत्री मोदी की बढ़ती हुई लोकप्रियता के कारण विरोधी दलों में कोई गठबंधन हो, इसकी आवश्यकता सब दल समझ रहे थे। पर वे किसी प्रकार की रूपरेखा तय नहीं कर पा रहे थे, क्योंकि अलग-अलग क्षेत्रों में इस दलों का

आपसी टकराव था। सब विरोधी दल कहने लगे कि लोकसभा चुनाव के बाद इस विषय में निर्णय करेंगे। रोज समाचार-पत्रों में पढ़ने को मिलता है कि तेलंगाना के मुख्यमंत्री चंद्रशेखर राव भाजपा और कांग्रेस को छोड़कर फेडरल फ्रंट बनाना चाहते थे। ममता बनर्जी भी इससे सहमत बताई गईं। दूसरी ओर आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नायडू इक्कीस-बाईस दलों के महागठबंधन की कोशिश में थे। प्रगति किसी दिशा में नहीं दिखती है। आंध्र प्रदेश में विधानसभा के चुनाव भी हो रहे हैं। वहाँ उनकी पार्टी का चुनावी भविष्य डाँवाँडोल बताया जा रहा है। गुजरात के विधानसभा चुनाव के बाद और कर्नाटक में कांग्रेस तथा देवगौड़ा की पार्टी की सरकार बनने के बाद विरोधी दलों की एकजुटता का प्रश्न बड़े जोरों से उठा, पर अभी तक टाँयटाँय फिस्स, कोई नतीजा नहीं। सबसे बड़ा कारण यह कि प्रधानमंत्री पद के अनेक प्रत्याशी हैं—ममता बनर्जी, मायावती, देवगौड़ा और पवार। राहुल गांधी को तो डीएमके अध्यक्ष एमके स्टालिन ने प्रधानमंत्री के पद का दावेदार पहले ही घोषित कर दिया। अब गुलाम नवी आजाद कह रहे हैं कि कांग्रेस महागठबंधन के चुने गए किसी और दल का समर्थन कर सकती है। कांग्रेस के प्रवक्ता का दावा है कि कांग्रेस सबसे पुरानी देशव्यापी पार्टी है, अन्य विरोधी दलों की तुलना में उसके सांसद सबसे अधिक आने की संभावना है, अतएव प्रधानमंत्री कांग्रेस का ही होना चाहिए। राहुल गांधी ने कुशलता और आक्रामकता के साथ प्रदर्शन चुनावों में किया है। शरद पवार ने कहा था कि अब वे चुनाव लड़ेंगे। अंत में अपने स्वयं के दल और परिवार में फूट होने के बाद कहा, वे चुनाव नहीं लड़ेंगे। बड़े राजनैतिक घाघ हैं पवार। प्रधानमंत्री बनने की लालसा अभी छोड़ी नहीं है। 'आप' के केजरीवाल ने तो अपनी पार्टी और अपनी असलियत स्वयं दिखा दी है। दिल्ली में भाजपा को हराने के लिए कांग्रेस के साथ चुनाव लड़ा जाए, यह केजरीवाल और राहुल गांधी के बीच का हास्यास्पद तमाशा सबने देखा। केजरीवाल का कोई सिद्धांत नहीं, उनको केवल एकछत्र सब अधिकार चाहिए। आप के एक प्रत्याशी के बेटे ने तो सार्वजनिक कर दिया कि उसके पिता ने टिकट के लिए ६ करोड़ रुपए केजरीवाल को दिए हैं। नई राजनीति प्रारंभ करने का छलावा कर राजनीति को और गंदा करने में ही केजरीवाल प्रसन्न है। आप के भविष्य पर तो प्रश्नचिह्न है ही। केजरीवाल का विश्वास केवल बयानबाजी में है। नाच न आवे आँगन टेढ़ा; जो कानूनी अधिकार दिल्ली सरकार के हैं, उनका उपयोग कर दिल्ली के विकास में सहयोग करने की जगह उन्होंने केंद्र से टकराव का रास्ता अपनाया। बेतुकी व बेबुनियादी बातें कहने में माहिर हैं। उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि इंदिरा गांधी की तरह उनकी हत्या उनके अंगरक्षकों द्वारा होने का उन्हें डर है। उनकी महारथ नरेंद्र मोदी को बुरा-भला कहने और ऊलजलूल वक्तव्य देने में है। मायावती ने भीमसेना के अध्यक्ष चंद्रशेखर को कहना शुरू किया कि वह भाजपा की बी टीम है। उसने निश्चय किया कि भीमसेना और वह स्वयं चुनाव नहीं लड़ेंगे। मायावती अपनी पार्टी के अस्तित्व का प्रश्न है। २०१४ के चुनाव में बसपा का एक भी प्रत्याशी लोकसभा में नहीं जा सका। ऐसे में तो उनका नेतृत्व भी खतरे में पड़ गया। यही कारण है कि सब प्रकार की अवमाननाओं और निरादर बरदाश्त कर उन्होंने अखिलेश यादव से बुआ-भतीजे का रिश्ता निकाला। राष्ट्रीय लोकदल भी इसमें शामिल हो गया। पर कांग्रेस से कोई समझौता नहीं हो सका। अतएव कांग्रेस अलग-थलग उत्तर प्रदेश में है अकेले अपने बलबूते पर। उत्तर प्रदेश के चुनावों के नतीजों का असर अगली लोकसभा में कौन सरकार बनाने में सक्षम होगा, इसका निर्णय हो सकता है। प्रश्न जनता के सामने है कि क्या विपक्षी दल, जिनके अपने-अपने स्वार्थ हैं, आकांक्षाएँ हैं, टकराव है, एक ऐसी सरकार बना सकते हैं, जो अपने दायित्व को पूरा कर सकने में समर्थ हो। राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण देश के भविष्य के लिए घातक हो सकता है। यक्ष प्रश्न यह है कि क्या मायावती और अखिलेश यादव के अनुयायी अपने-अपने वोटों का ट्रांसफर गठबंधन के प्रत्याशियों के लिए कहाँ तक करा पाएँगे। पश्चिम बंगाल में ३० वर्ष शासन के उपरांत अब भाजपा के बढ़ते प्रभाव से सी.पी.एम. का वजूद भी खतरे में है। पूर्व सी.पी.एम. मुख्यमंत्री ने कहा है कि सी.पी.एम. समर्थक धीरे-धीरे भाजपा में जा रहे हैं। उत्तर प्रदेश में सपा और बसपा का गठबंधन विचित्र है। केवल गेस्ट हाऊसवाली घटना से नहीं, दोनों दलों में जमीनी स्तर पर जबरदस्त विरोध है। दलितों को यादवों से शोषण और उत्पीड़न की शिकायत सबसे अधिक है। अतएव मैनपुरी से मुलायम सिंह को अधिकतम वोटों से जिताने की सभा में मायावती और मुलायम सिंह का मिलना दोनों के हाव-भाव से सहज ही पता लग रहा था। यादवों में चाचा शिवपाल अखिलेश और रामगोपाल के विरोध में है। अखिलेश यादवों, मुसलमानों और जाटवों के मतों पर अपने को आश्वस्त मानते हैं। ममता और मायावती स्वयं या उनके गुर्गे प्रधानमंत्री के पद के लिए अपने-अपने नेता की दावेदारी पेश करते रहते हैं। काठ की हाँड़ी बार-बार नहीं चढ़ती है। समय-समय पर दोनों ने ही राहुल को प्रधानमंत्री के पद के लिए अपरिपक्व कहा है। विरोधी दल पूर्ण विश्वास प्रकट कर रहे हैं और डंके की चोट पर कह रहे हैं कि मोदी का कार्यकाल समाप्त हो रहा है और उनकी सरकार बनेगी। उधर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और भाजपा अध्यक्ष अमित शाह का दावा है कि वे और अधिक सीटें जीतकर सरकार बनाएँगे। कौन विजयी होता है और सरकार किसकी बनती है, यह रहस्य मतदान मशीनों में छिपा है और देश के समाने २३ मई की शाम तक उद्घाटित होगा। यदि नरेंद्र मोदी और एन डी ए को स्पष्ट बहुमत नहीं दिखाई देता है, तब माननीय राष्ट्रपति की भूमिका महत्त्वपूर्ण रहेगी।

पश्चिम बंगाल में अमित शाह के रोड शो के समय जो उत्पात हुआ, उसके लिए कौन उत्तरदायी है, इस विवाद में जाना संभव नहीं है। यह सब समुचित जाँच के बाद ही पता लगेगा। किंतु जो लोग सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में विश्वास करते हैं, वे ईश्वरचंद्र विद्यासागर की मूर्ति की तोड़-फोड़ करेंगे, यह बात गले नहीं उतरती है। हमारे बहुत सम्मानीय महापुरुषों की न नसलवादियों ने पहले तोड़फोड़ की। उनमें से ईश्वरचंद्र विद्यासागर भी थे। वे विद्या के ही नहीं, करुणा के सागर भी थे। चुनावी

दंगल में इस प्रकार के कृत्य सर्वथा निंदनीय हैं।

कभी लगता था कि चुनाव के मामले में कुछ विरोधी दल एक पेशकश कर रहे हैं। वे चुनाव में हारने के बहानों की खोज में हैं। पहले चुनाव आयोग पर आरोप लगाया गया कि सात चरणों का चुनाव भाजपा के कहने पर किया गया है, उनके फायदे के लिए। प्रशासनिक कठिनाइयों को उन्होंने नकार दिया। ये दल ई.वी.एम. का विरोध काफी समय से करते आ रहे हैं। जब वे स्वयं जीतते हैं, उनका दल जीतता है तो ई.वी.एम. ठीक हैं। जब भाजपा जीतती है तो रिगिंक का आरोप शुरू करते हैं। कपिल सिब्बल ने यह नाटक इंग्लैंड में भी शुरू करवाया। एक विशेषज्ञ को दिखाया गया, जो यह साबित करने की कोशिश कर रहा था कि कैसे रिगिंग की जाती है, पर वह देखनेवालों को संतुष्ट नहीं कर सका। कपिल सिब्बल तो एक नया शोषा छेड़ते रहते हैं, जैसे यदुरप्पा की तथाकथित डायरी का। साथ-साथ यह भी कहते हैं, वे आरोप नहीं लगा रहे, केवल बता रहे हैं, जिसकी जानकारी पहले से सबको है, और जिस आरोप को कर विभाग ने सही नहीं माना है। वे सोचते हैं, कीचड़ उछालो, कुछ-न-कुछ तो दूसरे को लगेगा ही। ई.वी.एम. के मामले में शरद पवार ने तो पराकाष्ठा कर दी, जब कहा कि यदि उनकी बेटी सुप्रिया हारती है, तो साबित हो जाएगा कि ई.वी.एम. में रिगिंग की जा सकती है। शरद पवार के अनुसार मानो ईश्वर की व्यवस्था है कि उनकी बेटी सुप्रिया सदैव वारामती से जीतेगी। शीर्ष न्यायालय ने परची की जाँच व्यवस्था हर पोलिंग बूथ पर पाँच प्रतिशत कर दी, पर विरोधी दलों को उससे भी संतोष नहीं हुआ। वे कम-से-कम ५० फीसदी पर यह व्यवस्था चाहते थे, पर शीर्ष न्यायालय ने उनकी माँग को नकार दिया। अब सब रोष चुनाव आयोग पर है। उसको भाजपा के कब्जे में बताया जा रहा है। सब पूर्व चुनाव कमिश्नरों ने इस बात की ताईद की कि ई.वी.एम. के चुनाव की प्रक्रिया दोषरहित है, पर फिर भी इन दलों को तसल्ली नहीं। मजे की बात है कि जो लोग वैधानिक संस्थाओं के कमजोर हो जाने का दोष मोदी सरकार पर लगा रहे हैं, चुनाव आयोग की छवि को बिगाड़ने के लिए वे ही दोषी हैं। ममता, मायावती और राहुल ने चुनाव आयोग पर आरोप लगाए हैं। चुनाव आयोग के पास मानहानि का दावा करने का अधिकार नहीं है। जो भी चाहे, कुछ भी कह सकता है, आरोप लगा सकता है। इतने बड़े चुनाव में, इतनी शिकायतों में कभी-कभी चुनाव आयोग गलती कर सकता है। कभी फैसले में देरी हो सकती है। उनको दुरुस्त करने के रास्ते हैं, पर संस्था की गरिमा तो बनाए रखनी ही होगी। शायद चुनाव आयोग ने प्रारंभ में अत्यंत आत्म-नियंत्रण से व्यवहार किया, उसका खामियाजा उसको भुगतना पड़ रहा है। शीर्ष न्यायालय ने जब उसके दायित्व और अधिकारों का ध्यान दिलाया तथा उसे लगा कि परिस्थितियाँ बन रही हैं कड़े कदम उठाने की। पश्चिम बंगाल में उसने जब ऐसा किया तो ममता बरस पड़ीं। अन्य विरोधी दलों ने ममता का ही समर्थन किया। ये सब राजनीति से ही प्रेरित हैं। ममता बनर्जी का चुनाव आयोग पर बिफरना समझा जा सकता है। टीएमसी का बना-बनाया खेल बिगड़ रहा है। टीएमसी की धाँधली पर किसी प्रकार का अंकुश उन्हें पसंद नहीं है। चुनाव आयोग निष्पक्ष नहीं है, नरेंद्र मोदी और अमित शाह के इशारे पर कार्य कर रहा है, आदि उनके आरोप हैं। अन्य विपक्षी दल भी अपने-अपने ढंग से यही आरोप मढ़ रहे हैं। सब कठिनाइयों के होते हुए भी चुनाव आयोग को निर्णय शीघ्र और निर्भयता से लेने चाहिए। निर्णयों से सबको तो संतुष्ट नहीं किया जा सकता है। तीन सदस्यों के आयोग में एक सदस्य ने कुछ विषयों में अपना मतभेद बताया। हम समझते हैं, उनकी राय को काररवाई के रिकॉर्ड में शामिल करने में कोई हर्ज नहीं है। वैसे दो अन्य सदस्यों का मत ही चुनाव आयोग का निर्णय माना जाएगा। इस व्यर्थ के वाद-विवाद से चुनाव को बचना चाहिए था। यह स्पष्ट है कि राहुल गांधी, ममता बनर्जी और मायावती आदि का अनर्गल प्रलाप चुनाव आयोग के विरुद्ध अवांछनीय है। चुनाव आयोग को भी शीघ्रता और निष्पक्षता से अभाव-अभियोगों को दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए, और आगे के लिए सबक लेना चाहिए ताकि आयोग की विश्वसनीयता पर किसी प्रकार का धब्बा नहीं लगने पाए।

काफी समय तक कांग्रेस ने सस्पेंस बनाए रखा कि प्रियंका गांधी वाड्रा राजनीति में प्रवेश करेंगी। वैसे वे राजनीति में तो बहुत पहले से थीं, पर उनका क्षेत्र सीमित था। अब वह कांग्रेस की जनरल सेक्रेटरी हैं और उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों की उनकी विशेष जिम्मेदारी है। उन्होंने प्रयागराज से वाराणसी की यात्रा मोटरबोट द्वारा की। जगह-जगह जनता से मिलीं, मंदिरों में पूजा की, किंतु इस सबमें कृत्रिमता अधिक दिखाई देती थी। ऐसा नहीं लगता था कि जो वह कर रही हैं, उसमें उनकी रुचि या विश्वास वास्तव में है। रोड शो और रैलियों में लोग कुतूहलवश आते हैं, उससे यह कहना कि वे कांग्रेस को मत देंगे ही, यह सोचना सही नहीं होगा। फिर एक और सस्पेंस बनाया गया कि क्या वह मोदी के खिलाफ चुनाव लड़ेंगी? वह स्वयं कहती रहीं कि यह कांग्रेस अध्यक्ष के आदेशों पर निर्भर है। जैसा कि बहुत लोगों का विचार था, उन्होंने चुनाव के मैदान में न उतरने का निर्णय लिया। अच्छा ही हुआ, क्योंकि पूरे परिवार की आय और जायदाद का विवरण देने में उन्हें काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। राबर्ट वाड्रा के आर्थिक मामले पहले से ही काफी विवादग्रस्त हैं। अतएव चुनाव न लड़ने का निर्णय समझदारी का ही काम रहा।

इस चुनाव में जितने भद्दे-भद्दे अपशब्दों का प्रयोग किया गया, वह चिंता का विषय है। मोदी के लिए जिस तरह की गालियाँ दी गईं, उनका तसकरा उन्होंने स्वयं किया। प्रधानमंत्री चोर है, मोदी का मुँह फीका पड़ गया, उनका सीना सिकुड़ गया है, यह सब मोदी के पिता और माता के बारे में कुछ नहीं कहा, किंतु मोदी उनके पिता, नानी तथा प्रपितामह के विषय में अनुचित शब्दों का प्रयोग करते रहते हैं। उधर पुनः नरेंद्र मोदी के लिए नीच शब्द का प्रयोग किया, जिसके लिए उनको निलंबित किया गया था। इस राजनीतिक नोक-झोंक में संवेदनहीनता कितनी है कि १९८४ के सिख हत्याओं के बारे में कह दिया कि 'जो हुआ सो हुआ'। बाद को उन्होंने स्पष्टीकरण देने की कोशिश की। ममता

ने थप्पड़ मारने की बात कही, मोदी को हटाओ, देश से निकालो, जेल से आ जाएगा आदि-आदि। मायावती ने तो उन्हें बार-बार अयोग्य, भ्रष्ट आदि-आदि कहा। हम इस विवाद में जाना अनावश्यक समझते हैं। हो सकता है कि चुनाव की अभद्र भाषा तथा आरोपी और अत्यारोपों को कोई खोजकर एकत्र करे, ताकि भविष्य में लोगों को पता चले कि राजनीतिक विवाद या संवाद की भाषा कितनी विकृत हो गई थी और कितनी वैयक्तिक कटुता का वातावरण उत्पन्न हो गया था। सभी दलों के सदस्यों की अभद्र भाषा अत्यंत आपत्तिजनक है। एक तरफ ममता बनर्जी तो नरेंद्र मोदी को प्रधानमंत्री ही मान रही हैं। मायावती की शब्दावली भी कम निंदनीय नहीं है। प्रियंका गांधी वाड्रा ने उनको दुर्योधन बताया है। विपक्षी दलों ने चुनाव नरेंद्र मोदी को हटाने पर केंद्रित कर दिया है, भाजपा अथवा एन.डी.ए नहीं। इसके लिए भाजपा के प्रत्याशियों की भी कम जिम्मेदारी नहीं है। भाजपा के कुछ प्रत्याशियों और सदस्यों ने कभी-कभी और कहीं-कहीं अनाप-शनाप वक्तव्य दिए तथा भाषा कैसी संतुलित होनी चाहिए, उसकी अनदेखी क्षुब्ध करती है। पंजाब कांग्रेस में मुख्यमंत्री अमरेंद्र सिंह और उनके एक मंत्री सिद्धू में रस्साकशी बराबर चल रही है। बी.जे.पी. में भी कई प्रदेशों में दरारें पड़ीं, पर जान पड़ता है, पार्टी अध्यक्ष ने समय रहते उनका समाधान निकाल लिया। हम सदैव से कहते रहे हैं कि संभाषण की भाषा में नियंत्रण होना चाहिए, जो एक सभ्य समाज के लिए अनिवार्य है। कांग्रेस और अन्य विरोधी दलों का एक ही मकसद है कि किसी प्रकार से एन.डी.ए. की सरकार, खासकर मोदी को हटाना है।

जीत किसी की भी हो, चुनावी परिदृश्य हमारे लोकतंत्र के लिए कई चुनौतियाँ खड़ी करता है। हम एक स्वस्थ और ईमानदार समाज की कल्पना करते हैं, किंतु इस चुनाव में अधिकारियों ने जगह-जगह सबसे अधिक धन जप्त किया है, जो मतदाताओं में वितरण के लिए रखा गया। चुनाव आयोग ने करोड़ों रुपए खर्च किए, बड़ा सुविचारित कैंपेन चलाया, ताकि अधिक से अधिक मतदाता अपना मत देने आएँ किंतु फिर भी बहुत से स्थानों पर मतदाताओं का प्रतिशत बहुत कम रहा। पढ़े-लिखे और शहरी इलाकों में भद्र कहलानेवाले लोग क्या लोकतंत्र में मतदान का महत्त्व समझते हैं? इस चुनाव में जैसी और जितनी हिंसा व उत्पात हुआ, उतना पहले कभी नहीं हुआ। आयाराम और गयाराम का बोलबाला रहा। दल-बदलुओं को प्राथमिकता मिली—दलों के पुराने, मँजे हुए सदस्यों की तुलना में। क्या इससे दलीय व्यवस्था, जो लोकतंत्र के लिए आवश्यक है, उसको नुकसान नहीं पहुँचेगा और क्या सिद्धांतहीन राजनीति प्रोत्साहित नहीं होती है। हिमाचल के पं. सुखराम और उनके परिवार की कलाबाजियाँ लोकतंत्र पर तमाचा हैं। यही नहीं, चुनाव के बाद पता लगेगा कि बाहुबलियों और अपराधी तत्त्वों का बोलबाला अगली लोकसभा में कम नहीं होगा, शायद बढ़े ही। इससे यह भी सिद्ध हो गया है कि शीर्ष न्यायालय के आदेश कि राजनैतिक अपराधियों के मामलों का शीघ्र निपटारा होना चाहिए, केवल कहने भर को रह गया है। उनका वर्चस्व अभी भी है। कांग्रेस के मैनीफेस्टो में बहुत से लोकलुभावने आश्वासन दिए गए हैं। अन्य दल भी इस मामले में ज्यादा पीछे नहीं हैं। क्या उनके कार्यान्वयन के लिए साधन उपलब्ध हैं? उनका संभावित प्रभाव पूरी अर्थव्यवस्था पर क्या होगा, इस पर विचार किया गया है। कहीं हम सर्वसाधारण को आत्मनिर्भर बनाने की जगह परांमुख तो नहीं बना रहे हैं। जन-कल्याण के नाम पर उन्हें हर कार्य सरकार ही करेगी, यह भावना तो नहीं पैदा कर रहे हैं। कल्याणकारी राज्य का तात्पर्य स्वावलंबन और जनता की पहल तथा प्रयास की अवहेलना नहीं हो सकती। क्या हम जनता में आत्मसम्मान और स्वावलंबन की भावना को प्रोत्साहित कर रहे हैं। परोक्ष और अपरोक्ष रूप से जातियों और कुछ समुदायों की तुष्टीकरण की नीति को ही बढ़ावा तो नहीं दे रहे हैं। कांग्रेस के घोषणा-पत्र में राहुल गांधी ने सरकारी नौकरियों में तीस प्रतिशत महिला आरक्षण का वादा किया है, पर संसद् में उनका तैंतीस प्रतिशत प्रतिनिधित्व, जो सब दलों का वादा है, वह क्यों नहीं पूरा हो रहा है। राजनीति में व्यक्ति विशेष की भूमिका होती है, पर क्या पार्टी व्यवस्था बौना बन जाएगी। क्या राजनीति राहुल गांधी और नरेंद्र मोदी के आसपास ही केंद्रित रहेगी। क्या इतना विशाल देश एक व्यक्ति या एक परिवार के इर्दगिर्द ही सिमट जाएगा? क्या इससे दल व्यवस्था, जो लोकतंत्र की रीढ़ है, कमजोर नहीं होगी? दलों की निरंतरता का क्या होगा? आज तो राजनैतिक कटुता पैदा हुई है, उसका असर अगली सरकार के कामकाज पर कैसा पड़ेगा, क्या यह विचार का सवाल नहीं है? क्या आनेवाली संसद् का कार्य सुचारू रूप से चल सकेगा या उसका स्थान नित्य शोर-शराबा और कार्य स्थगन रहेगा। यही नहीं, जिस प्रकार की भाषा और व्यवहार देखा गया, उसका नई पीढ़ी पर क्या असर होगा। क्या उनकी सम्मान भावना राजनीतिज्ञों, लोकतंत्रात्मक प्रणाली पर अटल रहेगी या केवल राजनीति से वितृष्णा ही पैदा होगी। प्रगति तभी होती है, जब सभी दलों में एक हद के बाद आम सहमति हो और जनहित तथा उनके कल्याण के मुद्दे पर सभी का सहयोग प्राप्त हो। इन सब विषयों पर अगली सरकार को और सर्वसाधारण को गंभीरता से विचार करना है। नरेंद्र मोदी की लोकप्रियता सब नेताओं से सर्वोपरि है। नरेंद्र मोदी की छवि को खंडित करने में यह ध्यान रखना होगा कि कहीं, प्रधानमंत्री अगली सरकार को चाहे किसी का भी हो, बहुत गंभीर आंतरिक और अंतरराष्ट्रीय समस्याओं से जूझना होगा। देश में अकाल की छाया बढ़ती जा रही है, खासकर खाने-पीने की वस्तुओं की कीमतें बढ़ रही हैं। इन सबके समाधान के लिए आपसी सहयोग अपेक्षित है। 'सबका साथ सबका विकास' के लिए उचित वातावरण का निर्माण आवश्यक है। इन सब मुद्दों तथा अन्य महत्त्वपूर्ण विषयों पर भलीभाँति विचार करना आवश्यक होगा, यदि हम देश को, जहाँ हर प्रकार की भिन्नताएँ हैं, आपसी सौहार्द, विकास, न्याय और समुन्नति के मार्ग पर ले जाना चाहते हैं। राजनीति में आज आत्म-मंथन अनिवार्य होता जा रहा है।

सर्वोच्च न्यायालय फिर विवाद की चपेट में

शीर्ष न्यायालय पुन: विवाद के घेरे में है। संविधान ने न्यायपालिका को एक विशेष स्थान प्रदान किया है। हम सब न्यायपालिका की गरिमा

और स्वायत्तता के समर्थक हैं। न्यायपालिका हर नागरिक के मौलिक अधिकारों की संरक्षक है। अतएव सभी को चिंता होती है, जब वह किसी विवाद से ग्रस्त हो जाती है। चार जजों की अप्रत्याशित प्रेस कॉन्फ्रेंस के बाद ऐसी स्थिति पैदा हो गई और बहुत दिनों तक यह विवाद चलता रहा, जिससे न्यायपालिका की छवि को धक्का ही लगा। चार जजों में तीन जज सेवा से निवृत्त हो गए हैं, केवल जस्टिस रंजन गोगोई बाकी हैं और वे शीर्ष न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश हैं। दुर्भाग्य से सुप्रीम कोर्ट के एक स्टाफ ने उनके विरुद्ध सेक्सुअल मोलेस्टेशन या छेड़छाड़ का परिपत्र शीर्ष न्यायालय के सभी जजों को भेजा। इस स्टाफ की सेवा कुछ समय पहले उसके विरुद्ध कुछ शिकायतें होने के कारण समाप्त कर दी गई थी। स्टाफ का १९ अप्रैल का शिकायती परिपत्र और हलफनामा समाचार-पत्रों में भी प्रकाशित हुआ। उसकी जानकारी सबको हो गई। प्रतिक्रिया में मुख्य न्यायाधीश ने अपने समेत तीन जजों की एक पीठ घोषित की। उसमें उन्होंने बड़े रोषपूर्ण एवं भावनात्मक ढंग से अपना पक्ष रखा। भावनाओं में उद्वेलित हो उन्होंने आरोप को झूठा बताते हुए अपना पक्ष रखा, अपने बैंक बैलेंस आदि का जिक्र किया। उन्होंने यह भी कहा कि कुछ महत्त्वपूर्ण मुकदमों को वे सुन रहे हैं, उससे वे झिझकते नहीं। उसके बाद उन्होंने अपने को पीठ से अलग कर लिया। जस्टिस अरुण मिश्रा व जस्टिस एन.वी. रमन दो जजों की पीठ ने अपना निर्णय दिया कि मामले की जाँच की जाएगी। शिकायतकर्ता ने बेंच के एक जज की मुख्य न्यायाधीश से मित्रता की बात कही। जस्टिस रमन ने इस आक्षेप को नकारते हुए अपने को आंतरिक जाँच से अलग कर लिया। पीठ ने आदेश न देकर मीडिया से कहा कि मामले की नजाकत देखते हुए इस पर और वाद-विवाद नहीं होना चाहिए, किंतु तब तक तो यह मामला सबकी जानकारी में आ चुका था। कुछ संपादकीय भी निकले, लेख प्रकाशित हुए कि निष्पक्ष और पारदर्शी जाँच होनी चाहिए। कुछ आलेख भी समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुए। केंद्र सरकार की ओर से कहा गया कि आरोप बेबुनियाद हैं। न्यायालय में अटॉर्नी जनरल ने भी कहा और वित्तमंत्री जेटली, जो स्वयं सर्वोच्च न्यायालय के एक वरिष्ठ एडवोकेट हैं, ने अलग से अपनी राय व्यक्त की। जिन जज जस्टिस रमन महोदय से शिकायतकर्ता को एतराज था, उनकी जगह जस्टिस बोबड़े ने ली, जो जस्टिस गोगोई के बाद सबसे वरिष्ठ जज हैं। जस्टिस इंदु मल्होत्रा और जस्टिस इंदिरा बनर्जी, दो महिला सुप्रीम कोर्ट के जज भी पीठ में सदस्य नियुक्त हुए। शिकायतकर्ता ने अपनी शिकायत पेश की, पर उसने प्रार्थना की कि उसको अपनी बात प्रस्तुत करने के लिए एक एडवोकेट या मित्र की सहायता मिलनी चाहिए, पर पीठ ने इस प्रार्थना को यह कहते हुए कि नकार दिया आंतरिक जाँच, इन हाउस इनक्वारी में इसका प्रावधान नहीं है। शिकायतकर्ता का यह कहना था कि प्रोसीडिंग्स को लिखा भी नहीं जा रहा था, और उसे कोई प्रतिलिपि उसकी नहीं दी गई। सुप्रीम कोर्ट के सेक्रेटरी जनरल ने एक वक्तव्य में बताया कि तीन जजों की कमेटी ने शिकायत को बेबुनियाद करार दिया है। यह रिपोर्ट जस्टिस अरुण मिश्रा की तीन जनों के पैनल को सौंप दी। जस्टिस मिश्रा शीर्ष न्यायालय में जस्टिस बोबड़े के बाद हैं। शिकायतकर्ता का कहना है कि जजों की रिपोर्ट ने जो निष्कर्ष निकाला है, वह उसके साथ अन्याय है।

जब यह मामला शीर्ष अदालत के सामने आया था तो उसने कहा था कि निवर्तमान जज जस्टिस ए.के. पटनायक अलग जाँच करेंगे कि किसी षड्यंत्र के अंतर्गत शिकायतें जजों के विरुद्ध आती हैं और क्या बेंच बैठाने में, बैंच फिक्सिंग में कोई हेराफेरी होती है। एक अधिवक्ता श्री बेंस ने अर्जी और हलफनामा प्रस्तुत किया कि शीर्ष न्यायालय पर दवाब बनाने का एक षड्यंत्र चल रहा है, उनके पास सबूत हैं और वे पेश करेंगे। इस प्रकार वह मामला प्रशासनिक व्यवस्था की जाँच का हो गया। पैनल का खयाल था कि बैंच फिक्सिंग की जस्टिस पटनायक की जांच इन हाउस इन्क्वारी के साथ चल सकती है, पर जस्टिस पटनायक ने कहा कि वे इन हाउस इन्क्वारी के निष्कर्ष के बाद ही जाँच प्रारंभ करेंगे। ज्ञात नहीं है कि वह जाँच शुरू हुई है या नहीं।

इन हाउस या आंतरिक प्रक्रिया जजों के विरुद्ध शिकायत आने के लिए तय की गई थी। मुख्य न्यायाधीश, शीर्ष न्यायालय के विरुद्ध क्या होगा, इसकी कल्पना नहीं थी और कोई व्यवस्था भी निश्चित नहीं की गई थी। अतएव जाँच के लिए आंतरिक पैनल द्वारा जाँच कराना तय हुआ था। बहुत से विशेषज्ञों का कहना है कि इस पूरे प्रकरण में प्रारंभ से ही गलत काररवाई हो रही है। जब मुख्य न्यायाधीश गोगोई के विरुद्ध शिकायत थी तो उन्हें आरोपी होने के कारण निर्णय पूरे शीर्ष न्यायालय के जजों पर छोड़ देना चाहिए था, स्वयं एक बेंच बैठाने का फैसला करना अटॉर्नी जनरल को बुलाना, स्वयं उसमें शामिल होना न्याय प्रक्रिया के खिलाफ था। शिकायत होने पर उनको कम-से-कम छुट्टी पर चले जाना चाहिए था, ताकि कोई कह न सके कि न्याय प्रक्रिया उनकी उपस्थिति से प्रभावित हो रही है। महिला वरिष्ठ विधिवेत्ताओं ने और भी कई मुद्दे उठाए। वरिष्ठ एडवोकेट का कहना है कि पैनल की रिपोर्ट सार्वजनिक न की जाए, यह आर.टी.आई. आने के पहले का निर्णय था। जस्टिस गोगोई ने एक महिला एडवोकेट का एन.जी.ओ. था, उसके विरुद्ध विदेश से बिना सरकारी आज्ञा के धन लिया गया। जाँच निलंबित की। जस्टिस गोगाई ने आदेश दिया कि जाँच स्थगित नहीं रहनी चाहिए। इससे एक और जटिलता पैदा हो गई। यह अलग बात है कि जनता में यह भावना है कि वैसे दूसरों को पारदर्शिता बरतने के मामले में शीर्ष न्यायालय आगे रहता है, परंतु अपने विषय में वह इस खुलेपन और पारदर्शिता से सदैव हिचकिचाता है। दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय को कि आर.टी.आई. शीर्ष न्यायालय पर लागू है, जिसे शीर्ष अदालत ने स्थगित कर दिया है। इस प्रकार के और भी उदाहरण हैं। हम सभी हमाम में नंगे हैं। न्यायाधीश अतिमानव नहीं है। पद की गरिमा और दायित्व उन्हें महामंडित करता है। जो उपदेश दूसरों के लिए है, वह उन्हें अपने पर भी लागू करना चाहिए, खासकर प्रशासनिक मामलों में।

चूँकि इन हाउस इन्क्वारी या आंतरिक जाँच प्रशासनिक व्यवस्था का भाग है, और चूँकि पैनल ने अपना निष्कर्ष दे दिया है। समाचार है

कि शिकायतकर्ता न्यायिक व्यवस्था का सहारा लेना चाहती है। कानून के अंतर्गत चाहे कोई कितना बड़ा हो, कानून उससे ऊपर है। आगे दिखाई देगा कि इस प्रकरण में विधि किस प्रकार याचिकाकर्ता को न्याय देने में सफल होगा। जब तक कानून की नजर में आरोपी दोषी नहीं घोषित होता, किसी को दोषी नहीं कहा जा सकता है। प्रश्न यही है कि इस संवेदनशील मामले का निपटारा कैसे होता है, इससे सर्वोच्च न्यायालय की प्रतिष्ठा और गरिमा का प्रश्न जुड़ गया है। इस मामले में पूर्व मुख्य न्यायाधीश जस्टिस ए.पी. शाह ने एक साक्षात्कार में कहा है कि यह मामला उसी प्रकार सुप्रीम कोर्ट को हर्ट करेगा, जैसा आपातकाल में ए.डी.एम. जबलपुर बनाम शुक्ला का मामला अभी तक शीर्ष न्यायालय को हर्ट करता रहा है। आशा है कि इस अग्नि परीक्षा में शीर्ष न्यायालय खरी उतरेगी। हम सभी चाहते हैं कि मामले में न्याय हो, और शीर्ष न्यायालय की विश्वसनीयता एवं गरिमा अक्षुण्ण रहे।

गांधी साहित्य के कुछ मूल्यवान प्रकाशन

महात्मा गांधी की १५०वीं वर्षगाँठ के आयोजन के समय गांधीजी के बहुपक्षीय जीवन, उनके विचारों और कार्यों के विषय में बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। यह स्वाभाविक है, अपेक्षित है। गांधीजी के शताब्दी समारोह के अवसर पर भी भारत में बहुत अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। उससे थोड़ा कम साहित्य उनकी १२५वीं जन्मजयंती के समय निकला था। कई पुस्तकें आलोचनात्मक भी निकलीं। यह भी स्वाभाविक है। गांधीजी वाद-विवाद, वार्त्तालाप, संवाद में विश्वास रखते थे। जिनका गांधीजी के विचारों, में साम्य नहीं था वे उनकी सोच, उनकी आलोचना भी तर्कपूर्वक करते थे। उनको भी दोष नहीं दिया जा सकता, उनकी चर्चा भी समय-समय पर होगी। आखिर गांधीजी का संपूर्ण जीवन सत्य की खोज को समर्पित था। अपनी अपूर्ण आत्मकथा को ही उन्होंने 'मेरे सत्य के साथ प्रयोग' की संज्ञा दी थी। पर सबसे बड़ी आवश्यकता है कि उनके लेखों और भाषणों को पढ़ा और समझा जाए, जो उन्होंने कहा, उसकी पृष्ठभूमि क्या थी। नवजीवन प्रेस की स्थापना उन्होंने इसी उद्देश्य से की थी। गांधीजी की विरासत को सँजोए रखने और प्रचारित करने में वह निरंतर कार्यरत है। और अनेक भाषणों में गांधीजी की प्रेरणा से ही श्री जमनालाल बजाज तथा श्री घनश्याम दास बिड़ला के प्रयास व सहयोग से १९२५ में 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना हुई थी। उद्देश्य था कि हिंदी में सामाजिक जागृति, चरित्र-निर्माण को ध्यान में रखते हुए कम मूल्य में पुस्तकें प्रकाशित हों, समाज के सभी वर्गों और उम्रवालों के लिए सस्ता साहित्य मंडल इस लक्ष्य से प्रेरित होकर सतत प्रयत्नशील है। इस दिशा में इसकी विशद देन है। बड़ी मात्रा में विविधतापूर्ण गांधी साहित्य इस मंडल द्वारा उपलब्ध कराया गया है। वह प्रगतिवादी है। छोटी और बड़ी पुस्तकें मंडल प्रकाशित कर रहा है। अब गांधी साहित्य कॉपीराइट से मुक्त है और अनेक प्रकाशन उसे छाप रहे हैं। अधिक-से-अधिक लोगों का उनकी विचारधारा से परिचय हो, यह तो आवश्यक है, पर यह भी उतना ही जरूरी है कि गांधीजी के लेखन की शुचिता और विश्वसनीयता में कमी नहीं आनी चाहिए। व्यापारिक लाभ के लोभ से उस पर आँच नहीं आनी चाहिए।

सस्ता साहित्य मंडल के गांधी संबंधी कुछ प्रकाशन आए हैं, जिनका हम उल्लेख करना चाहेंगे। सुधी पाठकों को स्मरणा होगा कि १९३९ में गांधीजी के इकहत्तरवें जन्म दिवस पर डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन (बाद को देश के राष्ट्रपति) ने 'गांधी अभिनंदन ग्रंथ' का संपादन किया था। देश-विदेश के अनेक विद्वानों और राजनैतिक हस्तियों ने गांधीजी के बारे में अपने विचार व्यक्त किए, फ उनका संकलन किया गया। गांधीजी की उस समय तक वैश्विक मान्यता स्थापित हो चुकी थी। अभिनंदन ग्रंथ अंग्रेजी में था और संपादक महोदय की अनुमति प्राप्त होने के बाद मंडल ने कोशिश की कि अंग्रेजी संस्करण के साथ ही हिंदी संस्करण का भी विमोचन हो। शीघ्रातिशीघ्र अनुवाद की व्यवस्था को गई, फिर भी कुछ त्रुटियाँ रह गईं, लेकिन दोनों संस्करणों का लोकार्पण एक साथ हो सका। दूसरे संस्करण में उनको सुधारा गया। १९४६ तक मंडल ने तीन और संस्करण निकाले। ग्रंथ में गांधीजी की अपनी प्रतिक्रिया भी शामिल है। हिंदी संस्करण के लिए नेहरूजी से भी अनुरोध किया गया। उन्होंने भी हिंदी में ही लिखकर अपनी आस्था को व्यक्त किया। यह अत्यंत सुंदर प्रकाशन है, जो सस्ता साहित्य मंडल ने गांधीजी के १५०वें जन्मदिवस के समय प्रकाशित किया है। यह ऐतिहासिक व सराहनीय ग्रंथ साधारण नागरिकों को भी अब उपलब्ध है। शिक्षालयों और जन-पुस्तकालयों में तो यह उपलब्ध होना ही चाहिए।

एक और पुस्तक है, 'गांधीजी स्मृति लेखों का आलोक', जिसका संकलन और संपादन डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने किया था। इस पुस्तक में गांधीजी के बृहद लेखन में से डॉ. पालीवाल ने गांधीजी द्वारा अपने सहयोगियों, राजनेताओं तथा अन्य क्षेत्रों में देश-विदेश के प्रख्यात व्यक्तियों के बारे में जो विचार प्रकट किए हैं, उनका चयन कर संकलित किया है। डॉ. पालीवाल की विद्वत्ता और कार्यक्षमता से साहित्य जगत् परिचित है। यह पुस्तक अत्यंत उपादेय है, हमारी नई पीढ़ी में आत्मविश्वास का संचार करने के लिए, जब वे आज सर्वत्र जनजीवन, मूल्यों और नैतिक आचरण का क्षरण ही देख रहे। डॉ. पालीवाल की दूसरी पुस्तक है, 'हमारे समय में गांधी', जिसमें कतिपय समय-समय पर लिखे उनके लेख संकलित हैं। ये लेख अत्यंत विचारशील और विवेचनात्मक हैं, जो हमें 'गांधीजी आज के समय में क्यों प्रासंगिकता हैं' विषय पर प्रकाश डालते हैं। दो आलेखों की ओर हम विज्ञ पाठकों का ध्यान विशेषतया आकर्षित करना चाहेंगे, 'गांधी, लोहिया और आंबेडकर; वैचारिक क्रांति' तथा 'उत्तर आधुनिकता और गांधी'। बहुत से भ्रम और मिथक आज समाज में कुछ लोगों ने पाल रखे हैं, उनका निराकरण करने में यह संकलन समर्थ और अर्थवान है। किसी ने सही कहा है कि गांधीजी ने पूर्व भूतकाल का नहीं, आगे आनेवाले काल का इतिहास लिखा है। खेद है कि दोनों पुस्तकें डॉ. पालीवाल के जीवनकाल में उपलब्ध न हो सकीं।

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी)

चेतना

• नवल बिहारी मिश्र

२५ दिसंबर, १९०१ में सीतापुर जिले के गंधौली नामक स्थान में जनमे डॉक्टर नवल बिहारी मिश्र हिंदी साहित्य के पुरोधा 'मिश्र-बंधुओं' के वंशज थे। उनके अग्रज प्रख्यात समालोचक स्व. पंडित कृष्ण बिहारी मिश्र 'माधुरी' पत्रिका के संपादक और 'देव और बिहारी' पुस्तक के रचयिता थे, जिससे हिंदी आलोचना में तुलनात्मक अध्ययन का प्रारंभ माना जाता है। डॉक्टर नवल बिहारी मिश्र लखनऊ के किंग जार्ज मेडिकल कॉलेज के प्रथम बैच के एम.बी.बी.एस. थे और उत्तर प्रदेश के छोटे से नगर सीतापुर में प्रैक्टिस करते थे। हिंदी के वैज्ञानिक कथाकारों में उनका अग्रणी स्थान है। उनके विज्ञान कथाओं के चार संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। यहाँ डॉक्टर नवल बिहारी मिश्र के कथाकार पौत्र नवनीत मिश्र द्वारा उपलब्ध कराई गई उनकी एक वैज्ञानिक कथा 'चेतना' प्रस्तुत कर रहे हैं।

लॉटरी का भारी इनाम मिलने पर ब्रजलाल न तो मारे खुशी के पागल हो गया और न बहुत साधारण आय के बाद एकदम लखपति हो जाने के कारण उसने दोनों हाथ रुपया फूँकना ही आरंभ किया। एक साधारण-सी आटा-दाल-चावल की दुकान थी। उसने स्वयं दुकान पर बैठना बंद कर दिया और एक विश्वास-पात्र रख लिया।

ब्रजलाल ने जिस असाधारण संयम का प्रदर्शन किया उसके दो कारण थे।

नगर के एक बड़े व्यापारी ने सट्टे में कई लाख रुपया पैदा किया था। उसकी मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी ने अपने हिसाब से बड़ी बुद्धिमानी का परिचय दिया। उसने एक बड़ा प्लॉट खरीदकर कई फ्लैट बनवाने में अपने पिता का सारा पैसा लगा दिया। हैसियत से अधिक खर्च के कारण उस पर लंबा कर्ज हो गया और अंत में उसे अपने फ्लैट औने-पौने बेच देने पड़े। ब्रजलाल ने लाटरी से प्राप्त धन का एक अंश कुछ फ्लैट खरीदने में लगाया और इस तरह उसने उस असंयमी लड़के के अनुभव से लाभ उठाया।

दूसरा कारण ब्रजलाल का जीवन में दु:खी होना था। उसका पुत्र किशोरावस्था में ही एक दुर्घटना में मर गया था और इस आघात से उसकी पत्नी अर्धविक्षिप्त सी हो गई थी। इतना ही नहीं, उसकी शेष रह गई दो बेटियों में से एक विधवा हो गई थी और दूसरी कुरूपा तथा अविवाहित थी।

ब्रजलाल ने एक बुद्धिमानी और की। उसने अपना रुपया कई भिन्न-भिन्न मदों में लगाकर अपना भविष्य काफी सुरक्षित कर लिया था। उसके रहन-सहन में केवल इतना अंतर आया कि पहले जिस साधारण से मकान में (जिसके नीचे के भाग में ही दुकान थी) रहते थे, उसे छोड़कर एक अच्छे फ्लैट में रहने लगे। उन्होंने जो अन्य फ्लैट खरीदे थे, उनसे अच्छा किराया आने लगा।

ब्रजलाल की पत्नी यशोदा की तबीयत इधर कुछ गड़बड़ थी। उसे कई दिनों से नींद नहीं आती थी। फलस्वरूप बहुत चिड़चिड़ी हो गई थी। बात-बात पर परोसी थाली फेंक देती और कपड़े फाड़ डालती।

ब्रजलाल ने अच्छे से अच्छा इलाज किया, पर कोई फल न निकला। यशोदा का मुख्य मनोविकार इस बात की शिकायत थी कि रात को कोई इस प्रकार चिल्लाता है कि वह सो नहीं सकती।

□

'अम्माँ एकदम झूठ नहीं कहती बप्पा', छोटी कन्या ने पिताजी से कहा, 'कहीं पास ही, न जाने कैसी चिल्लाने की आवाज रात में आती है और उसे सुनते ही अम्माँ अबाही-तबाही बकने लगती हैं। कपड़े फाड़ने लगती हैं, नंगी हो जाती हैं और छत से कूदने की कोशिश करने लगती हैं। मेरे लिए उनको पकड़कर चारपाई पर लिटाना बड़ा कठिन हो जाता है।'

'कैसी आवाजें?' ब्रजलाल ने पूछा, जरा चिल्ला और झुँझलाकर। बहरे आदमी सबको बहरा समझते हैं, और सभी से जोर से बोलते हैं।

'मेरी समझ में नहीं आता', राधा बोली, 'न जाने कैसी आवाजें आती हैं। बैलगाड़ी की 'चर्रक चूँ' आपने सुनी होगी, पर यह आवाज उससे भी बहुत कम मिलती है। बैलगाड़ी में बार-बार वही आवाज दुहराई जाती है, पर इस रातवाली आवाज में कोई क्रम नहीं होता। कभी इतनी हल्की कि सुनाई भी न पड़े और कभी इतनी जोरदार और तीखी कि कान के परदे फटने को हो जाते हैं। कुछ-कुछ फटे बाँस की झनझनाहट और लकड़ी पर चलाए जा रहे रंदे से कुछ मिलती-जुलती आवाज होती है।'

'पर मुझे तो कभी सुनाई नहीं पड़ती।' ब्रजलाल बोले।

'आपको कैसे सुनाई पड़े?' राधा बोली, 'एक तो आप ऊँचा सुनते हैं, दूसरे अपना कानवाला आला उतारकर तकिए के नीचे रख लेते हैं।'

'अच्छा, कल रात में जागता ही नहीं रहूँगा, आला भी लगाए रखूँगा।'

ब्रजलाल फ्लैट के बरामदे में खुली खिड़की के पास ही लेटे, पर उस रात उन्हें कोई आवाज सुनने का मौका ही नहीं आया। मिलिटरी के ट्रक की एक 'कन्वाय' के उत्तर की ओर की यात्रा का जो ताँता लगा, वह दस बजे से आरंभ होकर सवेरे चार बजे ही समाप्त हुआ। फलस्वरूप ट्रकों के हॉर्न और उनकी घरघराहट में कुछ भी सुनाई पड़ना असंभव था।

दो दिन ब्रजलाल फ्लैट की खिड़की के निकट सोए, पर उन्हें कोई असाधारण आवाज सुनाई नहीं दी। तीसरे दिन उन्होंने निश्चय किया कि आज और प्रतीक्षा करेंगे और उसके बाद अपने कमरे में लेटना प्रारंभ कर देंगे। तीसरे दिन अकस्मात् दो घटनाएँ ऐसी घटीं, जिनसे उनके विश्वास में सचमुच परिवर्तन आया। दोपहर की डाक से उन्हें एक बैरंग पत्र मिला, उसमें लिखा था—

'बाबू ब्रजलाल जी,

यह पत्र मैं आपकी भलाई के लिए लिख रहा हूँ। आपने जो फ्लैट खरीदे हैं, वे एक ऐसे पापी की कमाई से बने हैं, जिसने सैकड़ों निर्दोष अभागों का सर्वनाश किया है। इसमें लगा रुपया दागी तथा पाप की कमाई का है, और कई प्रेतात्माएँ इनमें वास करती हैं। मैं अपको नेक सलाह देता हूँ कि आप तत्काल इन फ्लैटों को आधी-परधी कीमत पर बेचकर अपनी जान बचाइए।

इन प्रेतात्माओं में से दो के विषय में मेरा निजी अनुभव है। एक कोई औरत है, जो अकसर रोती-पीटती तथा चिल्लाती है, और दूसरी भी इन्हीं में से किसी फ्लैट में रहती है तथा बड़ी विचित्र आवाजें करती है। मेरा विश्वास है कि मैं इस फ्लैट को जानता हूँ। आप बीच के फ्लैट में रहते हैं और यह आवाज आपके नीचे के किसी फ्लैट से आती है। शायद मैं उस फ्लैट में रहनेवाले आदमी को जानता भी हूँ। कृपा कर इस पत्र को नष्ट कर दीजिएगा, नहीं तो वह व्यक्ति मेरा दुश्मन हो जाएगा।

आपका शुभचिंतक

एक जानकार'

जब राधा ने मुझे खाना खाने के लिए बुलाया तो मैंने उसे पत्र पढ़कर सुनाया। उस पत्र की अंतिम पंक्ति काट दी गई थी, पर जब मैंने रूमाल का कोना भिगोकर कटे भाग पर फेरा तो साफ पढ़ने में आ गया—

'और मुझे फेल कर देगा।'

□

उस रात को दूसरी घटना अधिक निर्णायक थी। लगभग साढ़े बारह बजे ब्रजलाल को दो-ढाई घंटे तक विचित्र प्रकार की आवाजें सुनाई पड़ती रहीं।'''आवाजें न तो मनुष्य की जान पड़ती थीं और न पशु-पक्षी के कंठ की। मनुष्य की विभिन्न जातियों से निकली हुई ध्वनियाँ अन्य जातियों के कंठ से न निकल पाती हैं और न उन्हें लिपिबद्ध किया जा सकता है।

ब्रजलाल को उस रात जो ध्वनियाँ सुनाई पड़ीं, वे नितांत अनोखी थीं। कभी तो उसे जान पड़ता कि किसी प्राणी का गला दबाया जा रहा है, कभी ऐसा लगता कि कोई जाड़े से काँप रहा है और कभी लगता, मालूम देता कि जैसे किसी को बहुत धीरे-धीरे हलाल किया जा रहा हो। परंतु यह न भूलना चाहिए कि ऊपर जिन तीन ध्वनियों का वर्णन किया गया है, वह किसी भी प्राणी की ध्वनि से तनिक भी मिलती-जुलती न थीं।

इसे संयोग ही कहना चाहिए कि इन प्रेतात्माओं का रहस्य अनायास ही खुल गया। ब्रजलाल की पत्नी की विक्षिप्तता में तो कोई रहस्य था ही नहीं, जिस रात ब्रजलाल को ये विचित्र आवाजें सुनाई दीं, उस रात उनकी पत्नी ने बड़ा ऊधम किया था। उनके व्यवहार में कुछ भी अनोखा न था और उन विचित्र ध्वनियों के उद्गम की तलाश में ब्रजलाल को कुछ भी परिश्रम न करना पड़ा।

ब्रजलाल बीच के फ्लैट में रहता था। उसके ठीक नीचे के फ्लैट में स्थानीय डिग्री कॉलेज के उद्भिदशास्त्र के एक अध्यापक का निवास था। अध्यापक डॉ. साठे ऊँची-ऊँची डिग्रियाँ अर्जित विद्वान् थे। वे जरा झक्की और सनकी प्रसिद्ध थे। छात्रों को कोर्स की बातें कम पढ़ाते थे, पर इतने ऊँचे स्तर का व्याख्यान देते थे कि लड़के-लड़कियों के पल्ले कुछ न पड़ता। कई महीनों से कॉलेज के प्राचार्य ने छात्रों की शिकायत पर उन्हें सस्पेंड कर रखा था।

दूसरी और तीसरी मंजिलों की अपेक्षा नीचे की मंजिलों का किराया कुछ अधिक था, क्योंकि नीचे की मंजिलों के सामने छोटे-छोटे बगीचे थे, जिनमें किराएदारों ने फूल-पत्ती और शाक-सब्जी उगा रखी थी। इसके अतिरिक्त नीचेवालों को मोटर साइकिल इत्यादि रखने की सुविधा भी थी।

सवेरे दस बजे के लगभग जब ब्रजलाल नीचे के फ्लैट के सामने बगीचे में पहुँचे, तब दरवाजा अंदर से बंद था। पड़ोसियों ने बताया कि जब से डॉ. साठे सस्पेंड हुए हैं, तब से दिनभर सोया करते हैं और रात में कुछ पढ़ा-लिखा करते हैं या तारों और पेचकस से न जाने क्या रातभर बनाया करते हैं।

पहले तो ब्रजलाल को बगीचे में कभी कोई विशेषता नहीं दिखलाई पड़ी थी, लेकिन आज इधर-उधर टहलते हुए ध्यान से देखा तो उन्हें कुछ विचित्र बातें देखने को मिलीं। दो-तीन मूलियाँ आधी गहराई तक खुदी हुई तथा अधकटी दिखाई पड़ीं। हरसिंगार की पतली शाखाएँ किसी गुट्ठल अस्त्र ने कई जगह अधकटी दिखीं। बगिया में एक छोटा सा कामिनी का झाड़ था, उसकी जड़ में कई जगह काटने के ताजा निशान थे।

ब्रजलाल को पहला खयाल यही आया कि सस्पेंड होने के बाद पहले से ही सनकी डॉ. साठे का दिमाग कुछ बिगड़-सा गया है, जिसके कारण वह इस प्रकार के काम करने लगे हैं। ब्रजलाल ने दरवाजे पर लगी घंटी का बटन दबाया।

कई बार के प्रयत्न के बाद अंदर से सिटकिनी खुलने की आवाज आई तथा नींद भरी आँखें मलते, थोड़ा झुँझलाए हुए डॉ. साठे दरवाजा खोलकर बाहर निकले। बाहर ब्रजलाल को देखकर वे कुछ घबरा-से गए। ऐसा होने का एक कारण भी था कि डॉ. साठे कई महीनों से फ्लैट का किराया नहीं दे पाए थे, और उनके पास कई तकाजे पहुँच चुके थे।

'क्षमा कीजिएगा, डॉक्टर साब!' ब्रजलाल ने नकली शालीनता से

कहा, 'आपके फ्लैट से इधर कुछ विचित्र प्रकार की आवाजें आया करती हैं और मैंने अभी-अभी देखा कि आपका बाग कुछ अस्त-व्यस्त सा है। आप स्वयं भी परेशान दिखते हैं। यदि मुझसे कुछ सहायता हो सकती हो तो नि:संकोच बतलाइए। मेरी समस्या आप जानते ही हैं। असाधारण शोरगुल से मेरी पत्नी का मस्तिष्क असंतुलित हो उठता है।'

डॉ. साठे अध्ययनशील, चुप्पे, अंतर्मुखी और असंयत व्यक्ति थे। उन्हें सबसे बड़ा भय यह था कि मालिक मकान किराए के लिए आया है। चढ़ा किराया किराएदार को बड़ा कायर बना देता है। बाग की अस्तव्यस्तता और असाधारण आवाजों के आरोप सुनकर उनकी रही-सही हिम्मत भी टूट गई। उनके चेहरे का भाव नितांत दयनीय हो गया। वह अड़ोस-पड़ोस में शायद ही किसी से अंतरंग तो क्या, परिचित भी नहीं थे। उनके दरवाजे पर मालिक मकान को आया देखकर कई पड़ोसी कुतूहलवश एकत्र हो गए, फल यह हुआ कि डॉ. साठे और भी अधिक घबरा गए। कई मिनट तक उनके मुँह से आवाज ही न निकली, पर जब ब्रजलाल ने अपने प्रश्न फिर दोहराए तो उन्होंने हकलाते हुए कहा, 'जी···जी···कोई विशेष बात नहीं है। कॉलेज के अधिकारियों से मेरा कुछ झगड़ा हो गया है, इसलिए कई महीनों से मैं आपका किराया नहीं चुका सका हूँ। कोशिश कर रहा हूँ, यदि रुपया मिल गया तो जल्दी ही चुका दूँगा।'

'मैं किराए के लिए नहीं आया हूँ, डॉक्टर साहब।' ब्रजलाल ने कहा, 'मैं तो उन आवाजों तथा आपके बाग की उथल-पुथल के विषय में जानने आया हूँ और आपसे जानकर ही वापस जाऊँगा।'

डॉ. साठे ने मानो एकदम कंधे डाल दिए। वे हताश होकर दरवाजे की सीढ़ियों पर बैठने के क्रम में धम से गिर पड़े। कई क्षण बाद उनके मुँह से आवाज निकली।

'बाबू ब्रजलालजी,' वे रुक-रुककर बोले, 'मैं वैज्ञानिक हूँ और वनस्पति-विज्ञान पर अनुसंधान कर रहा हूँ। इसी अनुसंधान के कारण मैं कॉलेज के अध्यापन-कार्य में पूरा ध्यान नहीं दे पाता और प्रबंधकों में से कुछ सदस्य मुझे विक्षिप्त समझते हैं। उन्होंने मुझे सस्पेंड कर दिया है।'

ब्रजलाल तो इतने पढ़े-लिखे थे नहीं कि वैज्ञानिक अनुसंधान के बारे में कुछ बातचीत कर पाते, पर तीसरी मंजिल पर रहनेवाले मिस्टर मुबश्शिर हुसैनजी एक डिग्री कॉलेज में भौतिकी के अध्यापक हैं, वे बीच में टोककर बोल पड़े—

'यानी आप कोई रिसर्च कर रहे हैं, साठे साहब?'

'जी···' बड़ी हीनता के साथ डॉ. साठे ने उत्तर दिया।

'क्या विषय है आपकी रिसर्च का?' मिस्टर हुसैन ने पूछा।

'उद्‌भिद विज्ञान पर।'

'यानी आपका मतलब है बॉटनी से?'

'जी···'

'बॉटनी के किस टॉपिक पर?'

'अभी तो मेरे काम की शुरुआत है।' डॉ. साठे ने जरा आश्वस्त होकर कहा।

'फिर भी उस पर कुछ रोशनी तो डालिए, डॉक्टर साहब!' मिस्टर हुसैन ने आग्रह से पूछा।

'अभी मेरा काम इतना अधूरा है कि इस विषय में अधिक बताना संभव नहीं।' डॉ. साठे ने जरा दृढ़ता से कहा।

'मगर साठे साहब, मुझे लगता है कि आप अपनी बात साफ-साफ बताना नहीं चाहते। पता नहीं, आप सच कह रहे हैं या आप कोई ऐसा काम कर रहे हैं, जिसमें कोई खतरा है। मैं तो इतना जानता हूँ कि आपके फ्लैट से जो चीखें आती हैं, उनका असर मेरी पत्नी पर बुरा पड़ता है।' ब्रजलाल ने कहा, 'इसलिए मैं लगी-लिपटी बात का आदी नहीं हूँ, या तो मेरा पूरा किराया पूरा-पूरा अदा करके मुझे इत्मीनान दिलाइए या मेरा मकान छोड़कर कोई और इंतजाम कीजिए। मैं तो साफ-साफ बात पसंद करता हूँ।'

'आखिर इसमें आपको पसोपेश क्या है, साठे साहब?' बात बढ़ती देखकर मामला सुलझाने के इरादे से मिस्टर हुसैन बोले, 'बाबू ब्रजलाल की बात बेजा नहीं है। अगर आपकी वजह से उनकी बीवी को तकलीफ होती है तो या तो आपको अपना काम बंद करना होगा और अगर आपकी रिसर्च अभी पोशीदा है तो मैं आपसे वायदा करता हूँ कि आपकी इजाजत के बगैर उसके बारे में हममें से कोई भी उसका कहीं जिक्र नहीं करेगा। आप इत्मीनान रखें।'

'अपनी रिसर्च का आधा काम तो मैं पूरा कर चुका हूँ। जितना काम किया है, उतना डॉक्टरेट के लिए काफी है, पर मैं अभी अपना काम और आगे बढ़ाना चाहता हूँ। उसके लिए मुझे बाहर जाना पड़ेगा। इधर आपने पिछले तीन-चार दिनों से आवाजें न सुनी होंगी। बात यह है कि मैं मिर्जापुर गया था, कल ही लौटा हूँ और दो-चार दिनों बाद कई हफ्तों के लिए मिर्जापुर चला जाऊँगा।'

'मेरी राय मानिए साठे साहब', मिस्टर हुसैन ने सलाह दी, 'आप अपनी रिसर्च की मोटी-मोटी बातें हम लोगों को बता दीजिए। यकीन रखें, हम उसका जिक्र किसी से न करेंगे।'

'अच्छी बात है,' डॉ. साठे ने कहा, 'अगर आप और ब्रजलाल मेरे यहाँ रात दस बजे के बाद आ जाएँ तो मैं अपनी रिसर्च के बारे में कुछ थोड़ा-बहुत आपको बता दूँगा।

□

भोजन आदि से निवृत्त होकर ब्रजलाल और मुबश्शिर हुसैन डॉ. साठे के कमरे में आ गए। हुसैन ने समझा-बुझाकर अन्य पड़ोसियों को लौटा दिया।

डॉ. साठे का कमरा क्या था, आधी जगह तो मोटी-मोटी किताबों ने घेर रखी थी और आधी में बिजली की बैटरियाँ तथा लाल, पीले, नीले, हरे और सफेद रंग के तारों का जाल बिछा हुआ था। दीवार पर लंबी सुइयोंवाली अनेक घड़ियाँ जैसी लगी थीं और छोटी सी मेज पर टेलीफोन ऑपरेटरों जैसा दोनों कानों तक पहुँचनेवाला सिर पर बने पुल से जुड़ा एक आला रखा था। एक ओर लाउडस्पीकर का यंत्र एक बैटरी से जुड़ा हुआ रखा था। कमरे में एक ही कुरसी थी। ब्रजलाल और हुसैन के लिए मुश्किल से दो स्टूलों की जगह बनाई जा सकी।

'अपनी बात समझाने के लिए मुझे बात की तह तक जाना पड़ेगा,' साठे ने कहा, 'बात यह है कि मनुष्य, पक्षी, बंदर, बिल्ली सबमें जीवनी

शक्ति होती है और होती है वह चीज, जिसे चेतना कहते हैं। प्राणी नर और मादा के संयोग से जन्म लेता है, खाता-पीता है, आकार में बढ़ता है, प्रकृति तथा माता-पिता से सीखता है। आत्म-रक्षा करता है, संतान उत्पन्न करता है तथा अंत में मर जाता है।

'वनस्पति जगत् में भी ये सब बातें होती हैं, भेद केवल इतना है कि ये बातें उतनी स्पष्ट नहीं होतीं, जितनी प्राणियों में। दूसरे अधिकतर प्राणी जंगम हैं और अधिकतर वनस्पति स्थावर। अपवादस्वरूप बहुत से प्राणी जैसे कुछ समुद्री फूल स्थावर हैं। प्राणी और वनस्पति की प्रारंभिक दशाओं में इन दोनों में भेद नहीं रह जाता।'

'गाजर, मूली तथा पेड़ों में प्राणियों के और तो कई गुण होते हैं, पर उनमें चेतना होती है, इसका क्या प्रमाण है?' ब्रजलाल ने पूछा, 'गाजर काटते समय घोड़े को चाबुक मारने जैसी पीड़ा कहाँ होती है?'

'होती है', साठे बोले, 'यह मेरी कोई नई सूझ नहीं है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु प्रमाणित कर गए हैं कि वनस्पति में चेतना होती है। दूर क्यों जाएँ, छुईमुई को यदि स्पर्श का ज्ञान न होता तो वह छूने पर अपनी पत्तियाँ कैसे समेट लेती है? अगर वनस्पति में प्रकाश का अनुभव न होता तो कमल रात को और कुमुदिनी दिन को कैसे बंद हो जाती? सूर्यमुखी का फूल पूर्व की ओर ही क्यों खिलता है? लौकी, तोरई इत्यादि बेलें एक प्रकार के 'टेंड्रिल' पैदा करके छप्पर और दीवारों पर कैसे चढ़ जाती हैं?

'वनस्पति को जब चोट पहुँचाई जाती है, तब उनमें कंपन पैदा होता है, यह बात बसु महाशय पहले ही प्रदर्शित कर चुके हैं। मैं तो केवल एक कदम आगे बढ़ा हूँ। मैंने यह प्रमाणित किया है कि चोट पहुँचने पर वनस्पति काँपते और कराहते ही नहीं, चिल्लाकर अपना कष्ट प्रदर्शित करते हैं।'

'बड़ी ऊँची और नामुमकिन-सी लगनेवाली उड़ान है आपकी,' हुसैन बोले, 'गाजर, मूली चोट लगने पर चीखते-चिल्लाते हैं, और वह भी इतनी जोर से कि हम-आप सुन सकें, यह जरा शेखचिल्ली की सी बात लगती है।'

'बिल्कुल ठीक कहते हैं आप, मुबश्शिर साहब। मामूली हालत में हम मूली की चीख नहीं सुन सकते हैं, पर मैंने दो आलात ऐसे बनाए हैं, जिनसे यह मुमकिन हो जाता है।'

'कैसे हैं वे दो आलात?' हुसैन ने पूछा।

'मुझे बड़ी खुशी है कि मुझे अपनी बात समझाने के लिए आप मिल गए, क्योंकि आप स्वयं भौतिकी, यानी फिजिक्स के प्रोफेसर हैं और मेरी रिसर्च ध्वनि अर्थात् साउंड से संबंधित है। साउंड क्या है? हवा में उत्पन्न कंपन। मनुष्य के कान में एक परदा होता है, जिससे लगी हुई तीन छोटी-छोटी हड्डियाँ होती हैं, जिनका वही काम है, जो लाउडस्पीकर यंत्र का। अर्थात् ये हड्डियाँ साउंड को कई गुना बढ़ाकर हजारों की भीड़ तक आवाज पहुँचा देती हैं।

'मनुष्य का कान एक सेकेंड में बीस हजार अथवा इससे कुछ अधिक तक का कंपन ग्रहण कर लेता है। इससे बहुत कम या बहुत अधिक बार का कंपन ग्रहण करने में वह समर्थ नहीं है। मूली, गाजर पौधे इत्यादि के एक सेकेंड में बहुत सुस्त कंपन करते हैं, जिन्हें मनुष्य का कान ग्रहण नहीं कर सकता। मेरा एक आला तो उन कंपनों की संख्या उतनी बढ़ा देता है कि मनुष्य का कान उन्हें ग्रहण कर सके और दूसरा लाउडस्पीकर के सिद्धांत पर है, जो उन कंपनों को इतना जोरदार बना देता है कि मनुष्य उन्हें सुन सके।'

'अगर सचमुच आपने इस काम में कामयाबी हासिल कर ली है तो सचमुच कमाल कर दिया है।' हुसैन साहब बोले, 'पर जब तक हमारे सामने करके न दिखा देंगे तब तक यकीन न आएगा।'

'अभी दिखाता हूँ, हुसैन साहब, पर करीब बीस मिनट तैयारी के लिए इंतजार करना पड़ेगा। हाँ, एक बात और, ब्रजलालजी आपकी पत्नी को जब कोई विशेष उत्तेजना हो जाती है, तब आप क्या करते हैं?' डॉ. साठे ने ब्रजलाल से मुखातिब होते हुए पूछा।

'एक टिकिया डॉक्टर श्रीवास्तव ने दे रखी है। उसे देने से वह शांत हो जाती हैं और दस मिनट के अंदर सो जाती हैं।' ब्रजलाल ने उत्तर दिया।

'तो आप अभी जाकर पत्नी को एक टिकिया खिला दीजिए', साठे ने कहा, 'जिससे वे सो जाएँ और उत्तेजित न हों और हुसैन साहब, मेहरबानी करके आप यहाँ बैठकर देखते रहिए कि मैं कोई चालाकी तो नहीं कर रहा हूँ।'

ब्रजलाल की पत्नी को राधा ने अभी-अभी खाना खिलाया था। पिता के आदेश पर उन्हें नींद की टिकिया खिला दी। थोड़ी देर में पत्नी गहरी नींद में सो गईं और ब्रजलाल साठे के कमरे में लौट आए।

'आइए ब्रजलालजी, सो गईं आपकी पत्नी?' साठे ने पूछा, 'देखिए हुसैन साहब ने मेरे ऊपर कड़ी निगाह रखी है और ये गवाह हैं कि बैटरियों के कनेक्शन ठीक करने के अलावा मैंने कोई गड़बड़ी या बेईमानी नहीं की है। यह रहा वह यंत्र, जिससे कंपन की गति तेज की जाती है और ये रहे लाउडस्पीकर के कनेक्शन। हुसैन साहब का विषय ही भौतिकी है और उन्होंने अवश्य ही मेरे कामों में किसी चालाकी की गंध भी न पाई होगी। अच्छा, अब मैं बाहर की बत्ती जलाता हूँ। आप लोग बाहर चलें।'

डॉ. साठे ने एक बड़ा सा सूजा मेज पर से उठाया। वह एक इंसुलेटेड तार से बँधा हुआ था।

'वह छोटी सी खुरपी दीवार की कील पर टँगी हुई है।' साठे ने कहा, 'कृपया इसे ले लीजिए। आपको थोड़ा सा खोदने का काम करना पड़ेगा।'

तीनों व्यक्ति कमरे से निकलकर बाहर बगीचे में आए। वहाँ एक जगह हल्की गीली जमीन पर मूली की छोटी सी क्यारी थी।

'हुसैन साहब', साठे ने कहा, 'जरा सावधानी से मूली के किसी एक पौधे के चारों ओर की मिट्टी खुरपी से हटाइए। देखिए, खुरपी मूली की जड़ में न लगने पाए।'

अभ्यस्त हाथों से हुसैन साहब ने एक मूली के चारों ओर की मिट्टी सावधानी से खोदी। जब आधी मूली दिखाई पड़ने लगी, तब खोदी हुई मिट्टी साठे ने कुछ दूर हटाकर चारों ओर की जगह साफ

कर दी।

'अच्छा, अब यह सूजा, ब्रजलालजी', साठे ने कहा, 'जोर से मूली में भोंक दीजिए। हाँ, ठीक है। बस अब अंदर चलिए।

'यह रहा वह यंत्र, जिससे वायु में कंपन की गति नियंत्रित की जाती है,' हुसैन साहब, 'यह किस सिद्धांत के अनुसार काम करता है, इससे आप भलीभाँति परिचित हैं। यह रहा लाउडस्पीकर का नियंत्रक।' दोनों स्विच 'आन' करते हुए साठे ने कहा।

अकस्मात् एक विचित्र प्रकार का चीत्कार कमरे में गूँज गया। ब्रजलाल और हुसैन दोनों के मुँह बरबस खुले के खुले रह गए।

'वर्णन कर सकते हैं इस चीत्कार का, जो मूली ने अपना कष्ट व्यक्त करने के लिए किया है?' साठे ने दोनों को संबोधित करते हुए पूछा। दोनों चुप रह गए।

'इसे टेपरिकॉर्डर में भर क्यों नहीं लेते?' हुसैन ने पूछा।

'इतनी सीधी सी बात मुझे अभी तक सूझी ही नहीं, कैसी आश्चर्य की बात है।' साठे बोले, 'पर मेरे पास न तो टेपरिकॉर्डर है और न उसे खरीदने के पैसे।'

'खैर, टेपरिकॉर्डर मैं आज ही खरीद लाऊँगा।' हुसैन ने उत्तर दिया।

□

पर उस दिन इतवार के कारण बाजार बंद था और टेपरिकॉर्डर न आ सका। दूसरे ही दिन साठे को सवेरे मिर्जापुर निकल जाना था।

उस रात तीनों व्यक्ति दस बजे रात को फिर एकत्र हुए और आलू, गाजर, हरसिंगार, मालती तथा नीम पर प्रयोग किए गए और प्रत्येक बार अजीब-अजीब ध्वनियाँ निकलीं। इतना अवश्य था कि प्रत्येक ध्वनि भिन्न प्रकार की थी। फिर ब्रजलाल और हुसैन को कोई संदेह अथवा आपत्ति करने का अवसर नहीं मिला।

'कल फिर से नए प्रयोग करके ध्वनियाँ रिकॉर्ड कर ली जाएँगी।' हुसैन साहब ने कहा।

'असंभव!' साठे बोले।

'क्यों?' हुसैन ने पूछा।

'कल मुझे फिर मिर्जापुर जाना है। आज बैटरियाँ तथा यंत्र पैक हो जाएँगे। मैं कल सवेरे मिर्जापुर के लिए रवाना हो जाऊँगा।' साठे ने कहा।

'मिर्जापुर में क्या है?' ब्रजलाल ने पूछा।

'मिर्जापुर में ही तो मेरा दूसरा शोध कार्य संपन्न होना है। मेरा विश्वास है कि वनस्पति में ही नहीं, पत्थरों में भी किसी-न-किसी प्रकार की चेतना होती है।' साठे ने बताया।

'तो मिर्जापुर में ही क्या खास बात है?' ब्रजलाल ने पूछा, 'नैनीताल, मसूरी इत्यादि स्थानों में भी तो पत्थर हैं।'

'अरे नैनीताल के पत्थर कोई पत्थर हैं? हिमालय तथा तिब्बत समुद्र तल में थे। वहाँ के बलुए पत्थरों की तहें हिमालय में हैं। असली पत्थर विंध्याचल तथा उसके दक्षिण में हैं। वे पत्थर सचमुच जानदार होंगे, लेकिन उनमें बहुत क्षीण मात्रा में चेतना मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है', साठे ने बताया, 'मेरा कल ही मिर्जापुर जाने का सब प्रबंध हो चुका है। टेपरिकॉर्डिंग दोनों रिसर्चों की एक साथ हो जाएगी।'

'कब तक लौटेंगे, साठे साहब?' हुसैन ने पूछा।

'कौन जाने?' साठे बोले, 'महीनों लग सकते हैं।'

'और मेरा किराया?' ब्रजलाल ने पूछा।

'भई इस समय तो मेरे पास पैसा मिर्जापुर जाने के लिए भी कम है,' साठे बोले, 'मैं सोचता हूँ, फ्लैट छोड़ दूँ। आप कृपा करके एक कोठरी में मेरा सामान रख लें। यदि भगवान् ने चाहा, आगे चलकर पाई-पाई चुकता कर दूँगा।'

'मेरे फ्लैट के एक कमरे में आप अपना सामान और किताबें बंद करके ताला डाल दीजिए', हुसैन साहब बोले, 'और किराया अगर जनाब साठे नहीं दे पाए तो मैं जिम्मेदार होऊँगा। ब्रजलाल साहब, बड़ी ऊँची हस्ती हैं डॉक्टर साठे।'

और दूसरे दिन सूर्योदय से पहले ही साठे साहब सामान ट्रक पर लादकर मिर्जापुर चले गए। दुर्भाग्य से हम उनका पता भी न पूछ सके।

कई महीने बीत गए। हम डॉक्टर साठे के समाचारों की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते रहे। मिर्जापुर में हुसैन साहब के कई परिचित मित्र थे। उनसे पत्र-व्यवहार किया गया। पर कुछ पता न चला।

एक दिन हुसैन साहब के एक मित्र ने मिर्जापुर के स्थानीय समाचार-पत्र की एक कटिंग भेजी। उसमें लिखा था—'लोमहर्षक दुर्घटना'।

मिर्जापुर नगर के बाहर पत्थर की एक पुरानी और लगभग परित्यक्त खदान में एक दु:खद दुर्घटना का समाचार मिला है। एक संवाददाता ने खबर दी है कि एक बड़ी चट्टान धसक जाने से एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई। कहा जाता है कि एक अज्ञात व्यक्ति ने एक पत्थर की खदान के ठेकेदार के साथ किसी अज्ञात उद्देश्य से खदान की एक गुफा में रहकर कुछ काम करने का समझौता किया था। गुफा की छत अकस्मात् धँस गई। टनों पत्थर के नीचे दबी उस व्यक्ति की लाश निकालने में कई दिन लग गए। लाश इतनी क्षत-विक्षत हो गई थी कि पहचानने का कोई साधन नहीं था। ऐसा जान पड़ता है कि मृत व्यक्ति कोई प्रयोग या अनुसंधान कार्य कर रहा था, क्योंकि उसके साथ अनेक तेजाबी बैटरियाँ, बिजली के तार और वैज्ञानिक पुस्तकें आदि थीं। तेजाब के कारण केवल एक पुस्तक पर अंग्रजी का शब्द 'साठे' लिखा हुआ पढ़ा जा सका। दुर्भाग्य से जिस ठेकेदार से मृत व्यक्ति का समझौता हुआ था, वह खदान का काम छोड़े हुए था और बहुत बीमार था। उसकी भी कई दिन हुए मृत्यु हो चुकी है। इसलिए इस घटना का रहस्य अब तक नहीं खुल पाया है।

समाचार कटिंग से इस बात में कोई संदेह नहीं रह गया कि मृत व्यक्ति डॉ. साठे ही थे। वह अपने साथ स्व. जगदीश चंद्र बसु के अनुसंधान को आगे बढ़ाकर भी रहस्य के रूप में छोड़ गए तथा विज्ञान की अपूरणीय क्षति कर गए।

ई-४ सौभाग्य अपार्टमेंट्स
८, गोपाल नगर, लखनऊ-२२६०२३
दूरभाष : ९४५०००००९४

मातृ-दिवस (१४-५-२०१७)

● रामदरश मिश्र

माँ की याद तो आती ही रहती है। मेरे लिए तो हर दिवस मातृ-दिवस होता है। वह तो न जाने कितने रूपों में मुझमें समाई हुई है। जब मैं सबसे उपेक्षित हो रहा था, तब उसी ने मुझे अक्षर-ज्ञान कराया था। मेरी सारी कविताओं, कहानियों, उपन्यासों, यानी कि समूचे रचनाकर्म में वही तो समाई हुई है। उँगली पकड़कर उसने मुझे क, ख, ग लिखना नहीं सिखाया होता तो मेरी शिक्षा-यात्रा और रचना-कर्म कैसे संभव हुआ होता। मेरे भी हाथ में लेखनी की जगह कुदाली होती, हँसिया होता, खुरपी होती, माथे पर खाद गोबर होता। और उसकी ममता का तो कहना ही क्या? घोर अभावों के दिनों में भी उसने जिस साहस और कार्य-कुशलता के साथ घर चलाया और हम भाइयों को कभी लाचार अनुभव होने नहीं दिया, वह तो अप्रतिम है। किसी भी प्रकार का संकट आने पर वह स्वाभिमान के साथ संकट और हमारे बीच खड़ी हो जाती थी। विवेकशील इतनी थी कि धर्म या समाज-प्रथा के नाम पर व्याप्त गलाजत को निर्भीक होकर ठुकरा देती थी। माँ, मैं तो तुम्हें रोज याद करता हूँ किंतु आज तुम्हारे लिए मेरी यह गजल भेंट है। तुम जहाँ कहीं हो, इसे स्वीकार करना माँ—

गाल पर ढलका हुआ एक दर्द का मोती है माँ,
घोर अँधियारों में जलती प्यार की जोति है माँ।

ओठ उसके, उसकी आँखें हैं भला उसके कहाँ,
घर के सुख-दु:ख में समाकर हँसती है रोती है माँ।

बारी-बारी छोड़ जाते साथ हैं जब हमसफर,
मेरी रग-रग में दुआ सी तैरती होती है माँ।

भूख, बीमारी, तबाही सोखते रहते हैं रस,
ख्वाब फिर-फिर घर की बंजरभूमि में बोती है माँ।

दहशतें आ जाएँ आँखों में न बच्चों के कभी,
रातभर सोती हुई सी भी कहाँ सोती है माँ।

भागती सुबहें, बहुत बेचैन दिन, शामें थकीं,
भग्न रातें शीश पर अपने सदा ढोती है माँ।

दाग कितने ही लगा बाहर से आ जाते हैं लोग,
आँच में खुद को गला करके उन्हें धोती हैं माँ।

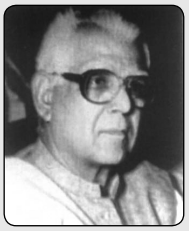

हिंदी के मूर्धन्य कवि-साहित्यकार, जिन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं को अपने रचनात्मक अवदान से समृद्ध किया। 'जल टूटता हुआ' और 'पानी के प्राचीर' उपन्यासों की धूम रही। अभी हाल में कविता-संग्रह 'आम के पत्ते' 'व्यास सम्मान' से अलंकृत, 'साहित्य अकादेमी सम्मान' व अनेक विशिष्ट सम्मानों से विभूषित।

जलती रहती है अँगीठी सी रसोईघर के बीच,
देके पूरी जिंदगी कुछ भी कहाँ खोती है माँ।

माँ की चिट्ठी

तुम अपढ़ थीं माँ, मुझे कितना सालती रही है यह बात कि तुम्हारी कोई चिट्ठी मेरे पास नहीं है, लेकिन आज लगता है कि मेरा पूरा जीवन एक बड़ा-सा पन्ना है, जिस पर तुमने अपने को समूचा लिख दिया। लगातार झर रही है तुम्हारी खुशबू और फैलती जा रही है आस-पास।

मैं दादा बन गया

मैं दादा बन गया किंतु माँ अब भी बहुत याद आती है
मेरे बूढ़े कंधों पर सहसा कोई बच्चा चढ़ जाता
मेरी पोथी फेंक-फाँककर कोई बाल गीत पढ़ जाता
दरवाजे पर खड़ी हुई माँ देख-देखकर मुसकाती है

गोदी में मेरा सिर लेकर कहती, 'बहुत दिनों पर आए
कैसे रहे, बहू कैसी है, कैसे हैं बच्चे मनभाए'
आँखों में ममता अपार भरकर मेरा सिर थपकाती है

आ जाती है याद रात वह, पास सुलाकर करुण कहानी
कहती थी माँ, मेरी आँखों से झरझर बहता था पानी
अब भी मेरी थकी रात में लगता वह लोरी गाती है

भर आते हैं रह-रहकर आँखों में गहन अभावों के दिन
किन-किन चोटों से बनते घर के शरीर पर घावों के दिन
लड़ती इन बेदर्द दिनों से माँ देखो हँसती जाती है

आर-३८, वाणी विहार
उत्तम नगर, नई दिल्ली-११००५९
दूरभाष : ९२११३८७२१०

बोनस में आशीर्वाद

● मालती जोशी

''बिन्नी की शादी हो रही है।'' मैंने बुरा सा मुँह बनाकर कहा।

''कौन बिन्नी?'' इन्होंने पूछा।

''बिन्नी को नहीं जानते, कमाल है?''

''भई, ये बिन्नी कोई प्रियंका गांधी या प्रियंका चोपड़ा तो है नहीं कि सारा हिंदुस्तान उसे जानेगा!''

''बिन्नी, मतलब माँ की केयरटेकर।''

''ओह, अच्छा वो नाम बिंदिया और बालविधवा?''

''छीह! इतनी घटिया बात आप कैसे कर सकते हैं?''

''ये अनमोल वचन मेरे नहीं, आपकी प्रिय दीदी रानी के हैं। उस बार हम लोग माँ की ७५वीं सालगिरह मनाने के लिए इकट्ठा हुए थे, तब मैंने पूछा था कि यह कौन है? तब दीदी ने आँख के अंधे नाम नयनसुख की तर्ज पर यह जवाब दिया था।''

''ये दीदी भी न कभी-कभी गजब करती है।''

''खैर, दीदी की छोड़ो और यह बताओ कि तुम क्यों इतनी दु:खी हो रही हो? बिन्नी की शादी हो रही है। यह तो खुशी की बात है, पर तुम्हारा सुर ऐसा है, मानो बिन्नी को कैंसर हो गया हो।''

''बिन्नी के लिए खुशी की बात होगी। पर जरा माँ के बारे में सोचिए। उन्हें अब कौन देखेगा? भाईसाहब तो सारे झंझटों से मुक्त होकर अमेरिका में जाकर बैठ गए हैं। अब जो कुछ सोचना है, मुझे और दीदी को ही सोचना है।''

''बिन्नी की शादी की बात माँ को पता है?''

''माँ को पता है। अरे, वही तो इस नाटक की सूत्रधार हैं। अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारना इसी को तो कहते हैं।''

''वे ही सूत्रधार हैं, मतलब?''

''अरे, उन्होंने ही आगे बढ़कर लड़का ढूँढ़ा है। लड़का क्या, पूरा आदमी है—दो बच्चों का बाप!''

''बिन्नी की भी उम्र कम तो नहीं होगी। पंद्रह साल से तो यहीं काम कर रही है।''

''वह भी चालीस की हो चली है। बताइए, अब उसकी शादी की क्या जरूरत थी! पर माँ को जैसे परोपकार का भूत चढ़ा है। कह रही थी कि मेरे बाद इस लड़की का क्या होगा? इसलिए अपने सामने ही उसे सेटल करके जाना चाहती हूँ। और पता है, शादी का खर्च भी खुद उठा रही है। मुझे और दीदी को भी आदेश मिला है कि पाँच-पाँच साड़ियाँ और एक-एक सफारी सूट का कपड़ा लेकर आना है। बोली कि छोटी बहन की शादी है, कंजूसी मत करना।''

सुप्रसिद्ध लेखिका। विविध विधाओं की ४० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित; १० मराठी कथा-संग्रह, एक गीत-संग्रह एवं हिंदी की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं लघु उपन्यास प्रकाशित। अनेक कहानियों का कन्नड़, मलयालम, तमिल, गुजराती, उर्दू आदि भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेजी, रूसी और जापानी भाषाओं में अनुवाद। 'साहित्य शिखर सम्मान' सहित कई सम्मानों से सम्मानित।

''वाह, मतलब हमारी साली साहिबा की शादी है। तब तो हमें भी नेग-दस्तूर मिलेगा।''

''आपको तो बस हरदम मजाक ही सूझता है। स्थिति की गंभीरता को तो कभी समझते ही नहीं हैं।'' मैंने मुँह फुलाकर कहा और विषय ही समाप्त कर दिया।

बिन्नी की शादी में न जाने का सवाल ही नहीं था। माँ का आदेश था तो उसे मानना ही था। ये ना-नुकर कर रहे थे, पर मैंने किसी तरह इन्हें राजी कर लिया। उस शादी में घर के पुरुषों का होना बहुत जरूरी था। इसलिए दीदी से भी कहा कि अकेली न आए, जीजाजी को साथ जरूर लाए।

मुझे पता चला था, मतलब माँ ने ही बताया था कि बिन्नी के भाइयों को यह शादी मंजूर नहीं थी। वे दोनों लड़ने आ गए थे। वे बोले कि आप ये क्या अधर्म कर रही हैं! ब्राह्मणों की कन्याओं पर दुबारा हल्दी नहीं चढ़ती। पर माँ ने उन लोगों को डाँट-डपटकर भगा दिया था, पुलिस का डर भी दिखाया था। पर शादी में दल बाँधकर आ गए तो? बीच मंडप में हंगामा खड़ा कर दिया तो?

बिन्नी के भाई लोग माँ से वैसे भी खार खाए हुए थे। जब बिन्नी

नई-नई काम पर लगी थी तो हर दूसरे-तीसरे महीने पैसों के लिए आकर खड़े हो जाते थे। माँ उन्हें घुड़क देती थी—'उसका पैसा मैं बैंक में जमा कर रही हूँ। यहाँ तो उसे जरूरत नहीं है। मेरे यहाँ खाती है, सोती है। मेरा दिया कपड़ा पहनती है। जिस दिन मैं नहीं रहूँगी, यह पैसा उसके काम आएगा।'

माँ के सामने दाल नहीं गलती तो वे लोग अपनी बूढ़ी माँ को भेज देते थे। वह रोती-झींकती आती और बिन्नी से सौ-पचास झटककर ले जाती।

माँ की पुरानी महाराजिन जब बूढ़ी हो गई तो अपनी इस भोली को माँ के पास ले आई थी। बोली, 'दुखियारी है बेचारी। बचपन में ही सुहाग छिन गया। भाइयों ने न पढ़ाया, न लिखाया। उन्हें तो मुफ्त की नौकरानी मिल गई। बेचारी भाभियों की जचगी करते-करते ही बुढ़ा जाएगी। उन लोगों से लड़-झगड़कर अपनी बहन को समझा-बुझाकर आपके पास ले आई हूँ। आप ही इसका कल्याण कर सकती हैं। एकदम गऊ है। आपकी सेवा करेगी और आपके चरणों में पड़ी रहेगी।'

माँ ने तो जैसे उसके कल्याण का बीड़ा ही उठा लिया। ट्यूटर लगवाकर उसे पढ़ाया। पहले पाँचवीं, फिर आठवीं, फिर दसवीं का बोर्ड दिलवाया। सिलाई क्लास भी भेजती रही। अपनी सिलाई मशीन उसके हवाले कर दी कि गली-मोहल्ले के बच्चों के कपड़े सिलती रहे। अपने पास बिठाकर कढ़ाई-बुनाई सिखाई। अब वह पास-पड़ोस वालों के स्वेटर बुनकर पच्चीस-पचास कमा भी लेती है।

जिस दिन उसके दसवीं का रिजल्ट आया, उस दिन माँ बहुत खुश थीं। बोलीं, 'चल, अब किसी स्कूल में चपरासिन तो बन सकेगी। नहीं तो मेरे बाद बेचारी एकदम सड़क पर ही आ जाती।'

'मेरे बाद' आजकल उनका तकिया-कलाम हो गया था। इसी के चलते उन्होंने बिन्नी की शादी का बीड़ा उठाया था। दस जगह बात करके उसके लायक वर ढूँढ़ निकाला। और अब कन्यादान करने को आतुर हैं।

मैंने एक बार कहा भी, ''माँ, तुमने हमारी इतनी चिंता कभी नहीं की, जितनी बिन्नी की करती हो!''

बोलीं, 'तुम्हारे पिताजी तुम्हें ऐसे हाथों में सौंप गए हैं कि चिंता पास भी नहीं फटकेगी। पर इस बेचारी का कौन है?'

फिर वही बात, कभी-कभी तो बिन्नी से ईर्ष्या होने लगती है।

घर दूर से ही एकदम शादी का घर लग रहा था। रंगीन पताकाएँ, फूल मालाएँ, बिजली की झालरें तथा आम के पत्तों के बंदनवार, हल्दी-कुमकुम के छाप देखकर मन प्रसन्न हो गया।

दरवाजे के अंदर पैर रखते ही एक बुजुर्ग महिला सामने आईं, ''नमस्ते दीदी रानी! पाँव लागो कुँअरजी।''

''नमस्ते!'' मैंने कहा, ''पर मैंने आपको पहचाना नहीं।''

''हम बिन्नी की माँ हैं।''

''ओह! माफ कीजिए, बहुत साल पहले देखा था न, इसलिए पहचान नहीं पाई। शादी में आई होंगी न आप! स्वागत है!''

वह मेरा बैग लेने लगी, तो मैंने उसे मना कर दिया, ''पहिए हैं इसमें, खींचकर ले जाऊँगी।'' दरअसल उनकी हालत ऐसी थी कि वे पहिएवाला बैग भी खींच न पातीं। बहुत ही दुर्बल हो चुकी थीं। बाल सन से सफेद हो गए थे। तभी तो पहचान नहीं पाई।

तब तक मेरी आवाज सुनकर दीदी बाहर निकल आईं, ''अरे, आप लोग कब आए?''

''बस, अभी दो घंटे पहले ही पहुँचे हैं।'' फिर कमरे में जाते-जाते दीदी ने पूछा, ''स्वागत किसका कर रही थीं?''

''बिन्नी की माँ का।''

वे होस्ट हैं पगली। तभी तो तुम्हारे स्वागत के लिए खड़ी थीं।

''मतलब?''

''मतलब, अब वे यहीं रहेंगी। बेटों ने कह दिया है कि बिन्नी की शादी में जा रही हो तो अब वहीं रहना। घर लौटने की जरूरत नहीं है। और हमारी करुणानिधान माताराम ने तुरंत उन्हें अपनी शरण में ले लिया।''

''धिरा इज ए ब्लेसिंग इन डिसगाइस, दीदी। हम लोगों को चिंता हो रही थी न कि बिन्नी चली जाएगी तो माँ का क्या होगा! अब वह समस्या हल हो गई।''

''हालत देखी है उनकी? ये क्या काम करेंगी।''

''काम करने के लिए तो लोग हैं न, दीदी। बरतन-कपड़ों के लिए दुलारी भाभी हैं। साफ-सफाई और बाजार-हाट के लिए बिरजू भैया हैं। और माँ कह रही थीं कि रसोई के लिए भी किसी को रख लेंगी।''

''रख ली। पिछले आठ-दस दिनों से बिन्नी को किसी भी काम में हाथ नहीं लगाने दिया है।''

''ग्रेट, माँ को सचमुच सलाम करने को जी चाहता है। जो भी करती हैं, पूरे मन से करती हैं।''

''यह कहो कि जो करती हैं, अपने मन का करती हैं। किसी से पूछने-ताछने की जरूरत ही नहीं समझतीं। अब इन देवीजी को रख लिया है, जो एक पाँव कब्र में लटकाकर बैठी हैं। कल को मर-मरा गईं तो इनके बेटे आकर हंगामा खड़ा कर देंगे।''

''शुभ-शुभ बोलो दीदी, शादी का घर है।''

मेरे कहने पर दीदी चुप तो हो गईं। पर चेहरे से लग रहा था कि उनकी भड़ास पूरी तरह निकली नहीं है।

माँ बहुत खुश हुईं। उनकी दोनों बेटियाँ और दामाद समय से पहुँच गए। उनके आदेशानुसार हम लोग तो साड़ियाँ और सूटपीस भी लाई थीं। मैं अपनी ओर से एक अमेरिकन डायमंड का हलका सा सेट भी ले आई थी। पर दीदी का मूड़ देखकर उस समय निकाला नहीं। सोचा कि माँ को बाद में चुपके से दे दूँगी।

बिन्नी मिली तो लिपट ही गई। खूब रोई। मुझे भी रोना आ गया। आखिर इतने दिनों का साथ था। हर साल जब मैं दस-पाँच दिनों के

लिए माँ के पास आती तो वह मेरी इतनी खातिरदारी करती। बच्चों को इतना लाड़ करती।

उसका चेहरा एकदम निखर आया था। उम्र से दस साल छोटी लग रही थी। शादी की खुशी लड़कियों के चहेरे पर नूर ले आती है। फिर बिन्नी के लिए तो शादी का मतलब था—एक अप्रत्याशित सपने का सच होना।

आर्य समाज मंदिर में बिन्नी की शादी खूब धूमधाम से संपन्न हुई। करीब आधा कस्बा निमंत्रित था। सबने माँ की खूब जय-जयकार की। और यह भी बोले कि तुम्हारी माँ का पी आर बहुत तगड़ा है। मैंने कहा, उसी के बल पर उन्होंने अकेले इतने दिन काटे हैं।

बरात में कुल जमा पाँच लोग थे। दूल्हे की माँ, दूल्हे के भाई-भाभी और दोनों बच्चे। सबकी खूब खातिरदारी की गई। कपड़ों और भेंट-वस्तुओं से उन्हें लाद दिया गया। दूल्हे की माँ गद्‌गद थी। कृतज्ञभाव से बोली, ''बहनजी, आपने मेरा मरना आसान कर दिया। नहीं तो इन बच्चों की चिंता के मारे मैं हलकान थी।''

विदाई के समय बिन्नी खूब रोई। इतना तो शायद हम दोनों भी अपनी शादी में नहीं रोई थीं। और माँ जितना बिन्नी के लिए रोईं, हमारे लिए नहीं रोई थीं।

जैसा कि बेटी की विदाई के बाद होता है, घर एकदम सूना हो गया था। बिन्नी अपने पंद्रह साल के अस्तित्व की छाप घर के हर कोने में छोड़ गई थी। मुझे डर लगा कि माँ यह सब कैसे झेल पाएँगी। मैंने दो-चार दिन रुकना चाहा तो माँ ने साफ मना कर दिया। बोलीं, ''तुम बच्चों को नौकरों के भरोसे छोड़ आई हो, यह मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगा। जमाना कितना खराब है, जानती हो?''

''माँ, वे सब मेरे पुराने लोग हैं। गंगाराम बरसों से हमारे यहाँ काम करता रहा है। और गायत्री, उसी ने एक तरह से उन दोनों को पाला है।''

''फिर भी, तुम अब लौट जाओ। मेरे अकेलेपन की चिंता मत करना। मुझे तो अब इसकी आदत हो गई है।''

''अगर मैं कहूँ, कुछ दिन चलकर मेरे पास रहो, तो तुम मानोगी नहीं। इस मामले में खासी दकियानूसी हो।''

वे सिर्फ हँसकर रह गईं।

रात को सोने से पहले माँ ने हम चारों को कमरे में बुलाया और सामने बिठाकर नेग-दस्तूर दिया। दामादों को चाँदी के गिलास, हम दोनों को साड़ियाँ और बच्चों को लिफाफे। इन्होंने घर पर मजाक किया था, पर माँ ने सचमुच परंपरा का निर्वाह किया।

यह सब करने के बाद माँ ने पूछा, ''अब एक बात बताओ। इस घर के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है?''

''मतलब?''

''मतलब, घर में कितना इंटरेस्ट है?''

''क्यों? बिन्नी के नाम करना है?'' दीदी तपाक से बोली। माँ ने उन्हें घूरकर देखा। फिर शांति से बोलीं, ''बिन्नी को जो देना था, मैं दे चुकी। अब कुछ देना-पावना बाकी नहीं है। कभी तीज-त्योहार पर आएगी तो साड़ी-चूड़ी कर दूँगी, बस।''

''फिर क्यों पूछ रही हो?''

''इसलिए कि घर को रखना चाहोगी तो नीचे-ऊपर दोनों हिस्से करके तुम्हारे नाम कर दूँगी।''

''और भैया?'' मैंने पूछा।

''उसने कह दिया है कि मुझे कोई इंटरेस्ट नहीं है। मैं हिंदुस्तान वापस नहीं आऊँगा। आया भी तो किसी शहर में ही रहूँगा। तो अब तुम्हीं लोगों को तय करना है।''

''ऊपर तो किराएदार हैं न?'' मैंने कहा।

''हैं, तो तुम्हें कौन सा यहाँ रहना है? किराया लेती रहना।''

''तो क्या किराया है?'' दीदी ने व्यंग्य किया।

''बेटा, तुम शहर से तुलना मत करो। यहाँ इससे ज्यादा कोई नहीं देता।''

''फिर इतने से किराए के लिए घर को क्यों बरबाद कर रही हो? जरा भी प्राइवेसी नहीं है। दिनभर बच्चों की चिल्ल-पों मची रहती है सो अलग।''

''बेटा, यह घर किराएदारों के हिसाब से बना ही नहीं था। सोचा था कि सब लोग इकट्ठा होंगे तो इतना बड़ा घर तो चाहिए न! पर सब लोग इकट्ठा कितनी बार आए? एक तुम्हारे बाबूजी की तेरही पर, दूसरी बार मेरी ७५वीं सालगिरह पर। अब शायद मेरी···''

''प्लीज माँ!'' मैंने माँ को टोक दिया तो वे चुप हो गईं। फिर दीदी ही बोलीं, ''सारिका, इस उम्र में प्राइवेसी की नहीं, कंपनी की जरूरत होती है। वह जरूरत पर आवाज देने के लिए कोई पास में है, यह एहसास बड़ा सुकून देता है। रही बच्चों की चिल्ल-पों की बात तो मैं तो इसके लिए तरस गई हूँ। नाती-पोतों की किलकारियाँ सुने अरसा हो गया। पहले छुट्टियों में बच्चे नानी के घर जाते थे। अब शायद वह रिवाज ही खत्म हो गया।''

''अब छुट्टियाँ होती ही कहाँ हैं, माँ!'' मैंने कहा, ''मार्च में स्कूलवाले परीक्षा लेकर रिजल्ट निकाल देते हैं। फिर अप्रैल में नए सेशन शुरू करके छुट्टियों के लिए ढेर सारा होमवर्क दे देते हैं। बच्चे भी परेशान होते हैं और माँ-बाप भी। ऊपर से ये हॉबी क्लासेस अलग चल गई हैं। छुट्टियाँ कब शुरू हुईं, कब खत्म हुईं, पता ही नहीं चलता।''

''और यहाँ आकर बच्चे करेंगे भी क्या?'' दीदी बोलीं, ''छोटे थे, तब भी बोर होते थे। अब तो सवाल ही नहीं उठता।''

''माँ, तुम्हारा दूसरा ऑप्शन क्या है?'' मैंने दीदी की बातों से माँ का ध्यान हटाने के लिए कहा।

''दूसरा ऑप्शन यह है कि घर को बेच देते हैं। पैसा तुम दोनों

बाँट लेना।''

''और भैया?''

''उसने कह दिया है कि जो देना है, सारिका-राधिका को दे दो। मुझे कुछ नहीं चाहिए।''

''और घर बिक जाएगा तो तुम कहाँ रहोगी?''

''अभी थोड़े ही, मेरे मरने के बाद। हाँ, एक बात है।''

''क्या?''

''ये बिन्नी की माँ अगर मेरे बाद भी बनी रही तो उसे एक कोना दे देना। पड़ी रहेगी। दोनों सौ-पचास भेजती रहना। उसकी जिंदगी कट जाएगी।''

''मेरी समझ में नहीं आता कि ये बला तुमने आखिर क्यों पाल ली है?'' दीदी के स्वर में खासा रोष था।

''बेटा! एकाकी बुढ़ापा क्या होता है, इसे मैं बहुत अच्छी तरह से जानती हूँ। मेरे पास तो फिर भी साधन हैं। पर जिसे पहने हुए कपड़ों के साथ घर से निकाल दिया गया हो, उसके बारे में सोचो।''

''सबके बारे में सोचने का ठेका तुम्हीं ने ले रखा है?''

''ये पूर्वजन्म के ऋणानुबंध होते हैं, बेटा! नहीं तो बिन्नी मेरे पास ही क्यों आती! दुनिया में और भी तो घर थे। खैर, मैं बिन्नी की माँ का भार तुमपर नहीं डालूँगी। ऐसा करो, घर का जो पैसा आएगा, उसमें से पाँच-दस हजार बैंक में डाल देना। ऐसी व्यवस्था कर देना कि उसका खर्चा-पानी चलता रहे। बाद में वह रकम बिन्नी को दे देना।''

''इतना झंझट करने की जरूरत क्या है! वे पाँच-दस हजार उनके बेटों को दे दो। रुपयों के लालच में वे माँ को रख लेंगे।''

''जो बेटे माँ को घर से बेदखल कर सकते हैं, उनका कोई भरोसा है क्या?'' जीजाजी ने इतनी देर बाद पहली बार मुँह खोला था, ''वे लोग पैसे भी हड़प लेंगे और माँ को भी भूखों मार देंगे।''

''वैसे भी वो कौन सी सौ साल जीनेवाली हैं।''

''प्लीज सारिका?'' अच्छा हुआ जीजाजी ने ही दीदी को घुड़क दिया। हम लोगों की तो हिम्मत नहीं थी। उसके बाद कमरे में एक असहज सी चुप्पी छा गई।

उस सन्नाटे को तोड़ते हुए कुछ देर बाद ये बोले, ''माँजी, मैं एक बात कहूँ!''

''बोलो बेटा! इसीलिए तो तुम सबको बुलाया है कि सबकी राय मालूम हो।''

''यह घर बाबूजी ने इतने प्यार से बनाया है। इसे आपका नाम दिया है। कल को यह बिक जाएगा तो आप लोगों की याद के साथ नाम भी खो जाएगा।''

''जब हम ही नहीं रहेंगे बेटा, तो नाम के रहने, न रहने से क्या फर्क पड़ता है?''

''लोग तो चले जाते हैं, माँजी, पर उनका नाम रह जाता है। हर व्यक्ति यह कोशिश करता है कि उसके बाद भी उसका नाम बना रहे।''

''ठीक है, पर इसके लिए क्या करने को कहते हो?''

''इस घर को बिन्नी की माँ जैसी निराश्रित-असहाय वृद्धाओं के लिए आश्रय-स्थल बना दिया जाए तो?''

''भाईसाहब आप क्या कहते हैं?'' इन्होंने जीजाजी से पूछा।

''आइडिया बहुत अच्छा है, बशर्ते तुम मुझसे कोई डोनेशन न माँगो।''

''हमारे-आपके डोनेशन से क्या होगा! इसके लिए तो हमें कोई एन.जी.ओ. पकड़ना पड़ेगा।''

''संदीप! क्यों हम बहनों का हक मार रहे हो? हमारी माताश्री पहले ही बहुत पहुँची हुई हैं। उसपर तुम नए-नए आइडिया परोस रहे हो।''

''दीदी! मैंने सोचा कि यदि यह घर बिक भी गया तो इस छोटे से कस्बे में इसका कितना पैसा मिलेगा! जो मिलेगा, उसके भी दो हिस्से होंगे।''

''तीन कहो। बिन्नी की माँ को भूल गए?''

''फिर तो आपको बहुत हिस्से करने पड़ेंगे। बिरजू भैया के बेटे की इंजीनियरिंग की पढ़ाई इसी घर से हो रही है। दुलारी भाभी की बहुओं को यहीं से सिलाई मशीनें हासिल होती हैं। ऊपरवाली भाभी मोंटेसरी माँजी के भरोसे ही ट्रेनिंग ले रही है।

''तुम तो बड़े खुफिया निकले, दामादजी!'' माँ हैरान थीं।

''माँ, इतना पुण्य जोड़कर क्या करोगी?''

''यही तो साथ जाएगा बेटा! बाकी सब तो यहीं छूट जाना है।''

इसी आध्यात्मिक नोट पर वह महफिल बरखास्त हो गई।

□

सुबह मैं तैयार हो रही थी तो देखा कि दीदी रानी अभी गाऊन में ही घूम रही हैं।

''आप लोग देर से निकलोगे क्या?'' मैंने पूछा।

''नहीं, मैं दो-चार दिन रुकने की सोच रही हूँ। सब लोग एकदम चले जाएँगे तो घर सूना हो जाएगा।''

''मैं भी रुकना चाह रही थी, पर माँ ने साफ मना कर दिया।''

''तुम्हारे बच्चे छोटे हैं न। मेरे साथ यह प्रॉब्लम नहीं है।''

लौटते में मैंने इन्हें रास्ते में बताया, ''अच्छा है, दीदी दो-चार दिन रुक रही हैं। सब लोग एकदम चले जाते तो घर सूना हो जाता। माँ दुःखी हो जातीं।''

''तुम्हें क्या लगता है कि आदरणीय दीदी तुम्हारी माँ का अकेलापन

बाँटने के लिए रुकी हैं?''

''मतलब?''

''मतलब जल्दी ही पता चल जाएगा।''

''इनका अनुमान एकदम सही था। सप्ताह भर में ही माँ का फोन आ गया, ''राधिका! मैं बिल बनवा रही हूँ। सोचा, मोटा-मोटी बातें तुम्हें बता दूँ।''

''तुम्हें मरने की इतनी क्या जल्दी पड़ी है, माँ?''

''मैं कोई आज ही मरनेवाली नहीं हूँ। पर हर काम समय से हो जाए तो अच्छा है। पता नहीं, बाद में हाथ-पैर, आँख-कान और खासकर दिमाग सलामत रहे, न रहे। तो सुनाऊँ?''

''हाँ बोलो।''

''मैंने यह घर तुम्हारे नाम कर दिया मय सामान के।''

''दीदी से पूछ लिया है?''

''उसी की सहमति से सब तय हुआ है। मेरे पास जो थोड़ा सा कैश है और चार चीजें हैं, वो उसे दे रही हूँ। तुम्हें मेरा कोई गहना पसंद हो तो बता दो, ताकि अलग रख दूँ।''

''नो चीटिंग ममा! मुझे जो दे रही हो, वह सिर-माथे। अब प्लीज बार-बार जाने की बात मत करना, दु:ख होता है।''

शाम को ये ऑफिस से लौटे तो मैंने कहा, ''आपने सही अंदाजा लगाया था, दीदी रानी बँटवारे का पूरा प्लान बनाकर ही माँ के यहाँ से विदा हुई हैं।''

फिर मैंने उन्हें पूरा ब्योरा सुनाया और कहा, ''यह घर एक तरह से मेरे नहीं, आपके नाम हुआ है।''

''मतलब?''

''आपने उस दिन जो योजना बताई थी, लगता है, माँ को बहुत भा गई है। इसलिए तो घर मय साजो-सामान के सौंप रही हैं। इसका मतलब समझ रहे हैं आप? साठ साल की जमी-जमाई गृहस्थी। बरतन, क्रॉकरी, पलंग, बिस्तर, अलमारियाँ, फर्नीचर, लाईट, कूलर, पंखे आदि आपको कुछ खरीदना नहीं पड़ेगा। माँ के ढेर सारे कपड़े भी हैं। मतलब आश्रम की मूलभूत जरूरतें पूरी हो गई हैं। आगे का काम आप देखिए।''

वे थोड़ी देर चुप रहे। फिर गंभीर स्वर में बोले, ''राधिका, तुम्हें ऐसा तो नहीं लग रहा कि तुम ठगा गई हो!''

''मतलब!''

''तुम्हारे हिस्से तो कुछ नहीं आया?''

''ऐसा क्यों सोच रहे हैं?''

''क्या सचमुच खुश हो?''

''देखिए खुशी की परिभाषा सबकी एक सी नहीं होती। उस घर में माँ-बाबूजी की इतनी यादें हैं कि उसके बिकने की कल्पना मात्र से ही मैं दु:खी हो गई थी। अब लग रहा है कि माँ-बाबूजी हमेशा मेरे साथ रहेंगे। उनका आशीर्वाद हमेशा मुझे मिलता रहेगा।''

''और बोनस में उन लोगों के आशीर्वाद भी मिलेंगे, जो उस सुमन वाटिका में आकर रहेंगी।''

वह कल्पना ही इतनी सुंदर थी कि मुझे रोमांच हो आया।

१२०, मदनलाल ब्लॉक, एशियाड विलेज
नई दिल्ली-११००४९

पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक **साहित्य अमृत** के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. 1110734393 IFSC–CBIN 0280297 में **साहित्य अमृत** के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- आपको अगर **साहित्य अमृत** का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया फोन नं. ०११-२३२५७५५५, २३२७६३१६ अथवा sahityaamritindia@gmail.com पर इ-मेल करें।

उर्वशी की कलम से

• उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

बाल्यकाल से ही कविताएँ लिखने में विशेष रुचि। कालांतर में गजलें लिखने का भी अनुभव। महिला विषयों विशेषकर उनकी विभिन्न भावनाओं को कविताओं व गजलों के माध्यम से प्रस्तुत किया। अब तक लगभग एक हजार हिंदी कविताओं व गजलों का सृजन। तीन कविता व गजल-संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाले हैं। लेखन के अतिरिक्त पाक कला में भी विशेष रुचि। कविताओं व गजलों के अतिरिक्त राष्ट्रभक्ति व सुरक्षा संबंधी विषयों पर भी लेखन।
प्रयागराज की प्रतिष्ठित संस्था गुफ्तगू द्वारा सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार से हाल ही में सम्मानित।

संप्रति : President, Defence and Security Alert Magazine,
Pawitra International (P) Ltd.

एक

शबनम की इक बूँद दहकते अंगारों से क्या लड़ती
एक अकेला जुगनू थी मैं अंधियारों से क्या लड़ती

छोटी सोच के ऊँचे लोगों को दर्पण क्या दिखलाती
मैं ठहरी बुनियाद का पत्थर मीनारों से क्या लड़ती

मेरे समर्पण में तड़पन थी किस किस से ये बात कहूँ
एक अकेली मछली थी मैं मछुआरों से क्या लड़ती

धज्जी धज्जी कर डाला परिहास बनाकर लोगों ने
मैं छोटी सी एक खबर थी अखबारों से क्या लड़ती

अलग-थलग कर डाला खुद को मैंने मेन कहानी से
पल-पल रंग बदलने वाले किरदारों से क्या लड़ती

दो

अगर ये बात हम सबको बता देते तो क्या होता
नजर में आपको सबकी गिरा देते तो क्या होता

अगर हम आसमां सर पर उठा देते तो क्या होता
कहानी बर सरे-महफिल सुना देते तो क्या होता

मुझे तूफां ने जब घेरा, बचाने को सभी आए
अगर तुम हाथ अपना भी बढ़ा देते तो क्या होता

चलो अच्छा हुआ तुम रास्ते में खुल गए वर्ना
अगर मंजिल पे आकर तुम दगा देते तो क्या होता

अरे हम हार जाने में भी खुश थे, पर ज़रा सोचो
हमें तुम जीत जाने की सजा देते तो क्या होता

तीन

मजबूरी-ए-किस्मत की तासीर है पैरों में
कैसे मैं चली आऊँ, जंजीर है पैरों में

जो टीस उठे दिल में, उसका है पता दिल को
रिसते हुए छालों की इक पीर है पैरों में

इक जख्मी गजाला हूँ, चल पाना जिसे मुश्किल
सय्याद ने जो मारा, वो तीर है पैरों में

क्या मुझपे नहीं गुजरी, देखो तो सनम मेरे
गुजरे हुए रस्ते की तसवीर है पैरों में

तारे बिछे जाते हैं, राहों में मेरी आकर
'उर्वी' किसी चाहत की तनवीर है पैरों में

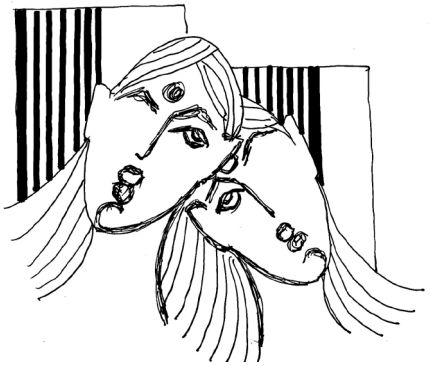

चार

मुझको छलने वाले, मेरे अपने वाले निकलेंगे
मेरे दिल में झाँक के देखो, रिसते छाले निकलेंगे

मरने पर भी खुली हैं आँखें, देखो बूढ़े बाबा की
मुँदने पर भी इन आँखों से, नहीं उजाले निकलेंगे

माँ के हाथ का बुना ये स्वेटर सिल-सिलकर पहना, पर
अब फटे-पुराने इस स्वेटर से कितने पाले निकलेंगे

बाहर-बाहर जगमग-जगमग, भीतर-भीतर अँधियारे
उजले चेहरों वाले अक्सर मन के काले निकलेंगे

मेरे मन में झाँकोगे तो, हैरां हो जाओगे तुम
पापी दिखती इस काया में, कई शिवाले निकलेंगे

४/१९ आसफ अली रोड
नई दिल्ली-११०००२

मौलिकता : भारतीय और भारतेतर आचार्यों की दृष्टि

● बलराम अग्रवाल

संपादकीय कार्यालय अपने पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ हमेशा ही 'मौलिक' रचना की माँग करते हैं। लेकिन 'मौलिक' सृजन से उनका तात्पर्य क्या है, इसे वे कितने व्यापक अथवा सीमित अर्थ में जानते हैं, यह एक बड़ा सवाल है। विभिन्न विद्वानों के कथन और शब्दकोशों में दिए गए अर्थों के आधार पर यदि 'मौलिक' शब्द पर विचार करें तो इसका मतलब होगा—'विचार में स्वतंत्र सृजनात्मक कार्य'। रूप और शैली में इस कार्य के भव्य तथा सर्वथा नवीन होने की अपेक्षा की जाती है। यह बात उल्लेखनीय है कि साहित्य में विचार, दृष्टि और विवेचन की नवीनता भी मौलिक ही कही जाती है।

भारतीय आलोचकों का मत

मौलिकता के संबंध में आनंदवर्धन ने अपने ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' में लिखा है—'जहाँ नवीन स्फुरित होनेवाली काव्यवस्तु पुरानी यानी प्राचीन कवि द्वारा निबद्ध वस्तु आदि की रचना के समान निबद्ध की जाती है तो वह निश्चित रूप से दूषित नहीं होती।' यानी उसे मौलिक ही माना जाता है। इसी प्रकार प्राचीन भाव को अपनी निराली नूतनता द्वारा चमत्कृत करनेवाले कवि को भी आनंदवर्धन ने मौलिक की श्रेणी में रखा है। उन्होंने कहा है कि जहाँ सहृदयों को 'यह कोई नया स्फुरण है', ऐसी अनुभूति होती है, तो नई या पुरानी जो भी हो, वही वस्तु रम्य कहलाती है। उनके अनुसार, पुराने कवियों से कुछ भी अछूता नहीं रह गया है, इसलिए नए कवियों को पुरानी उक्तियों का संस्कार करना चाहिए। इसमें कोई भी बुराई वे नहीं देखते हैं।

अभिनव गुप्त के अनुसार भी 'पूर्व प्रतिष्ठापितयोजनासु मूल प्रतिष्ठाफलमामनन्ति, यानी पूर्व आचार्यों द्वारा स्थापित सिद्धांतों की मूल प्रतिष्ठा तथा उनकी प्रकृत विवेचना में भी मौलिक सिद्धांतों की विवेचना जैसा फल परिलक्षित होता है।' राजशेखर ने भी लगभग ऐसा ही मत प्रकट किया है तथा अन्य विद्वानों ने भी राजशेखर और आनंदवर्धन के सिद्धांत का समर्थन किया है। उन्होंने इसे कवि-प्रतिभा के रूप में स्वीकार किया है। वे तो यह भी मानते हैं कि शब्द भी वही रह सकते हैं, अर्थ विभूति या काव्य विषय भी वही, अंतर केवल कहने के ढंग, यानी शैली में आता है।

मौलिकता की दृष्टि से राजशेखर ने कवियों के चार प्रकार गिनाए हैं—

१. उत्पादक

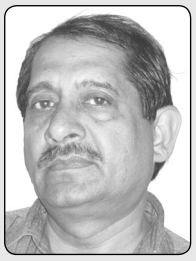

जाने-माने रचनाकार। 'चन्ना चरनदास', 'दूसरा भीम' (बालकथा-संग्रह), ग्यारह अभिनेय बाल एकांकी। अंग्रेजी पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद तथा कई संपादित पुस्तकें। १२ खंडों में प्रकाशित 'प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियाँ' में संपादन सहयोग; हिंदी साहित्य कला परिषद्, पोर्टब्लेयर की साहित्यिक पत्रिका 'द्वीप लहरी' को अद्यतन संपादन सहयोग।

२. परिवर्तक

३. आच्छादक

४. संवर्गक

इनमें उत्पादक कवि अपनी प्रतिभा के बल पर काव्य में नवीन अर्थवत्ता का समावेश करता है। परिवर्तक कवि पूर्व कवि के भावों में इच्छानुरूप परिवर्तन करके उन्हें अपना लेता है। आच्छादक पूर्व कवि की उक्ति को छिपाकर उसी के अनुरूप उक्ति को अपनी रचना के रूप में प्रस्तुत करता है और संवर्गक कवि बिना किसी परिवर्तन के दूसरों की कृति को अपना लेता है। इस चौथे को राजशेखर ने चोर अथवा डकैत की संज्ञा दी है। मौलिकता की दृष्टि से राजशेखर ने उत्पादक कवि को ही श्रेष्ठ माना है। अन्य तीन प्रकार के कवियों में, उनका मानना है कि मौलिकता का अंश नहीं होता। अर्थ का अपहरण करनेवाले कवियों का भी राजशेखर ने अपने ग्रंथ में विस्तार से वर्णन किया है।

माना यह जाता है कि भाव-साम्य और अर्थ का अपहरण यदि काव्यगत उक्ति के सौंदर्य में वृद्धि करने में योग करता है, तो उसे मौलिकता की श्रेणी में रखा जा सकता है। भाव-साम्य के डॉ. नगेंद्र ने तीन प्रकार गिनाए हैं—

१. समान मानसिक परिस्थितियाँ, संस्कार, विचार-पद्धति और सामाजिक वातावरण के कारण आया भाव-साम्य।

२. दो या दो से अधिक कवियों द्वारा पूर्ववर्ती भावों को ग्रहण किए जाने के कारण आया भाव-साम्य।

३. पूर्ववर्ती साहित्य के गंभीर अध्ययन द्वारा संस्कार ग्रहण करने के कारण आया भाव-साम्य।

कभी-कभी समान मन:स्थिति के कारण समांतर प्रतीत होनेवाली बहुत-सी रचनाओं में एक ही प्रयास और एक ही अंतर्प्रेरणा महसूस हो सकती है।

विद्वानों ने भाव-साम्य के तीन प्रभाव गिनाए हैं—

१. सौंदर्य सुधार

२. सौंदर्य रक्षा

३. सौंदर्य संहार

इनमें से प्रथम दो में भी सौंदर्य सुधार की भूरि-भूरि प्रशंसा होती है, इसलिए साहित्य-मर्मज्ञों ने इन्हें 'अच्छा' स्वीकार किया है; लेकिन 'सौंदर्य संहार' को 'साहित्यिक चोरी' बताया है। रीति-युग की काव्यगत मौलिक चेतना से असहमति जतानेवाले आलोचकों ने रीति-कवियों को भाव-साम्य और अर्थ-अपहरण दोनों का दोषी माना है। बावजूद इसके पुरानी उक्तियों में अपनी सहज रसग्राहिता का समावेश करते हुए रीति-कवियों ने रस-चयन में जो कुशलता दिखाई है, वह अप्रतिम है। इस तथ्य को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी स्वीकार किया है।

काव्य की मौलिक चेतना का प्रादुर्भाव एक विशिष्ट जन्म-नक्षत्र में होता है; और उसी में जन्म लेकर कोई कवि या कथाकार सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति के द्वारा लोकप्रियता को प्राप्त होता है। आचार्यों ने प्रतिभा को लोकोत्तर शक्ति के रूप में चिह्नित किया है; और कवि-प्रतिभा के आधार पर ही उन्होंने किसी रचना में मौलिकता के अंश का विवेचन प्रस्तुत किया है। यह तो निश्चित है कि काव्य-सृजन की नव-प्रेरणा प्रतिभा के अभाव में तनिक भी संभव नहीं है। प्रतिभा अंत:करण का वह आलोक है, जिसके कारण समस्त रचना मौलिकता के सौंदर्य से जगमगा उठती है। भारतीय काव्यशास्त्रियों में रुद्र ने प्रतिभा को ऐसी शक्ति माना है, जो चित्त के सम्मिलन से अभिधेय अर्थ को अनेक प्रकार से स्फुरित करती है।

आचार्य कुंतक ने कहा है, 'वस्तुओं में अंतर्निहित सूक्ष्म और सुंदर तत्त्व को जो अपनी वाणी से खींच लाता है, उसे; और जो वाणी द्वारा ही इस विश्व की बाह्यत: अभिव्यक्ति करता है, उसे भी मैं प्रणाम करता हूँ।' इस कथन से स्पष्ट है कि अभिव्यक्ति के स्तर पर व्यंजना और अभिधा दोनों पुरातन काल से ही प्रणम्य रही हैं।

प्राचीन रचनाशीलता के आलोक में विद्वानों ने माना है कि विषय की सीमा और शास्त्रीयता के कड़े अंकुश के कारण रचनाकार की अंतश्चेतना पूरी तरह स्फुटित नहीं हो पाती और भीतर-ही-भीतर कुंठित हो जाती है। 'हिंदी साहित्य का उद्‌भव और विकास' में एक स्थान पर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'शास्त्रीय मत को श्रेष्ठ और अपने मत को गौण मान लेने के कारण उनमें (यानी पूर्व काल के अनेक कवियों में) अपनी स्वाधीन चिंता के प्रति अवज्ञा का भाव आ गया है।'

भारतेतर आलोचकों का मत

लगभग इसी मत का प्रतिपादन 'द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ' के अपने एक अंग्रेजी लेख में मि. ग्रीव्स ने भी किया है। वे लिखते हैं, 'मौलिक सृजन की अपेक्षा संस्कृत अनुवाद के कार्यों में अनेक (पूर्वकालीन कवियों) ने अपनी प्रतिभा को प्राय: नष्ट कर दिया।'

ग्रियर्सन का कहना है कि कवि यदि प्रतिभा संपन्न है और उसमें मौलिक रचने की क्षमता है, तो उसे अधिकार है कि वह दूसरों की रचना का उपयोग अपनी इच्छा के अनुसार कर ले। वह प्रतिभा-शक्ति के अभाव में मौलिकता को अस्वीकार करते हैं। कांट और कॉलरिज ने प्रतिभा को 'कल्पना शक्ति' (इमेजिनेशन पॉवर) के रूप में स्वीकार किया है।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम चरण की अंग्रेजी समीक्षा कृति के बजाय कवि और उसकी व्यैक्तिकता को महत्त्व देती थी। वाल्टर पीटर और ऑस्कर वाइल्ड ने 'कलावाद' को ही महत्त्व दिया। टी.एस. इलियट का मानना था कि 'परंपरा के अभाव में कवि छाया मात्र है और उसका कोई अस्तित्व नहीं होता।' उसने कहा कि 'परंपरा को छोड़ देने पर वर्तमान भी हमसे छूट जाता है।' परंपरा की परिभाषा करते हुए इलियट ने कहा, 'इसके अंतर्गत उन सभी स्वाभाविक कार्यों, स्वभावों, रीति-रिवाजों का समावेश होता है, जो स्थान-विशेष पर रहनेवाले लोगों के सह-संबंध का प्रतिनिधित्व करते हैं। परंपरा के भीतर विशिष्ट धार्मिक आचारों से लेकर आगंतुक के स्वागत की पद्धति और उसको संबोधित करने का ढंग, सबकुछ समाहित है। परंपरा अतीत की वह जीवन-शक्ति है, जिससे वर्तमान का निर्माण होता है और भविष्य का अंकुर फूटता है। अपनी इसी विचारधारा के आधार पर उसने कहा कि कोई भी रचनाकार स्वयं में महत्त्वपूर्ण नहीं होता, उसका मूल्यांकन परंपरा की सापेक्षता में किया जाना चाहिए। वह अपने पूर्ववर्ती रचनाकार की तुलना में ही अपनी महत्ता सिद्ध कर सकता है। लेकिन ध्यातव्य है, परंपरा से इलियट का तात्पर्य प्राचीन रूढ़ियों का मूक अनुमोदन या अनुमोदन कभी नहीं रहा, बल्कि परंपरा से उसका तात्पर्य वस्तुत: प्राचीन काल के इतिहास और धारणाओं का सम्यक् बोध रहा है। वह परंपरा से प्राप्त ज्ञान के अर्जन और उसके विकास का पक्षधर है। यही परंपरा का गत्यात्मक रूप है। इसके अभाव में हम नहीं जान सकते कि मौलिकता क्या है, कहाँ है? इस सिद्धांत के अनुसार, अतीत को वर्तमान में देखना रूढ़ि नहीं, मौलिकता की तलाश है। रचना की मौलिकता और श्रेष्ठता का आकलन तत्संबंधी अतीत को जाने बिना संभव नहीं है। इसी बिंदु पर परंपरा का संबंध संस्कृति से जुड़ता है, जिसमें किसी जाति या समुदाय के जीवन, कला, दर्शन आदि के उत्कृष्ट अंश समाहित रहते हैं। परंपरा बोध से ही साहित्यकार को अपने कर्तव्य तथा दायित्व का बोध और लेखन का मूल्य मालूम रहता है।

इस तरह इलियट ने मौलिकता को परंपरा-सापेक्ष माना है। उनका कहना है कि परंपरा अपने आप में व्यापक अर्थ से युक्त है। उससे विहीन मौलिकता मूल्यहीन है। अपने सुप्रसिद्ध निबंध 'परंपरा और वैयक्तिक प्रतिभा' में उसने स्पष्ट संकेत किया है कि 'परंपरा को उत्तराधिकार में प्राप्त नहीं किया जा सकता; इसे कड़े श्रम से कमाना पड़ता है, अर्जित करना पड़ता है' तथा 'परंपरा के मूल में एक ऐतिहासिक चेतना (हिस्टोरिकल सेंस) गुँथी रहती है।'

इलियट का सवाल है कि परंपरा की समग्र मान्यताओं को जाने बिना कोई भी व्यक्ति उनके रूढ़ और गलित अंशों को हटाने के बारे में सोच भी कैसे सकता है?

एम-७०, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२
दूरभाष : ८८२६४९९११५

अनुपयोगी

● **मनमोहन गुप्ता**

ठीक सत्ताईस वर्ष पश्चात् हमारी पदोन्नति के आदेश मिले थे। अध्यापक से प्रधानाध्यापक बन जाने की खुशी में हम फूले नहीं समा रहे थे। सुबह कुलदीप पेपर डालकर गया। हैडलाईन पढ़ते हुए हम पदोन्नति के पद पर आसीन होने के स्वर्णिम स्वप्न में खो रहे थे।

'प्रधानाध्यापक हो जाने पर जब मैं ज्वॉइन करने जाऊँगा तो भावभीना स्वागत होगा मेरा। अधीनस्थ अध्यापक फूल-मालाओं से लाद देंगे मुझे। घूमनेवाली शानदार कुरसी होगी हमारी। सामने मेज पर कलमदान होगा। पेपरवेट होगा। एक तरफ कुछ रजिस्टर और फाइलें होंगी हमारे सामने। दूसरी तरफ अध्यापक उपस्थिति पंजिका होगी। जो अध्यापक या अध्यापिकाएँ जरा भी विलंब से आएँगी, उनके हस्ताक्षर कॉलम में लाल लाइन खींचने का पूरा अधिकार मिल जाएगा। चारों तरफ से हैडमास्टर साहब···हैडमास्टर साहब···के स्वर गुंजायमान होंगे।'···

''अजी यह अखबार ही हाथ में लिये बैठे रहोगे क्या अभी तक? घड़ी देखो, पूरे साढ़े आठ बजा चुकी है। तुम्हें नौ बजकर बीस मिनट से पूर्व ही पहुँचना है। विद्यालय से कार्यमुक्ति के आदेश लेकर ड्यूटी भी ज्वॉइन करनी है आपको!'' हमारी पत्नी ने अंदर से आवाज देते हुए कहा था।

''आ रहा हूँ भाग्यवान, आ रहा हूँ। थोड़ा सब्र रखो, मैं स्कूल ही जा रहा हूँ।'' हमने फटाफट स्नान-ध्यान किया। भोजन किया और हम विद्यालय से प्रधानाध्यापक की पदोन्नति पर जाने के लिए कार्यमुक्ति के आदेश लेकर भी त्वरित गति से घर आ पहुँचे थे।

प्रधानाध्यापक की ड्यूटी हमने ज्वॉइन कर ली थी। अपनी सारी प्लानिंग भी उन सभी अध्यापकों को हमने बता दी थी। जो दो वर्ष से स्वयं ही प्रधानाध्यापक बने बैठे थे।

स्टाफ में दो अध्यापिकाएँ थीं, तीन अध्यापक थे। सहायक कर्मचारी का पद सृजित नहीं हुआ था। ऐसी स्थिति में मैं क्या प्रदेश के अधिकांश प्रधानाध्यापक सहायक कर्मचारी का दायित्व बच्चों के कंधों पर डालने को विवश थे।

सुपरिचित कवि-लेखक। अब तक दो कहानी-संग्रह, दो कविता-संग्रह, एक उपन्यास प्रेम में तथा राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में अनेक रचनाएँ निरंतर प्रकाशित एवं दूरदर्शन तथा आकाशवाणी जयपुर से रचनाओं का सजीव प्रसारण। नाथद्वारा में हिंदी की अग्रणी संस्था साहित्य मंडल तथा राज. ब्रजभाषा अकादमी, जयपुर द्वारा सम्मानित।

एक दिन बाहर से महिला स्वर सुनाई पड़ा था, 'हैडमास्साब हैं क्या···? हैडमास्साब···?' हमने श्रीमतीजी को उन्हें बाहर बैठक में सलीके से बिठाने के लिए कहा था। पहले उन्हें पानी पिलाओ, नाश्ता लगा देना···उसके बाद दो कप चाय उनके लिए और एक कप चाय मेरे लिए भी बना देना। अदरक अच्छी तरह डालना, साथ में एक लौंग भी डाल देना पीसकर। उससे चाय में अलग स्वाद आ जाता है। फिर देखो, मैं प्रधानाध्यापक हूँ। ये मेरे अधीनस्थ अध्यापिकाएँ हैं। ये सभी से कहेंगी, 'हैडमास्साब ने चाय पिलाई थी। बहुत अच्छी चाय बनाती हैं इनकी पत्नी। हमारी पत्नी ने नाक सिकोड़कर ये सब बातें एक श्वास में कह डाली थीं।

''अरे भाग्यवान! मैं तो जरा अखबार पढ़ने लग गया था। न जाने क्यों, जब मैं सुबह-सुबह अखबार पढ़ने बैठता हूँ तो तुम्हें मिर्च सी लगने लगती है। अरे! सीधे-सीधे नहीं कह सकती थीं। स्कूल का टाइम हो गया है, प्लीज स्नान कर लो।'' हमने कुरते के बटन खोलते हुए अपनी बात कही।

''अरे तो मैंने कौन सा लाउडस्पीकर लगा रखा है। जो तुम कह रहे थे कि तीखे स्वर में बोलती है। अरे! मेरी तो आवाज ही ऐसी है। इसमें मेरा क्या दोष है? जब परिणय-बंधन में बँधकर तुम्हारे घर आई थी, उस पहली रात तो तुम बड़ी मीठी-मीठी बातें कर रहे थे। तुम्हारा मधुर सुर कोयल की तरह है। तुम बोलती हो प्राणेश्वरी तो मेरे कानों में मधुर रस सा घुल जाता है। मुझमें अपूर्व उत्साह और सिहरन सी होने लगती है।

तुम्हारा स्पर्श पाकर मैं रोमांचित हो जाता हूँ। भूल गए उन दिनों की प्यार भरी रातें। अब तो तुम्हें बस घर के सभी बुरे लगते हैं। तुम उन्हें खाने को दौड़ते हो। एक आँख नहीं सुहाती हूँ मैं तुम्हें, अब तो बस जब भी घर पर होते हो, यही कहते रहते हो, 'आज फलाँ अध्यापिका मेरे बारे में यह कह रही थी। फलाँ ये कह रही थी। सुनो! एक तो मास्टरनी यहाँ तक कह रही थी, 'हैडमास्साब! तुम धोती-कुरते में ज्यादा अच्छे लगते हो। पूरे बने-बनाए नेताजी से। कोई तो अटलबिहारी वायपेयी की टू-कॉपी बताता है तो कोई दीनदयाल उपाध्याय की उपाधि से विभूषित करता है।'

''अब बस करो, अपने मुँह मियाँ मिट्ठू ही बनते रहोगे या फिर नहाने भी बैठोगे? मैंने तुम्हारी खूब तारीफ सुन रखी है। तुम अपने मन में ही खुश हो लिया करो। सच पूछो तो धोती-कुरते में तो तुम बिल्कुल फदल्ली से लगते हो। अपने आप में ही तुम इतराते रहो। कुछ भी बताओ अपने आपको। तुम घड़ी का ध्यान रखो, यह रुकती नहीं कभी, निरंतर गतिमान रहती है।

''फिर अब तुम्हें ठीक नौ बजकर पंद्रह मिनट पर पहुँच जाना है अपने स्कूल। अधीनस्थ अध्यापक-अध्यापिकाएँ नौ बजकर बीस मिनट तक विद्यालय परिसर में उपस्थित हो जानी चाहिए। शिक्षा निदेशक महोदय के स्पष्ट कठोर आदेश हैं। इनकी पालना स्वयं करोगे, तभी तो अधीनस्थ कर्मचारी समय पर आकर पहुँचेंगे। नहीं तो तुम सेर, वे सवा सेरवाली बात चरितार्थ हो जाएगी। विलंब से विद्यालय खुलने की सूचना गाँववालों के द्वारा ऊपर पहुँच जाएगी।''

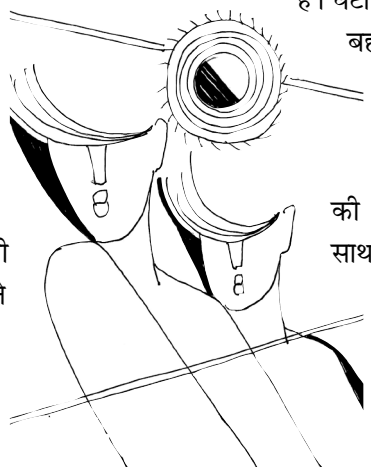

हमारी पत्नी ने लंबा चौड़ा-भाषण सा दे डाला था।

''अब देखो जी, आप किसी से कह तो मत देना। हम तुम्हें सोलह आना सही बता रहे हैं। विद्यालय में शौचालय बनवाने के आदेश आए। पच्चीस हजार का चैक देने की बात हमसे शिक्षाधिकारियों ने प्रधानाध्यापकों की मासिक मीटिंग में कही थी। पहली किश्त में दस-पंद्रह हजार रुपए का चैक आएगा। उसके उपरांत काम पूर्ण हो जाने पर सहायक अभियंता द्वारा सत्यापित किए जाने के पश्चात् शेष रकम का चैक भी मिल जाएगा। हमने विद्यालय में जाकर स्पष्ट कह दिया था कि हमें तो पैसे की जरूरत है नहीं। तुम इस कार्य को पूर्ण कराकर बिल प्रस्तुत करो। हमारा सहयोग करें तो श्रेष्ठ है। रूपसिंह मास्टर बोला, 'हैड मास्साब! आप किसी बात की चिंता न करें। यह जिम्मेदारी हमारी है। आप पूरा काम देख लेना। हम शीघ्र ही आरंभ करा देंगे।''

कालक्रम व्यतीत हुआ। हमारे पास सहायक अभियंता का दूरभाष पर संदेश आता है—''आप घर पर आकर मिल जाइए। साथ में ग्यारह सौ रुपए का लिफाफा भी लेते आना। किसी से कहने की कोई जरूरत नहीं है। नहीं तो ठीक नहीं होगा। शौचालय सत्यापित कर मैं प्रमाणित नहीं करूँगा और तुम्हारा शेष भुगतान भी रुक जाएगा।''

हम सहायक अभियंता के घर गए। कॉल बैल बजाई। कोई बाहर नहीं आया। पंद्रह-बीस मिनट तक हम याचक की तरह मन-ही-मन सीताराम-सीताराम बोल रहे थे। अपने आपको सहायक अभियंता के सम्मुख तौल रहे थे। हैडमास्साब दीवारों के कान होते हैं। देखो, तुम किसी से यह सब कह मत देना, नहीं तो हमारी नौकरी पर आँच आ जाएगी। मेहनत की पकाई रोटी है भैया, जल जाएगी। कुछ दिनों बाद एक सुंदरी हमारे घर का दरवाजा खोलती है।''हैडमास्साब हैं क्या?···''

''वह तो स्पा ले रहे हैं।''

''कब तक निवृत्त होंगे स्पा से?''

''कुछ भी कह नहीं सकती मैं।''

''आप तो उनकी धर्मपत्नी हैं, फिर भला क्यों नहीं कह सकतीं कुछ भी··· ?''

''आपको क्या बताऊँ साब, सैकड़ों फोन युवतियों के आते रहते हैं। घंटों बातें चलती हैं। पूजाघर में भी। पूजा करना तो उनका बहाना है।''

''हाँ, यह तो मैंने भी सभी जगह सुना है। तीन-चार फोन हैं इनके पास। दिनभर एक हाथ कान पर फोन के साथ होता है। इन्हें किसी से मिलने की भी फुरसत नहीं मिल पाती है। रात को बैडरूम इनके साथ सोना तो समझ लो मुझे कोई सजा मिल गई है मुझे। बार-बार घन्न-घन्न मोबाइल की घंटी सुनते-सुनते ही परेशान हो जाती हूँ मैं। फिर वह कहीं संवाद सुन लूँ तो बस···''

''खैर छोड़िए साहब, ये सब बातें आज आम हो गई हैं। हमने सहायक अभियंता महोदय को ग्यारह सौ रुपए का लिफाफा भी दिया। एप्रूवल मिला। अगला शेष धन भी हमें चैक के माध्यम से प्राप्त हो गया था।

उधर रूप सिंह मास्टरजी ने नई बात और कही, ''हैडमास्टर साहब, विकास समिति द्वारा खरीदी गई एक हजार रुपए की ईंट भी इसी शौचालय में काम आ गई हैं। इसलिए आप हमें एक हजार रुपया और दो।''

हमारा सिर चकरा गया रूप सिंह मास्टर की बात सुनकर। अब हम क्या करें? एक तरफ कुआँ तो एक तरफ खाई। ये कैसी आफत आई। कुल वास्तविकता में चौदह सौ पचास रुपए लगे थे शौचालय निर्माण में। वाउचर वे पच्चीस हजार के प्रस्तुत करते थे। कुछ तो रूपसिंह ने वाउचर दे दिए। उसके बाद उसने अपने परिचित की दुकान बता दी। पाँच सौ रुपए देकर शेष राशि के वाउचर और प्राप्त किए।

मैं एक भी पैसे का दागी नहीं था। अधीनस्थ हिजाइनैस बने अध्यापक सब हज्म कर गए। हमें गाँठ के एक हजार और देने पड़े थे।

हमारी पत्नी पचपन वर्ष से ऊपर की है। लेकिन हमें तो वह आज

भी सोलह वर्ष की सुकन्या से कम नहीं लगती। उनकी नजाकत ही हमारे शेष जीवन की धरोहर है। जिसे हम हृदयस्थल में शीर्षस्थ स्थान पर रखे हुए हैं।

सरकारी नीतियों के झंझावतों और कृत्रिमता से ऊबकर मैं स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति की सोच रहा हूँ। लेकिन प्रधानाध्यापक की पदोन्नति वह भी मिडिल स्कूल की। उससे मुक्त होने के लिए हाथ-पैर मार रहा हूँ। हनुमान बाबा की स्वामिनी भी बोली है। लाल लँगोटावाले बाबा तुम मुझे इस उच्च प्रशासनिक सेवा के पद से हटाओ। मैं तुम्हारा यह एहसान जिंदगी भर नहीं भूलूँगा।

जुगाड़ भिड़ाया और मेरा स्थानांतरण फैक्स से होने की सूचना प्राप्त हो गई थी।

सेकेंडरी स्कूल में बोर्ड और स्थानीय परीक्षा का प्रभार दिया गया। सभी के सहयोग से लगभग तीन-चार वर्ष तक कार्य सकुशल संपन्न किया।

स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति दो वर्ष पहले ली थी। इसीलिए घरवाली के सम्मुख भी मुझे घुटने टेकने पड़े हैं। 'अब घर पर बैठे-बैठे तुम क्या करोगे?' पत्नी ने आँख निकालते हुए पूछा था। 'पोते-पोतियों को खिलाऊँगा। स्कूल की बस आने पर उसे वहाँ ले जाऊँगा, जहाँ बस ठहरती है। फिर छुट्टी होने के समय उसे लेकर भी आऊँगा। मूल से ब्याज प्यारी होती है, मीनू की मम्मी।' हमने बड़े रोब से अपनी बात रखी थी।

पोते-पोतियों का प्यार तो खूब मिलता है। लेकिन कभी-कभी लगता है कि सर्विस संध्या का सूर्य समय पर अस्त न होने के कारण लगता है, हमारे जीवन की श्वासों को ही ग्रहण लग गया है। घर में एक बोझ की तरह हो गए हैं हम।

हमारी किताबों की आलमारी कूड़ा लगने लगा है। 'पापा चारों तरफ तुम्हारी इतनी सारी किताबें आलमारियों में भरी हुई हैं। फालतू स्थान घेर रही हैं। इन्हें रद्दीवाले को बेच दो। अब इनका कोई महत्व नहीं है।'

हमारी पुत्रवधू हमसे रोज यही कहती है। हमें लगता है, हम बूढ़े सेवानिवृत्त अब घरों में रद्दी हो गए हैं। हमारी उपयोगिता अब नहीं है। पत्नी भी सिर्री हो जाने की बात कहती है। सबकी दृष्टि में अनुपयोगी हो गए हैं।

गुप्ता सदन, एस.बी.के. गर्ल्स हा.से. स्कूल के पास,
मंडी अटलबंद, भरतपुर-३२१००९ (राजस्थान)
दूरभाष : ६३७८२६२३२५

लघुकथा

कंधे पर लाश

● चित्त रंजन गोप

विक्रमादित्य ने पेड़ से लाश को उतारा, उसे कंधे पर लादा और अपनी राह पकड़ ली। तभी लाश, यानी वेताल ने अट्टहास किया और विक्रमादित्य को कहानी सुनाने लगा।

विक्रमादित्य! यह घटना अगस्त २०१६ की है, ओडिशा के कालाहांडी के एक सरकारी अस्पताल की। दाना माँझी की पत्नी मर गई। अस्पताल ने एंबुलेंस नहीं दी तो उसने लाश को कपड़े से लपेटा और कंधे पर लादकर चल दिया। पीछे-पीछे उसकी बारह बरस की बेटी भी थी। रो-रोकर उस बच्ची की आँखें सूख गई थीं। और लोग··· ? लोग तो 'कंधे पर लाश' का वह दृश्य किसी तमाशे की तरह आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे थे, विक्रमादित्य!

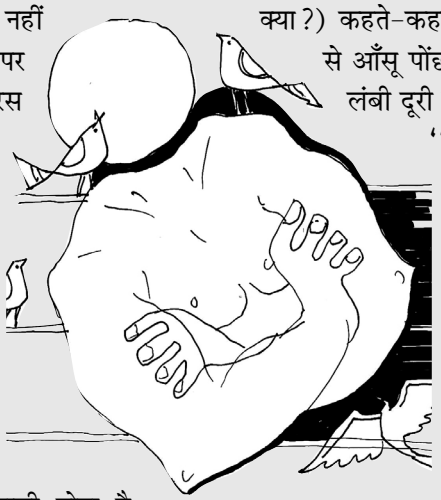

विक्रमादित्य चुप थे। कंधे पर लाश को लेकर वे सरपट चले जा रहे थे। तभी एक अस्पताल कर्मी ने आगाह किया, ''दाना, तुम्हारी पत्नी को टी.बी. की बीमारी थी। टी.बी. छूत की बीमारी··· !''

''सबसे बड़ी छूत की बीमारी तो आदिवासी होना है, बाबू!'' कहते हुए वह अस्पताल से बाहर हो गया।

बाहर एक पत्रकार ने रास्ता रोका और बोला, ''भैया, एक फोटो··· ।'' अब दाना का गला भर्रा गया। भर्राई आवाज में बोला, ''कणऽ भाई! अपणकरऽ पत्नीरऽ शब्द काँधेर बसाईनेलऽ कोणसी आदिवासीरऽ एकणऽ प्रथमऽ फोटो हेबऽ की?'' (क्यों भाई! अपनी पत्नी का शव कंधे पर लिये किसी आदीवासी का यह पहला फोटा होगा क्या?) कहते-कहते उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे। एक हाथ से आँसू पोंछते हुए वह आगे बढ़ चला। उसे ६० कि.मी. की लंबी दूरी तय करनी थी।

''अब बोलो, विक्रमादित्य! अपनी पत्नी की लाश कंधे पर लिये किसी आदिवासी का यह पहला फोटो था क्या?''

''नहीं।''

विक्रमादित्य ने मुँह खोला। और उनके मुँह खुलते ही वह लाश फुर्र हो गई।

सेंट्रल पुल कॉलोनी (बेलचढ़ी)
पो.+थाना—निरसा
जिला—धनबाद-८२८२०५ (झारखंड)
दूरभाष : ९९३१५४४३६६

शेरजंग गर्ग : अपनी किस्म के एक अदद व्यंग्य-गुरु

● हरीश नवल

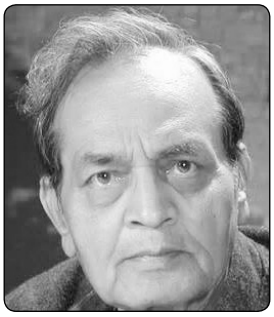

डॉ. शेरजंग गर्ग यानी सदा मुसकराता एक नूरानी चेहरा, भीतर तक बींधनेवाली सुंदर बड़ी आँखें, तीखे नक्श, प्रभावी अंदाज और प्रतिभा का एक रोशन पुंज, जिसे देखना, सुनना किसी सुखद अनुभव से कम नहीं था। कालिदास ने ऐसे ही व्यक्तित्व के लिए मेरी ओर से कभी लिखा था—'क्षणे-क्षणे यत्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया:।' इसीलिए संभवत: डॉ. गर्ग सदैव मनोहारी और रमणीय बने रहे।

वे एक श्रेष्ठ कवि, उत्कृष्ट गीत व गजल लेखक, अनुकरणीय आलोचक, आदर्श बाल-साहित्यकार, सुधी समीक्षक, प्रखर वक्ता, कुशल प्रबंधक और एक सच्चे शोध-मनीषी थे। उनकी पुस्तकें 'व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न' और उससे पूर्व 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य' हम उनके परवर्ती व्यंग्यकर्मियों के लिए कुरान और बाइबिल साबित हुई हैं।

डॉ. शेरजंग गर्ग से पूर्व किसी ने व्यंग्य पर शोध-कार्य नहीं किया। उनके शोधग्रंथ के प्रकाशित होने के पूर्व किसी ने भी व्यंग्य का ऐसा ठोस शास्त्रीय आधार नहीं रखा था। हास्य-रस से संदर्भित कतिपय ग्रंथ प्रकाश में आए, किंतु वे प्राय: उन अध्येताओं के थे, जिन्होंने व्यंग्य को हास्य-रस का ही एक विभेद माना था! जी.पी. श्रीवास्तव, एस.पी. खत्री, बरसानेलाल चतुर्वेदी, प्रेमनारायण दीक्षित आदि ने हास्य पर ही कार्य किया और उल्लेखनीय कार्य किया, परंतु किसी ने भी व्यंग्य को गहराई में जाकर न खँगालने की कोशिश की, न ही महत्त्व दिया।

एकमात्र डॉ. शेरजंग गर्ग ऐसे थे, जिन्होंने व्यंग्य को समझने और समझाने का भरसक प्रयास किया। उनके शोधग्रंथ को प्रकाशित हुए पूरे चालीस वर्ष बीत गए हैं, परंतु वह आज भी समीचीन है। व्यंग्य का अध्ययन करना हो तो उनके शोध-कार्य को देखे बिना काम नहीं चलता। अपने शोध में जो स्थापनाएँ उन्होंने दीं, वे आज तक पथ-प्रदर्शक हैं।

अनेक शहरों में आयोजित अनेकानेक गोष्ठियों, सम्मेलनों आदि में मुझे डॉ. गर्ग का सान्निध्य मिला। विशेष रूप में लखनऊ में आयोजित 'माध्यम' की अनूप श्रीवास्तव द्वारा संयोजित व्यंग्यालोचन गोष्ठियों में कई वर्ष उनके साथ जाना हुआ। हर बार उनसे कुछ-न-कुछ नया सीखने को मिला। गोष्ठी में उनका होना ही गरिमा प्रदान करता था।

एक श्रेष्ठ नागरिक, जिसके सामाजिक सरोकार बृहत् थे, जो पारिवारिक स्तर पर एक श्रेष्ठ पुत्र, समर्थ पिता, समर्पित पति और एक आत्मीय मित्र के भिन्न-भिन्न रूपों में मैंने डॉ. गर्ग को देखा। यों तो मैंने डॉ. गर्ग को उनके एक श्रोता के रूप में लालकिला के कवि-सम्मेलनों में श्रद्धेय श्री गोपालप्रसाद व्यास के युग से जाना है। उनके दर्जनों सम्मेलनों में सजग श्रोता बनकर गया हूँ। बालस्वरूप राही, शेरजंग गर्ग और कुँअर 'बेचैन' मेरे पसंदीदा कवि-सम्मेलनीय प्रस्तोता रहे हैं। तीनों ही साहित्यिकता के क्षेत्र में भी मुख्य मार्ग पर डटे हुए। डॉ. गर्ग के कहने का अंदाज और उनके मार्मिक भावों ने मुझे बहुत भीतर तक छुआ।

उनसे रू-ब-रू परिचित होकर उनकी डायरी में अपना नाम डलवाने में मुझे काफी वक्त लगा। सन् १९७३-७४ की बात है, मैं कॉलेज ऑफ वोकेशलन स्टडीज में 'हिंदी साहित्य सभा' का परामर्शदाता था। अत: महाविद्यालय कविता प्रतियोगिता का आयोजन था। मेरे मन में इच्छा थी कि अध्यक्ष के रूप में डॉ. शेरजंग गर्ग पधारें। मैंने इस आशय का एक निवेदन-पत्र डॉ. गर्ग को अपने विद्यार्थी सुबोध शर्मा, जो सभा के सचिव थे, के हाथ उनके कार्यालय, जो कनॉट सर्कस के समीप था, में भिजवाया।

सुबोध शर्मा जब लौटकर आए, उनका चेहरा मुरझाया हुआ था, मूड खीझ के वश में था। मेरा कॉलेज समीप ही गोल मार्केट एरिया में था, तब भी सुबोध क्लांत व दुर्बोध लग रहे थे। मेरे पूछने पर सुबोध ने बताया, ''डॉ. गर्ग तो जैसे आपको पहचानते ही नहीं। जब उन्होंने पूछा कि कौन हरीश नवल? सर, मैंने उन्हें बताया कि वही व्यंग्यकार, जो पत्र-पत्रिकाओं में लिखते हैं, आप उन्हें नहीं जानते? वे बोले कि नहीं जानता। बस सर, मैं फिर आपका पत्र वापस लेकर आ गया। आप हमारे सर हैं, पर वे नहीं जानते, फिर उन्हें बुलावे का क्या फायदा?''

मैं सन्न रह गया। नादान सुबोध के लिए मैं एक बड़ा लेखक था, क्योंकि उसके कुएँ में मेरा ही दखल था। मैं उसका अध्यापक था, इसलिए उसने गैर-इरादतन ऐसी हरकत की थी।

मैं अगले दिन स्वयं पत्र लेकर डॉ. गर्ग के दफ्तर पहुँच गया। वे अपने कैबिन में व्यस्त थे। मेरा फोन रिसेप्शन से वहाँ पहुँचा, उन्होंने उठाया तो मैंने अपना नाम बताया, उद्देश्य बताया···वे बोले, 'जरा ठहरिए···' फोन बंद हो गया। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ स्थिति में हुआ, पर यह मूढ़त्व लगभग डेढ़ मिनट तक ही रहा। डॉ. गर्ग खुद रिसेप्शन पर मुझे लिवाने आ गए। मैं उनके भव्य परिवेश में गुम हो गया। वे बोले, ''मैं कॉलेज आऊँगा, तुम्हें देखकर तो पहचान ही जाता, पर वह तुम्हारा विद्यार्थी बड़ी शान से रोब मार रहा था, जैसे हरीश नवल पता नहीं, कितने बड़े लेखक हैं! मैंने उसे कहा भी था कि अभी अपने सर को नाम तो बनाने दो, पर वो तुम्हें···'' कहकर वे अपने अंदाज में धीमे-धीमे रुक-रुककर हँसने लगे।

बहरहाल, वे वोकेशनल कॉलेज में आए। उनकी कविताएँ और उनके अध्यक्षीय भाषण ने सबको मोहित कर दिया। कॉलेज प्रिंसिपल डॉ. मल्होत्रा तो उनके मुरीद हो गए।

जल्द ही डॉ. गर्ग से पुनः मुलाकात हो गई। इंजीनियर्स इंडिया की ओर से अशोक रैना ने कार्यालय अधिकारियों की रचना प्रतियोगिता रखी थी, जिसमें डॉ. गर्ग के साथ मैं भी एक निर्णायक था। उस दिन भी मुख्य निर्णायक के रूप में उनका अभिभाषण बहुत कुछ दे गया। सिलसिला कुछ ऐसा निकला कि फिर बालस्वरूप राही और स्व. भूपेंद्र स्नेही, जिनके मैं निकट था, के कार्यालयों की बैठकों में डॉ. शेरजंग गर्ग से कई मुलाकातें हुईं तथा कॉफी हाउस के अतिरिक्त प्लाजावाली गली में महावीर रेस्टोरेंट में भी लघु महफिलें समोसों व गुलाबजामुन के साथ सजने लगीं।

उन्हीं दिनों मैंने डॉ. गर्ग की पुस्तक पढ़ी और उनसे बाकायदा चर्चा की। उनकी बातें बहुत मार्के की लगीं। व्यंग्य के विषय में उन दिनों तो वे ब्रह्मज्ञान वितरित करने में विलंब नहीं करते थे। बाल-साहित्य पर भी उनकी बहुत पैठ थी, उनकी रचनाएँ बड़े चाव से पढ़ी जाती रही हैं। व्यंग्य और बाल-साहित्य दोनों विषय उन्हें रुचिकर थे। मालवीय नगर के उनके घर में गया तथा साऊथ एक्सटेंशन के भी, और नोएडा के घर में दो गोष्ठियों में सम्मिलित हुआ, जहाँ डॉ. गर्ग ने आग्रह से मेरा व्यंग्य-पाठ भी करवाया। वे मुझे नाम कमाने के अवसर देने लगे। मुझे ही नहीं, मेरी पीढ़ी को भी उन्होंने व्यंग्य-क्षेत्र में उत्साह बढ़ाकर आगे बढ़ाया। रेडियो, टी.वी. आदि के लिए भी डॉ. गर्ग ने नव-लेखकों के नाम अकसर प्रस्तावित किए। बरसों पूर्व उन्होंने मुझसे किसी टी. वी. धारावाहिक के लिए व्यंग्य माँगे। मैंने कहा कि मुझे लगता नहीं कि इन पर टी.वी. के लिए कुछ बन सकता है। इस पर उनका कहना था कि इसका फैसला तुम नहीं निर्माता-निर्देशक करेंगे! कालांतर में उनके माध्यम से मेरा विश्वास और बढ़ा और मैंने व अभिन्न मित्र प्रेम जनमेजय ने मिलकर दो दर्जन से अधिक टी.वी. स्क्रिप्टें लिखीं, जिनमें हमारे अपने भी व्यंग्य शामिल थे।

वोकेशलन कॉलेज छोड़कर मैं हिंदू कॉलेज में आ गया और यहाँ भी 'हिंदी साहित्य सभा' देखने लगा। हिंदू कॉलेज में वार्षिक उत्सव (स्थापक दिवस) पर वृहत् कार्यक्रम होता है। विद्यार्थियों ने हास्य कवि-

प्रख्यात व्यंग्यकार। अब तक छह व्यंग्य-संकलन, तीन आलोचनात्मक पुस्तकें, नौ संपादित ग्रंथ और बावन ग्रंथों में सहयोगी रचनाकार के रूप में रचनाएँ प्रकाशित। एक हजार से अधिक रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। 'बागपत के खरबूजे' पर युवा ज्ञानपीठ पुरस्कार तथा तेरह राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित। अनेक व्यंग्य अंग्रेजी, बल्गारियन, मराठी, उर्दू, बँगला, पंजाबी और गुजराती में भी अनूदित।

सम्मेलन के अयोजन का प्रस्ताव मेरे समक्ष रखा। मैं तथाकथित ऐसे हास्य कवि-सम्मेलन, जिसमें कविता कम और चुटकुले अधिक होते हैं, के प्रसार में हाथ नहीं बँटाना चाहता था। मैं एक गंभीर साहित्यिक, किंतु रंजकत्ववाला कवि-सम्मेलन करना चाहता था। मैंने डॉ. शेरजंग गर्ग से सलाह ली, उन्होंने कहा, ''हास्य के स्थान पर 'सरस कवि-सम्मेलन' करो और वीर, शृंगार, हास्य, नीति आदि को सम्मिलित करके विद्यार्थियों को एक नई सोच दो।''

मैंने ऐसा ही किया। बालस्वरूप राही, शेरजंग गर्ग, विजय किशोर मानव, हरिओम पंवार, अशोक चक्रधर और सरोजिनी प्रीतम को लेकर 'सरस बनाम सवरस कवि-सम्मेलन' का आयोजन किया। युवा पीढ़ी जागरूक होती है—जैसा, जिस ढंग से परोसेंगे, वह ग्रहण करेगी। स्थापना दिवस के चार दिन के आठ कार्यक्रमों में सबसे अधिक धूम व चर्चा उस सम्मेलन की रही, जिसमें सभागार खचाखच भरा था और कहीं मर्यादा भंग न हुई···बस तब कई वर्ष तक प्रतिवर्ष ऐसा कवि-सम्मेलन होता रहा, यही नहीं, बल्कि डॉ. गर्ग के कहने पर हिंदू कॉलेज ने व्यंग्य-पाठ की भी एक परंपरा डाल दी, जिसमें प्रथम अवसर पर नरेंद्र कोहली, प्रेम जनमेजय, मनोहरलाल और मेरे अतिरिक्त शेरजंग गर्ग भी थे। अध्यक्षता कन्हैयालाल नंदन ने की थी।

एक बार मुझे और शेरजंग गर्ग को एक साथ एक कमरे में ठहराया गया था। यह जयपुर में हो रहा 'माध्यम व्यंग्य-सम्मेलन' था। तीन दिन दो रात हम साथ-साथ रहे। उन दिनों केवल टी.वी. नया-नया आया था, देर रात तक डॉ. गर्ग उसमें एक कार्यक्रम देखते थे, जो समाचारों पर केंद्रित था। उनके साथ उनके एक परिजन के घर भी गया था। जिस सम्मान और शान से डॉ. गर्ग को और उनका मित्र होने के नाते मुझे सत्कार शिरोमणि बनाया गया था, वह सदा याद रहेगा। परिवार में भी डॉ. गर्ग का अत्यधिक यश था। 'मैरिटी विंगज एट होम।' कितने ही अभागे रचनाकार हैं, जिनकी पूछ बाहर है, परंतु घर में नहीं।

डॉ. गर्ग का जीवन और उनका निजी लेखन दोनों प्रशस्त हैं, अभिनंदनीय हैं। उनकी एक स्थापना ने मुझे बहुत प्रभावित किया। उनका कहना था कि 'जीवन और साहित्य दोनों में व्यंग्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।' यहाँ व्यंग्य उनके विचार रूप में है। वास्तव में जीवन के त्रासद, करुण और भयावह दंशों का आभास व्यंग्य द्वारा बहुत प्रभावी होता है। डॉ. गर्ग मानते हैं कि जीवन की समझ व्यंग्य से बखूबी होती है। मुझे लगता है कि तभी उनको जीवन की खूब समझ थी। वे जीवन जीना जानते थे, वे जो सीखना चाहें, उसे जीने के गुर भी सिखा

देते थे। देखा गया है कि साहित्य में भी वे व्यंग्यकार अधिक सफल हैं, जिनकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि विपरीत में से व्यंजक तत्त्व खोज निकालती है।

डॉ. गर्ग के अनुसार व्यंग्य में त्रासदी और कामदी का योग होता है या हो सकता है। व्यंग्य की परिणति करुणा में होती है, माननेवाले मेरे जैसे कुछ लोग विवाद कर सकते हैं, परंतु जब हम भाव और शिल्प के विषय में व्यंग्य संदर्भित विचार करते हैं, कथन में सच्चाई नजर आने लगती है।

व्यंग्य और हास्य के संबंध को लेकर प्रश्न उठते रहे हैं। डॉ. शेरजंग गर्ग की एक और स्थापना इस विषय में मेरी धारणा को बलवती करती है। उनका मानना था कि रस की दृष्टि से व्यंग्य में हास्य-रस की दरकार जरूरी नहीं है। व्यंग्य को विधा न माननेवाले व्यंग्य विधाकार परसाई भी कहते थे कि बिना हास्य के भी श्रेष्ठ व्यंग्य लिखा जा सकता है। वे इसके उदाहरण अन्य व्यंग्यकारों की रचनाओं से देते भी थे।

डॉ. गर्ग से कई बार ऐसी चर्चाएँ होती थीं, जिसमें व्यंग्य की बारीकियाँ समझने में दिशा मिलती थी। कई बार विचार-भेद भी हुआ था और सरेआम गोष्ठियों में हुआ, पर उन्होंने कभी अपना बड़ापन हावी न रखकर अपने बड़प्पन का ही परिचय दिया। वे शिष्ट साफगोई को पसंद करते थे। कई बार मैंने कहा है कि डॉ. गर्ग का व्यंग्यालोचक कविता की आलोचना के इतर करता है, क्योंकि बिंब, अलंकार आदि पद्य में आलोचनीय होते हैं, गद्य में नहीं। उन्होंने कभी खुलेआम इसका विरोध न कर, व्यंग्य के प्रति अपने ज्ञान-कोश का पिटारा समृद्ध किया था। उस पिटारे को देखें तो ज्ञात हो जाता है कि भले ही उनका शोध कविता में व्यंग्य पर था, परंतु कहीं उनके अंतर्मन में गद्य व्यंग्यकार बसे हुए थे, इसीलिए उन्होंने अपने प्रबंध की भूमिका में कवियों से पूर्व हरिशंकर परसाई और शरद जोशी के नाम लिये थे।

डॉ. गर्ग का मानवतावादी पक्ष, जो उनकी रचनाओं को अधिक महत्त्वपूर्ण बनाता है, अनुकरणीय है। उनकी स्थापना मानवीय और युगीन विसंगतियों पर प्रहार के बावजूद व्यंग्य मानव-मूल्यों की स्थापना के लिए भी सर्वाधिक प्रयत्नशील रहा। इससे मेरी पीढ़ी के व्यंग्यधर्मियों को रास्ता मिला। जब-जब डॉ. गर्ग 'धर्मयुग', 'सारिका', 'हिंदुस्तान', 'दिनमान' आदि पत्रिकाओं में मेरी व्यंग्य रचना देखते थे, बाकायदा पढ़ते और जब मिलते तो उसके विषय में बात करते, उनकी कमियों को भी बताते और ऐसा केवल मेरे साथ नहीं, बल्कि मेरी पीढ़ी के अनेक रचनाकारों के साथ हुआ और हमें अपने को परिष्कृत करने की दृष्टि निरंतर मिलती रही। अभी तो सीख रहे हैं, दीक्षा पूर्ण कहाँ हुई है। डॉ. गर्ग से सीखा कि आनेवाली पीढ़ी पर नजर रखो, यदि वे चाहें तो उसे मार्ग सुझाओ, अन्यथा नहीं।

कितने ही विभिन्न कोण हैं, जिनसे डॉ. शेरजंग गर्ग को समझा जा सकता है। जिन्होंने जाने कितने कोणों से और कोनों से व्यंग्य को परखा। जहाँ तक शिल्पगत प्रयोगों का सवाल है तो इस कोण पर डॉ. गर्ग स्थापित करते थे, व्यंग्य विधा में इसकी बड़ी छूट है। शिल्प की दृष्टि से व्यंग्य में भाषा के सर्वथा विस्फोटक उपभोग, तुकों की तोड़-मरोड़, बिंबों के साथ सपाटबयानी और व्यंग्य के संप्रेषण के लिए नाटकीयता एवं फंतासी के प्रयोगों की वे चर्चा करते थे। इन पर पक्ष व विपक्ष दोनों प्रकार के विचार मन में आ सकते हैं, विशेषत: जब बात गद्य व्यंग्य की हो। एक उनका बड़ा विचार एक पृथक् परिचर्चा की माँग करता था, जब वे कहते थे, ''व्यंग्य का साधारणीकरण होना अनिवार्य नहीं है।'' मुद्दा गंभीर है, बहुआयामी है, पर विचारोत्तेजक है···फिर कभी के लिए छोड़ सकते हैं, पर दोस्तो, जैसे शेरजंग गर्ग व्यंग्य को नहीं छोड़े, खुदा को हाजिर-नाजिर मानकर मैं अपनी पीढ़ी की ओर से कहना चाहता हूँ कि हम व्यंग्यकार डॉ. शेरजंग गर्ग को नहीं छोड़ सकते।

···और छोड़ेंगे भी नहीं। अभी उनके वर्तमान गुरुग्राम वाले घर में जाकर भाभी के हाथ के पकौड़े भी खाने हैं। आमीन!

साअ

६५ साक्षरा अपार्टमेंट, ए-३,
पश्चिम विहार, नई दिल्ली-११००६३
दूरभाष : ९८१८९८८२२५

इस अंक के चित्रकार

संदीप राशिनकर

जाने-माने लेखक एवं चित्रकार। कई अखिल भारतीय कला प्रदर्शनियों में चित्रों का चयन व प्रदर्शन। राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में हजारों चित्रों/रेखांकनों का प्रकाशन, अनेक प्रतिष्ठित प्रकाशनों की पुस्तकों के आवरण।

भित्ति चित्रों (म्यूरल्स) के क्षेत्र में अनेक स्थानों/प्रतिष्ठानों पर भव्य म्यूरल्स का सृजन एवं अभिनव प्रयोगों से इस शैली में प्रतिष्ठित कार्य।

कविताओं के अलावा कला एवं साहित्य-संस्कृति पर समीक्षात्मक लेखन/प्रकाशन।

साअ

संपर्क : ११-बी, राजेंद्र नगर, इंदौर-४५२०१२
दूरभाष : ९४२५३१४४२२

मातेव पुत्रान् रक्षस्वी

● **जगदीश खरे 'जीवमित्र'**

दोपहरी में जिस पेड़ के नीचे चिरई-चिरगुन छहाँते हैं, उसी नीम के नीचे एक बूढ़ी माई भी बैठी रहती हैं, कभी एकदम चुपचाप, कभी मौज में गुनगुनाती भी रहती हैं। माई बड़ी मिठुलाय के बोलती हैं, सो पशु, पंछी, बच्चे सभी उन्हें घेरे रहते हैं।

आज साधूसिंह जल्दी लौट आए थे। सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते उन्होंने देखा कि अम्माँ ब्लेड से नाखून काट रही हैं और उनकी उँगलियों से कई जगह खून रिस रहा है।

''अरे अम्माँ! तुम कैसे नाखून काट रही हो? देखो तो खून! तुमसे बनता तो है नहीं!''

अम्माँ ने सिर उठाया। बेटे को देखा। लाचारी की उसाँस लेकर बोलीं, ''बड़े हो गए थे बेटा, सो काटने लगी।''

साधूसिंह ऊपर चले गए। ड्राइवर ने गाड़ी पेड़ के नीचे लगा दी और प्रतीक्षा करने लगा कि अम्माँ दरवाजे से हटें तो वह गाड़ी गैरिज में खड़ी कर दे।

असल में अम्माँ का आवास गैरिज में ही है। वहीं उनकी खटुलिया पड़ी रहती है, यहीं से वे बाहर की आवाजाही भी देखती रहती हैं, यों मन भी बहलता रहता है। बहू का ऐसा सोचना ठीक ही है। बड़े घर की है, सो वह सुभीते से ऊपर ही रहती है।

साधूसिंह ने पत्नी से कहा, ''माई ब्लेड से नाखून काट रही हैं, उनकी उँगलियाँ खून से सन गई हैं, तुम नेलकटर से···!''

राधिका तमककर बोली, ''माई, ये नौटंकी जान-बूझकर करती हैं, ताकि बाहर के लोग देखें, नीचे के किराएदार माई पर तरस खाएँ और हमें-तुम्हें कोसें।''

साधूसिंह चुपचाप सवेरे का अधपढ़ा अखबार उलटने-पलटने लगे।

इस विशाल कोठी के अगल-बगल, पीछे कई कमरे हैं, जिनमें कई किराएदार रहते हैं। एक में नेहा रहती है, जो मझोले कद-काठी की है और पढ़ने में तेज है, एम.ए. हिंदी फाइनल की छात्रा है। लेकिन बकौल राधिका के वह इधर-उधर बुढ़ियों के पास बैठकर समय बरबाद करती रहती है।

कॉलेज-बस के हॉर्न की आवाज सुनते ही नेहा किताबें लेकर

मूलतः शिक्षक। रीडर और फिर प्रोफेसर। अंत में प्राचार्य पद से सेवानिवृत्ति। बाबू वृंदावनलाल वर्मा के तेरह रूपकों का निर्माण, आकाशवाणी से प्रसारित। राज्यसभा टी.वी. चैनल से राजेश बादल ने वृंदावन विषयक वार्त्ताएँ लगभग एक महीने तक प्रसारित कीं।

निकली। माई ने उसके प्रणाम के उत्तर में खूब असीसा। ''अरे रेऽऽ! अरी अम्माँ! यह क्या कर डाला आपने? ऐसे काटे जाते हैं कहीं नाखून?'' नेहा ने किताबें पटकीं, लपककर ताला खोला और बोरोलिन उठा लाई तथा माई के खून से सने हाथों को धो-पोंछकर बोरोलिन चुपड़ दी। नेहा ने करीने से नाखून काट दिए। नेहा के हाथों पर जल की बूँदें गिरीं तो नेहा ने सिर उठाया, अम्माँ की आँखें आँसुओं से भरी थीं। ''माई! तुम मुझे बुला लिया करो, मैं करीने से नाखून काट दिया करूँगी···कैसे टेढ़े-मेढ़े काट लिये थे आपने।'' माई के होंठ मुसकरा रहे थे और आँखें रो रही थीं। ''आबाद रहो बिटिया, तुम जैसों के कारण ही धरती टिकी है।'' बस का अंतिम हॉर्न बजा, नेहा किताबें उठाकर दौड़ गई थी।

माई मुसकराने लगीं, उनकी आँखों में इस लड़की के लिए हजारों आसीसें तैर रही थीं।

आज छुट्टी का दिन था, नेहा उन्हें देख रही थी। एक ठंडी उसाँस लेकर उसने मन में ही कहा, 'मुझे तो सेवा का अधिकार ही नहीं है। तुम बड़ी कोठीवाली हो। बहुत बड़े आदमी की माँ हो। काश! मेरी माँ होती तो मैं दुनिया के सामने मिसाल पेश करती कि सेवा ऐसे की जाती है।'

नेहा को चुप और उदास देखकर माई ने वही पुराना मजाक दोहराया, ''बिटिया, भगवान् के घर में मेरा कागज खो गया है, उसे खोज तो लाना!'' लेकिन नेहा इस बार न खुलकर हँसी, न ही माई को गुदगुदाकर हँसाया। उदास बैठी अम्माँ को देखती रही। फिर धीरे से बोली, ''माई, अब जाती हूँ। आज तो हिंदी का एम.ए. फाइनल ही चलेगा, आज हिंदुस्तान व पाक का मैच है, सो सारे टीचर मैच देखेंगे, अकेले खरे सर की कक्षा चलेगी।'' नेहा चली गई। माई उदास हो गोमती नदी के बहाव को देखने लगीं, मानो अपनी दुखियारी जिंदगानी का तरल रेखांकन खोज रही हों। साधू एक बरस का था, तब उनके पति

फॉरेस्टर साहब के कार एक्सीडेंट में खत्म हो गए थे। कितनी कच्ची गृहस्थी और ऐसा ग्रहण! उन्होंने कई बार गोमती में छलाँग लगाकर जीवन समाप्त करने की सोची, लेकिन हर बार बच्चे के खयाल ने उसे लौटाया। उसने सोच लिया कि जब शिशु में प्राण डाले हैं तो पीड़ाओं के अंबार को भी सहन कर उसे पालना-पोसना ही होगा। फिर तो उसने कमर कस ली। सारे जेवर बेचकर उसने बच्चे की शिक्षा पर पूरा ध्यान दिया, संस्कार सिखाती रहीं, उच्च पदस्थ कराया। ऊँचे घराने में शादी कर दी। बहू ऐसी आई—रैनपुतरिया-सी कि माई नमक-राई से रोज नजर उतारतीं और विह्वल हो असीसतीं। माई विगत के भँवर में डूबी थीं कि नेहा ने सामने तश्तरी रखी और माई को हलूसने लगी, ''कहाँ खोई हो! लो यह हलवा! सोयाबीन का है। खा लो इतना ही, मैं खा आई हूँ।''

वर्तमान में लौटी माई नेहा को देखकर सकपकाईं, ''तू कब लौट आई, लाड़ो!''

नेहा ने चम्मच में हलवा भरा और उनके पोपले मुँह में दे दिया, ''पहले खाओ! क्या सोचे जा रही हो?''

सबके सुख-दु:ख में साथी रहीं माई का अब कोई साथी नहीं था। विधवा का क्या रूप, क्या रंग? वे अपने को गलाती जा रही थीं। रोगों ने शरीर में स्थायी डेरा डाल लिया था। खुल्ल-खुल्ल खाँसी से बहू की नींद में खलल पड़ता था, इसलिए तय हुआ कि माई के सोने का इंतजाम गैरिज में कर दिया जाए।

माई बेमन से कोठी से बेदखल हुईं। बेटे-बहू की नींद में खलल न पड़े, इसलिए इस भयानक रिक्तता को भी स्वीकार किया और अपनी मानसिक संपन्नता को नष्ट नहीं होने दिया। वे पुराने जमाने की थीं, दखल देना जानती थीं, लेकिन बेटे-बहू को किसी भी ढंग की असुविधा न हो, उनका दिल न दुखे, इसलिए माई ने अपनी दुखती अनुभूतियों को एक नई कलात्मकता दे डाली और अपने सनकते दु:ख को मजाकिया लहजे में ढाल दिया। माई जब हँसतीं तो लगता कि वे रो रही हैं। सबकुछ छिन जाने का दु:ख—शारीरिक कम, मानसिक अधिक। यही अधिक दुर्वह होता है।

''हे बिटिया! पराए को अपना समझना बड़े ही कलेजे का काम है, लेकिन अपने ही खून का पराया हो जाना, कितना दुखद, कितना त्रासदायी! हे राम! तुम्हीं जान सकते हो।'' जब भी माई का मन अतीत में घूमघामकर वर्तमान में लौटता और घायल होकर छिन्न-भिन्न होता तो वे आले में से पोथी निकालकर पढ़ने लगतीं। इससे मन कुछ थिराता।

नेहा को जब भी वक्त मिलता, वह हिंदी की कोई-न-कोई रचना, गीत उन्हें सुना जाती और वे कई-कई दिनों तक उसे याद भी रखतीं। नेहा ने एक दिन गुनगुना कर कविता सुनाई—

अम्माँ जैसी प्यारी निमियाँ
बप्पा जैसे आम लगे,
हमें गाँव की सोंधी माटी
पावन चारों धाम लगे।
ठंडी छाँव बाँटते हरदम
पुरखों-से बरगद दादा,
हरी-भरी तुलसी आँगन की
दादी घर की मर्यादा।
निर्विकार पीपल का बिरवा
ज्यों अवतारी राम लगे,
अम्माँ जैसी प्यारी निमियाँ।

माई ने ठंडी साँस लेकर नेहा को सराहा और कविता लिखनेवाले को भी। 'इस संवेदनहीन माहौल में भी माई की लोक-संवेदना चैतन्य है।' नेहा सोचती। भोली माई की हँसी में सिवान की उजली डगर दिखती है। नेहा ने कहा, ''माई, आज से सारे अखबार संगम के बारहमासी कुंभ का सारा हाल-चाल बताया करेंगे। संगम पर कुंभ प्रकट होनेवाला है। देश भर से लोग अपने बुजुर्गों को संगम पर लाएँगे। नहाएँगे और साधु-संतों के प्रवचनों का आनंद लेंगे।''

माई उत्सुक होकर नेहा के लाए अखबारों को अपनी धुँधली आँखों से सटाकर देखतीं। चश्मा उतर चुका है, दूसरा बना नहीं, सो वे नेहा से ही पढ़वाती हैं। नेहा बाँच-बाँचकर सुनाती है—''ओ माई! देखो तो यह फोटो, पच्चीस बरस का यह लड़का अपनी बूढ़ी अम्माँ को पिठैया लाद के स्नान कराने आ रहा है। उसके पास किराए के पैसे नहीं थे, सो बीस मील पैदल चला। बाप रे!'' नेहा ने माई की आँखों से चित्र सटाकर दिखाया। ''माई, यह कुंभ अलग है। ऐसी राशियों पर नहान है कि स्नानार्थी को परम मोक्ष प्राप्त होगा।''

माँ के मन में दबी उसाँस बाहर निकल ही आई—''आज फॉरिस्टर साहब होते तो हम भी नहान को जाते, बल्कि उनका तो वन विभाग का कैंप लगता, कई दिन रहते···।''

''अम्माँजी, खटुलिया सरका लो, गाड़ी निकालनी है।'' ड्राइवर माई से कह रहा था।

ड्राइवर गाड़ी निकाल चुका था, वह जाने लगा तो माई से रहा न गया, पूछ बैठीं, ''कहाँ जाना है?''

''संगम पर। कल जाना है, आप चलेंगी क्या?'' ड्राइवर पूछ रहा था।

अम्माँ हँसने लगीं, ''कौन पूछता है हमें!'' नेहा कॉलेज से आ चुकी थी। बोली, ''कौन रोकेगा आपको? स्नान तो दरअसल बुजुर्गों के लिए ही है।''

माई गंभीर हो आईं। उन्हें लगा कि भइया से पूछ लेना चाहिए कि वे हमें भी ले चलें, लेकिन स्वाभिमान की चट्टान अड़ी खड़ी थी। वे चुप हो गईं। नेहा अपने कमरे में चली गई।

सवेरे नेहा चाय का कप ही नहीं लाई, बल्कि एक अखबार भी लाई, ताकि माई संगम-तट की धुँधली फोटो तो देख ही लें।

माई की याददाश्त बड़ी अच्छी है। नेहा के पूछने पर उन्होंने समझाया कि महाकुंभ चार स्थानों पर अवतरित होता है—प्रयाग, हरिद्वार, उज्जैन और नासिक। जब बृहस्पति मेष राशि पर और चंद्र-सूर्य मकर राशि पर होते हैं, तभी प्रयाग में कुंभ स्नान होता है।

''अरे अम्माँ! हमें भी तो समझाओ।'' राधिका सामने खड़ी होकर हँस रही थी। माई और नेहा दोनों को जैसे साँप सूँघ गया, वे अवाक् रह गईं। यह स्वप्न तो नहीं है? नेहा ने सोचा कि मालकिन बीच महीने में ही किराया वसूलने आ गई हैं क्या? माई ने संयत होकर पूछा, ''बेटी, क्या संगम स्नान का विचार बना है?''

''अबकी माई, यह जो कुंभ है, बड़ा फलदायी है और फिर यह कुंभ आपके लिए तो आखिरी ही है।'' बहू ने अपनी प्रकृति के अनुसार अति कटु उगल डाला, जिससे नेहा और माई भीतर तक घायल हो गईं।

माई ने हँसते हुए कहा, ''इस कुंभ पर हमें भी ले चलो।''

राधिका ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। पीछे सीढ़ियों से नीचे उतरते साधूसिंह ने कहा, ''माई, किराए का जुगाड़ कर लेना।''

माई ने हँसते हुए तुरंत सोने के बुंदे कान से उतार लिये। साधूसिंह हँसने लगे, ''माई मैं तो मजाक कर रहा था। कार से चलना है, किराया क्या? चार स्नान, तीस अखाड़ों में भजन-कीर्तन का लाभ। कल चलेंगे भोर में।''

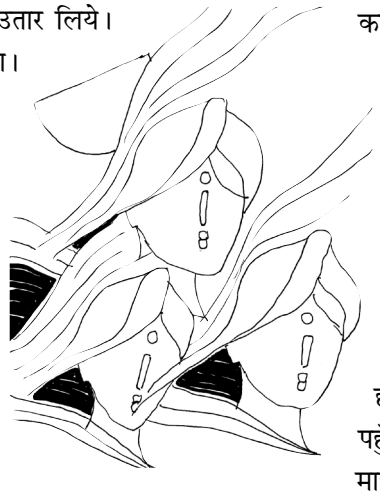

माई के तो खुशी के मारे आँसू निकल पड़े। नेहा को अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। भरभराए कंठ से माई बोलीं, ''जीते रहो बेटा! मेरी दिली इच्छा थी कि संगम नहा आऊँ।''

माई गद्‌गद थीं, पतले-लाल होंठ काँपे जा रहे थे।

सूरज उगने में अभी आधा घंटे की देरी थी, चारों ओर ओसीला मौसम पसरा पड़ा था, बीच-बीच में लंबे मैदान, कहीं-कहीं ऊँचे, बड़े-बड़े पहाड़। वन-प्रांतर पीछे छोड़ती कार संगम की ओर भागी जा रही थी।

माई का मन आज मगन था। मन-ही-मन वे कई भजन गुनगुना चुकी थीं। एक भजन के बोल आवेश में बाहर भी निकल पड़े—

जो रघुबर बनफज खइहैं
फोकली बिन खाब
रघुवर संग जाब!

पति-पत्नी के संग ड्राइवर भी हँसने लगा। माई थोड़ा झेंपीं, फिर गुनगुनाने लगीं।

संगम पर तो एक नया नगर बस गया था। दूर से ही निशान पताकाएँ फहरा रही थीं। हाथी, घोड़े बड़ी-बड़ी क्रेनें और रोशनी में नहा रहा विशाल जनसमूह—सबकुछ स्वप्निल-सा। इतनी भारी भीड़ होते हुए भी साधूसिंह पहुँचवाले आदमी थे, सो एक अच्छे कैंप में स्थान मिल गया। पीछे कार पार्क हो गई। सब सो गए, पर माई को नींद कहाँ! वे लेटे-लेटे प्रवचन सुनती रहीं।

चार बजे प्रातः ही माई स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर, गंगाजल पीकर अखाड़ों के चक्कर लगा आईं—कनखल से आया पंचायती अखाड़ा, उदासीन अखाड़ा, तो कहीं सनातन धर्म की रक्षा में लगा श्रीपंच अखाड़ा। महानिर्वाणी अखाड़ा ने तो विश्वनाथ की रक्षा के लिए औरंगजेब से युद्ध किया और विजय भी पाई थी तथा बाबा विश्वनाथ की गद्‌दी सुरक्षित बचा ली थी। माई सुन-सुनकर गद्‌गद होतीं। माई का पेट तो प्रसाद पाते-पाते ही भर गया। उन्होंने बहू-बेटे से भोजन कर लेने को कहा। माई को चहकते, मगन देखते, मेला में घूमते, चार घड़ी से चार दिन बीत गए। माई घर लौटने से पहले पापनाशिनी गंगा में एक बार जी भरकर डुबकी लगा लेना चाह रही थीं। पति-पत्नी ने समझाया, ''हम लोग अखाड़े में यहीं रहेंगे। नहान के बाद घूमो-फिरो, कोई जल्दी नहीं है।''

ताँबे के लोटे से कई बार गंगाजल अपने सिर पर डाला। पति को याद कर सात डुबकियाँ लगाईं, मंत्र पढ़े, ध्यान करके तट पर लौट आईं, फिर अखाड़ों के दर्शन करते हुए प्रवचन सुनने लगीं। व्यास गद्‌दी पर बैठे गिरि महाराज प्रसंग सुना रहे हैं—''ऋषि, प्राणिक ऊर्जा! महाशक्ति से प्रार्थना कर रहा है कि जैसे महतारी बेटे की रक्षा करती है, वैसे ही रक्षा करना। मातेव पुत्रान् रक्षस्वी।'' माई गद्‌गद होकर सिर हिलाने लगीं। सोचने लगीं कि ऋषि ने गजब का उदाहरण दिया—'माँ जैसे पुत्र की रक्षा करती है। वाह महाराजजी! वाह! वैसे ही रक्षा करना।' बहू-बेटे की सुध आते ही वे प्रवचन से उठ आईं और अपने अखाड़े में जा पहुँचीं। बहू-बेटे शयद प्रवचन सुनने के लिए चले गए। माई के मन में शंकाओं के तूफान उठने लगे। वे आसपास के कैंपों में भी घूम आईं। पीछे एक बार फिर देख आईं, जहाँ कार खड़ी थी। अब वे डरने लगीं। अचानक रुलाई का वेग आया, फिर उन्होंने धैर्य बाँधा—शहर में किसी से मिलने भी तो जा सकते हैं, लेकिन धीरज नहीं बँधा। उन्होंने स्वयंसेवकों से बहू-बेटे का पता लगाने की प्रार्थना की। स्वयंसेवक उन्हें खोया-पाया कैंप में ले गए, पता लिया। गाड़ी का नंबर माई को पता नहीं था। नीली कार और साधूसिंह के नाम का ऐलान होने लगा। कुंभ-ग्राउंड के सारे लाउडस्पीकर चीखने लगे—''साधूसिंह, उनकी पत्नी तुरंत खोया-पाया कैंप में आ जाएँ, उनकी माताजी चिंता कर रही हैं।''

एक स्वयंसेवक माई के सामने चाय-समोसा रख गया, लेकिन माई ने उसे छुआ तक नहीं, फिर कई लोग उन्हें रोते हुए देखकर सांत्वना बँधाने लगे। उन्हें बिलखते देख एक मुँहफट कहने लगा, ''धीरज रखो माता राम! ऐसे ही माता-पिता से छुटकारा पाते हैं बच्चे! संगम क्या, जहाँ-जहाँ कुंभ महाराज प्रकट होते हैं, वहाँ-वहाँ माताएँ ढेर सारी बच जाती हैं। कुंभ चले जाते हैं। मेला उठ जाता है और बेटे-बहू महतारी को छोड़ भाग जाते हैं। आप रोते-बिलखते चुप हो जाएँगी। अभी मैं मिलवाता हूँ ऐसी ही तमाम माताओं से।'' वह उठने लगा कि माई धड़ाम से कुरसी से नीचे गिर पड़ीं। वे बेहाश हो चुकी थीं। कैंप के डॉक्टर ने कुछ गोलियाँ दीं और चला गया। स्वयंसेवकों ने माई को लिटा दिया।

मुँह में पानी डाला, जो इधर-उधर बह गया। कई वृद्धाएँ उनके पास आ बैठीं। कोई तलवे सहला रही थी, कोई हथेली मल रही थी, कोई उन्हें हिला-हिलाकर चैतन्य करना चाह रही थी। धीरे-धीरे पलकें हिलीं, मूर्च्छा टूटी तो वे अवाक् होकर देखने लगीं। कई माताएँ उनके पास घिर आईं! ''बहना! अब धैर्य रखो, यहाँ सैकड़ों माताएँ ऐसी ही हैं, जो···'' और समझाने वाली खुद ही रोने लगीं। ''धिक्कार है ऐसे बेटों पर! मैं झाँसी की हूँ। पिछले कुंभ में मुझे यहाँ छोड़ गए थे। यहाँ का हाल और सब जगहों का एक-सा हाल है। यहाँ भीख ही माँगनी है। अनुचित बातों को मानती जाओ और पेट भरती जाओ।''

तभी एक मस्त-मलंग साधु महाराज कैंप में पधारे, कुछ देर आँखें बंद कर ध्यान लगाया, फिर जोर से चिमटा फटकारा और बोले, ''जिन बेटों को तुम बुरा-भला कह रही हो, वे बुरे-भले नहीं हैं, वे चाहते हैं कि माँ भक्ति-रस में डूबे, प्रभु में ध्यान लगाए, परलोक सुधारे। आश्रमों में तो सभी तरह का आराम है। एक हजार रामनाम की पर्ची लिखी, पकड़ाईं, टोकन थमाया और भोजन मिला। ढलती साँझ राधे-राधे का हजारा लिखा कि चाय मिली। भक्ति की गंगा, हरिदर्शन की चौबीसों घंटे सुविधा! और क्या चाहिए माताओं को? ईश्वर की रचना ईश्वर के सान्निध्य में ही तो तो सुख पावेगी।''

माई ने अब पूरे होशो-हवास में आकर आँखें खोलीं, उठीं और बैठकर जोर से बोलने लगीं, ''सभी दुःखी माताएँ मेरे समीप आ जाएँ और ध्यान से सुनें, मैंने अपने बेटे साधूसिंह, बहू राधिका को ही नहीं, यहाँ सारी दुखियारी माताओं के बेटे और बहुओं को उचित शिक्षा देने का निश्चय कर लिया है। मैं उन्हें जिंदगी की असली सीख देने पर आमादा हो गई हूँ। मैं हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी मिडिल पास, पढ़ी-लिखी हूँ। मैं आज इसी कुंभ में गंगा की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करती हूँ कि जिन माताओं ने अपने बच्चों की खातिर अपना वर्तमान नष्ट कर दिया, बच्चों के सुख के लिए खुद को न्योछावर कर दिया, उन माताओं को न्याय दिलाकर ही मरूँगी। माँ बच्चे के लिए अनंत पीड़ाओं का अंबार सहती है और जब उसे सहारे की जरूरत होती है तो वे नादान, बहके हुए बच्चे उन्हें तीर्थस्थलों में भीख माँगने को छोड़ जाते हैं। यह समय तो नारी-जागरण काल है। सभी माताएँ आँसू पोंछें और हजारों-हजार अर्जियाँ सरकार के पास भिजवाएँ, मुझे पूरा भरोसा है कि सरकार चेतेगी। हम दुःखी माताओं के पक्ष में कानून बनेंगे। मेरी कोठी तो मेरे नाम है और वह मैं ले लूँगी बच्चों को बेदखल करके, फिर उन पर कृपा करूँगी, तब समझेंगे कि माँ कितनी अनमोल है। बहुएँ कालचक्र को क्यों नहीं चीह्नतीं? वे आज बहू हैं, कल को क्या सास नहीं बनेंगी?''

जब तक रोना-धोना चलता रहा, अधिकारियों के कानों पर जूँ नहीं रेंगी, लेकिन यह सामूहिक जोश उनके लिए अनोखा था। मेला प्रबंधन हिल उठा। अधिकारी और बड़े अधिकारी भी आ गए। पीड़ित माताओं के समूह को शांत कराया। उनके नाम-पतों के आधार पर ट्रेन के वापसी के टिकट भी आ गए और रास्ते के लिए टिफिन भी।

माई ने सभी माताओं के नाम-पते लिये और कहा, ''हम अपने बच्चों से लड़ नहीं रहे हैं, उन्हें हम सच्ची राह दिखा रहे हैं, उनकी रक्षा कर रहे हैं। उस पाप से उन्हें दूर कर रहे हैं, जिन्हें वे अज्ञानवश कर चुके हैं।'' कहते-कहते माई का गला भर आया, लेकिन उन्होंने रुदन रोक लिया। अब एक बड़ा काम उनके जिम्मे आ पड़ा था, घंटों-घड़ियालों-झालरों के बीच ऋषि की प्रार्थना गूँज रही थी—'मातेव पुत्रान् रक्षस्वी', सारे मेला-ग्राउंड के लाउडस्पीकरों पर यह मंत्र गूँजने लगा—माँ जैसे पुत्र की रक्षा करती हैं, वैसे ही रक्षा करना!

'मातेव पुत्रान् रक्षस्वी···मातेव पुत्रान् रक्षस्वी···'

साअ
३७२ सिविल लाइंस
ग्वालियर रोड, झाँसी-२८४००१
दूरभाष : ०९४५०२१७००८

जीवन उधार जैसा है

गजल

● **जहीर कुरेशी**

: एक :

ये न कहना कि कल चखा जाए,
कामयाबी का फल चखा जाए!

इन विवादों से क्या मिला, यारो,
अब समस्या का हल चखा जाए।

शुद्ध जल स्वादहीन होता है,
इसलिए अश्रु-जल चखा जाए!

जिसको शिव ने गले में धारा था,
आज वो ही गरल चखा जाए।

एक ढर्रे पे चलते जीवन में,
कोई रद्दो-बदल रखा जाए!

वो जो आनंद का चरम क्षण है,
हाँ, वही एक पल चखा जाए।

आसमानों की सैर तो कर ली,
अब समंदर का तल चखा जाए।

: दो :

तन किराए की कार जैसा है,
सारा जीवन उधार जैसा है!

आजकल प्यार नौजवानों में,
चार दिन के बुखार जैसा है।

उसको शक से नहीं मिली फुरसत,
उसके मन में विकार जैसा है!

वो सिखाती है ऊँच-नीच मुझे,
उस पे माँ का प्रभार जैसा है।

कोई आकर बुहारता ही नहीं,
मन में गर्दो-गुबार जैसा है!

नींद के बीच जागना है हमें,
स्वप्न भी तो जगार जैसा है।

कोई आशा नजर नहीं आती,
हर तरफ अंधकार जैसा है।

साअ
१०८, त्रिलोचन टावर, संगम सिनेमा के सामने
गुरुबक्श की तलैया, पो.ऑ. जीपीओ,
भोपाल-४६२००१ (म.प्र.)
दूरभाष : ०९४२५७९०५६५

महात्मा

● लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला

बीसवीं सदी विश्व के लिए अत्यंत विध्वंसकारी थी। दो महायुद्ध हुए। एटम बम का आविष्कार हुआ। भारत में यह गांधी युग था। १९४१ में मेरी आयु तेरह वर्ष की थी व कलकत्ते में था। कलकत्ते पर बम गिरते देखे। इंग्लैंड पर रोज बम गिरने की खबर सुनकर अत्यंत आनंद होता था। इतना क्रोध अंग्रेज शासकों के प्रति था। बम गिरने के बाद उत्सुकतावश खिदरपुर डॉक गया, जहाँ बम गिरे थे। लहूलुहान लोगों को देखा, कराहते घायलों को देखा तो पहली बार अनुभव हुआ कि युद्ध कितना पीड़ादायक होता है। राजा के अहंकार की कीमत गरीब जनता चुकाती है। इंग्लैंड के लोगों ने कितने कष्ट सहे हैं। जर्मनी प्रथम युद्ध हारकर भी इतना शक्तिशाली हो गया है कि इंग्लैंड पर बम गिराता है। मेरी बाल्यावस्था में ये अनुभव अत्यंत जिज्ञासा पैदा करते थे। १९४२ में गांधीजी का 'करो या मरो' आंदोलन शुरू हुआ। 'करो या मरो' आंदोलन की कोई खास जानकारी नहीं थी। गांधीजी की बातें अच्छी लगती थीं कि जिस देश में रेल चलने के हल्ले से वातावरण अशांत हो जाता है, वहाँ ईश्वर कैसे रह सकता है—जैसे मुझे अच्छी लगती थी और लोगों को भी अच्छी लगती होंगी, पर आज सोचता हूँ कि यदि देश में रेल नहीं होती, हवाई जहाज नहीं होते तो हमारी क्या दशा होती। दशा तो आज भी दयनीय है। अंग्रेजों के समय भी लंका, म्याँमार, अफगानिस्तान, भारत के हिस्से थे। देश का काफी बड़ा हिस्सा चीन हड़प कर बैठा है। पाकिस्तान बन गया। देश सिमटकर रह गया।

द्वितीय महायुद्ध में जर्मनी प्रथम तीन वर्षों में फ्रांस, आस्ट्रिया, पोलैंड, हॉलैंड आदि देशों को अपने कब्जे में कर चुका था। अंग्रेजों की हालत अत्यंत कमजोर थी। अत: उन्होंने क्रिप्स मिशन भारत भेजा कि भारत से समझौता कर लें, ताकि भारत का अंग्रेज विरोध बंद हो जाए। श्रीअरविंद ने गांधीजी को संवाद भेजा कि कुछ समझौता कर लेना चाहिए। गांधीजी ने ठीक उलटा किया। क्रिप्स मिशन से समझौता न कर 'करो या मरो' आंदोलन शुरू किया।

सुभाष बोस ने ऐसे ही आंदोलन का अनुरोध गांधीजी से १९२४ के आस-पास किया था। उस समय गांधीजी राजी नहीं हुए। १९४० की त्रिपुरी कांग्रेस में गांधीजी ने सुभाष को निकाला, जब वे १०४ डिग्री बुखार से पीड़ित थे। रवींद्रनाथ टैगोर को आघात लगा। उन्होंने अपनी वेदना गांधीजी को व्यक्त की। बड़ी बहादुरी से अंग्रेजों की आँखों में धूल झोंककर सुभाष यूरोप पहुँच गए।

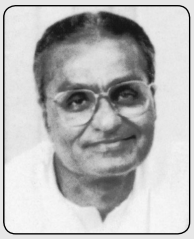

१७ अक्तूबर, १९२८ को ग्राम मुकुंदगढ़ (राजस्थान) में जन्म। कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक, गणित ऑनर्स में स्वर्ण पदक प्राप्त, एम.ए.। औद्योगिक जगत् में रहकर भी सांस्कृतिक कार्यों में सक्रिय योगदान; अनेक सांस्कृतिक संस्थानों से जुड़े हुए।

अरविंद की पृष्ठभूमि थोड़ी समझने की आवश्यकता है। पिता पाश्चात्य संस्कृति से अत्यंत प्रभावित थे। सात वर्ष की आयु में उन्हें विलायत भेज दिया गया। एक अंग्रेज महिला के संरक्षण में रखा गया। पिता का महिला को आदेश था कि भारतीयों के संपर्क में न आए। तीनों पुत्रों को विलायत भेज दिया गया। दुर्भाग्यवश पिता की आर्थिक स्थिति अत्यंत कमजोर हो गई। अरविंद के पास पैसे आने बंद हो गए। अरविंद पढ़ने में बहुत तेज थे। छात्रवृत्ति मिलने लगी। किसी प्रकार आधे पेट रह वहाँ पंद्रह वर्ष रहे। भारत लौटे। बड़ौदा महाराज विलायत में अरविंद को देखकर प्रभावित हुए थे। उन्होंने उन्हें रख लिया। उनके कॉलेज में वाइस प्रिंसिपल रहे। के.एम. मुंशी जैसे उनके छात्र थे। अरविंद की अहिंसा, चरखे आदि पर गांधीजी की तरह श्रद्धा नहीं थी। वैसे १९२५ में जब गांधीजी की ख्याति भारत में शीर्ष स्थान पर थी, रामकृष्ण मिशन के स्वामी अशोकानंदजी ने भी कहा था कि चरखा अबलाओं के आश्रय का प्रतीक है। राष्ट्रीय ध्वज सेनाओं को जीवन उत्सर्ग के लिए प्रोत्साहित करता है, अत: चरखा राष्ट्रीय ध्वज पर रहना अनुकूल नहीं है। दुष्टों के दमन के लिए हिंसा आवश्यक है। अहिंसा व्यक्ति का गुण है, पर राष्ट्रीय नीति नहीं हो सकती है। गांधीजी व स्वामी अशोकानंद का पत्र-व्यवहार पढ़कर प्रसन्नता नहीं होती।

दो बातें इस संदर्भ में यहाँ और लिख दूँ। (१) १९०० में कलकत्ते

में कांग्रेस अधिवेशन के लिए गांधीजी कलकत्ते आए हुए थे। वे कलकत्ते आवास में विवेकानंद से मिलने के लिए उत्सुक थे। विवेकानंद की विश्वधर्म सम्मेलन की ख्याति से प्रभावित हो उन्होंने विवेकानंद को दक्षिण अफ्रीका आने के लिए आमंत्रित भी किया था। कलकत्ता प्रवास में वे विवेकानंद से मिलने पैदल करीब आठ मील चलकर बेलूड़ मठ गए। विवेकानंद वहाँ नहीं थे। पर आश्रमवासियों ने उनको अत्यंत आदर से आश्रम दिखाया। जिस कक्ष में विवेकानंद रहते थे, वह भी उन्हें दिखाया। उसमें मचान, जिस पर वे सोते थे, कीमती जूते, जो अमेरिका में पहनते थे आदि देखकर उनको थोड़ी निराशा हुई। (२) दूसरी बात मैं श्री अरुण शौरी की अंग्रेजी की पुस्तक 'Two Saints' (दो संत) के आधार पर लिख रहा हूँ। गांधीजी अपनी यात्राओं के सिलसिले में रमण आश्रम से करीब दो मील किसी कार्य से आए थे। उनके दल में एक महर्षि रमण के भक्त भी थे। उन्होंने गांधीजी से अनुरोध किया कि अपने पास समय है, रमण महर्षि के दर्शन कर लें। पर गांधीजी नहीं गए। जब पीछे किसी भक्त ने रमण महर्षि को यह बात कही तो उन्होंने कहा कि गांधीजी यहाँ कभी नहीं आएँगे। रमण महर्षि ने यह क्यों कहा, यह समझना कठिन है। गांधीजी रमण आश्रम क्यों नहीं गए, यह भी समझना कठिन है।

पर यह स्पष्ट है कि गांधीजी ने अरविंद की राय की अवहेलना की। क्या अरविंद अहिंसा पर श्रद्धा नहीं करते थे, इसलिए अवहेलना की। अरविंद को कलकत्ते में जेल में कितना कष्ट सहना पड़ा था, यह गांधीजी को ज्ञात था। एक छोटी कोठरी में उन्हें बंद रखा गया। उसी में दो घड़े रखे रहते थे। एक में लघुशंका व शौच करने के लिए तथा दूसरे में जल पीने व मुँह धोने के लिए। पर अरविंद की तपस्या के प्रभाव से वे भगवत् दर्शन व भगवत् संपर्क के आनंद में लीन रहे। जेलयात्रा तीर्थ यात्रा में परिवर्तित हो गई। बमकांड में अरविंद रिहा हो गए, यह भी रहस्यमय था। उनके अनेक साथियों को मृत्युदंड व आजीवन कारावास दिया गया। जेल से छूटते ही उन्हें भगवत् आदेश मिला (ऐसा अरविंद कहते हैं) कि तुम तुरंत पांडिचेरी चले जाओ। पांडिचेरी में प्रथम दो वर्ष अत्यंत कष्ट में रहे। खाने-पीने का कोई ठिकाना नहीं। रास्ते के नल पर स्नान करते थे। कुछ वर्षों बाद आर्थिक सहायता आनी शुरू हो गई। अरविंद १९१० में पांडिचेरी चले गए। गहन तपस्यारत थे। चौबीसों घंटे ध्यान, स्वाध्याय, योगाभ्यास में रहते। बड़ौदा आवास में योगगुरु लेले ने उन्हें योगाभ्यास कराया था। वे बारह घंटे योगाभ्यास करते। यह सब गांधीजी को ज्ञात था। क्या यह गांधीजी की भूल थी, यदि गांधीजी अरविंद की राय मान लेते तो भारत विभाजन नहीं होता। लाखों लोग मारे नहीं गए होते। गांधी पर गहन अनुसंधान श्री रामचंद्र गुहा ने किया है। हजारों पृष्ठ गांधीजी पर उन्होंने लिखे हैं। उनसे दिल्ली में मुझे मिलने का सौभाग्य मिला तो मैंने उनसे पूछा कि गांधीजी ने अरविंद की अवहेलना क्यों की? उन्होंने कहा कि यह शायद गांधीजी की भूल थी। ये सब विषय गहन अध्ययन के हैं, ताकि आनेवाली पीढ़ियाँ इससे शिक्षा लें। यह मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि भीष्म पितामह की महानता पर, उनकी वीरता पर, उनकी वचनबद्धता पर कौन उँगली उठा सकता है। पांडवों से उनको स्नेह था। पांडवों के पक्ष को वे न्याययुक्त मानते थे, पर फिर भी वे लड़े कौरवों की ओर से।

खैर, अरविंद ने अंग्रेजों की सहायता के लिए धन एकत्र किया। भारतीयों को सेना में भरती के लिए लोगों को उत्साहित किया। कैसा दुर्भाग्य है, एक ओर गांधी अंग्रेजों के विरुद्ध आंदोलन कर रहे हैं। दूसरी ओर अरविंद अंग्रेजों की विजय के लिए प्रभु से प्रार्थना कर रहे हैं। अरविंद के जन्म दिवस १५ अगस्त पर देश आजाद हुआ। यह क्या महज संयोग था या कोई दैवी विधान था।

गांधीजी के अनुयायियों के हाथ में देश का शासन आया। सरदार पटेल नेहरू की नीतियों से असंतुष्ट थे। गांधी हत्या के चार दिन पहले उन्होंने गांधीजी को कहा था कि जिस प्रकार नेहरू अपमान करते हैं, वे मंत्रिमंडल से इस्तीफा देना चाहते हैं। गांधीजी ने उन्हें मनाया। दो दिन बाद बिड़ला हाउस में गांधीजी नेहरू-पटेल को लेकर बैठे। लंबी चर्चा हुई। प्रार्थना का समय हो गया। पाँच मिनट देर हो गई। कभी देर होती नहीं थी। नेहरू व पटेल अपने आवास पर चले गए। गांधीजी प्रार्थना सभा में गए। गोडसे ने उनको मार दिया।

नेहरू, पटेल, वायसराय माउंट बैटन दौड़कर बिड़ला हाउस आए। माउंट बैटन ने नेहरू व पटेल को बुलाकर कहा, 'तीन दिन पहले गांधीजी मेरे पास आए थे। उन्होंने कहा, मैं आप जब बुलाते थे, तभी आता था, पर आज मैं आपसे एक भिक्षा माँगने आया हूँ। आजकल नेहरू आपकी बात अधिक सुनते हैं। मेरी परवाह वे नहीं करते। आपसे प्रार्थना है कि उन्हें समझाएँ। यदि उनका व पटेल का आपस में ऐसा ही मतभेद रहा तो देश का बड़ा अहित होगा।' माउंट बैटन स्तब्ध रह गए। खैर, नेहरू-पटेल ने गांधीजी की शवयात्रा साथ निकाली। पर कुछ समय के बाद ही पटेल निराश होने लगे।

अंग्रेज चले गए बदले में भारतीय अंग्रेज शासन में आ गए। गांधीजी के शिष्यों का मंत्रिमंडल था। राष्ट्रपति भवन की शान-शौकत वैसी की वैसी रही। गांधीजी चाहते थे कि वह अस्पताल बन जाए। वह नहीं हुआ। भारत जिसकी ८० प्रतिशत आबादी गरीबी के तल पर आजादी के समय थी, उसका राष्ट्रपति आलीशान महल में, जहाँ डेढ़ सौ लोग उसकी रखरखाव के लिए रहते थे, अनाप-शनाप खर्च होता था। यह भी गांधीजी के जीवनकाल में ही हुआ। यह कहना कि सरकार का खर्च जहाँ लाखों-करोड़ रुपए का है, वहाँ चार-पाँच करोड़ का राष्ट्रपति भवन का खर्च क्या महत्त्वपूर्ण विषय है, यह तर्क फुटपाथ पर सोनेवाले भूखे-गरीबों का अपमान है।

भारत करुणा का देश कहा जाता है। क्या बुद्ध, महावीर इस देश में पच्चीस सौ वर्ष पहले पैदा हुए, उससे क्या भारत करुणा का देश हो गया। मैं मानता हूँ कि आध्यात्मिक धरातल पर भारत अन्य धनी देशों के मुकाबले अत्यंत उच्च स्तर पर है। घोर पतन के समय भी इस देश

में रामकृष्ण, रमण महर्षि, अरविंद जन्म लेते हैं। मुसलमानी शासन में भी यहाँ सूर, तुलसी, रामानुज, वल्लभाचार्य, माधवाचार्य जैसे महापुरुष हुए। पर राजनैतिक धरातल पर हमारी दशा निंदनीय रही है। आज से पच्चीस सौ वर्ष पहले सिकंदर ने आक्रमण किया। हमारा ही राजा आंभी उससे मिल गया। देशद्रोह किया। यह तो ईश्वर की कृपा थी कि एक शिक्षक चाणक्य ने उत्तर भारत के राजाओं को प्रेरित कर सिकंदर को लौटने के लिए बाध्य किया। उस समय भी शक्तिशाली मगध के राजा ने चाणक्य को सहायता देना तो दूर, अपमानित कर दरबार से निकलवा दिया। यही नहीं बुद्ध, महावीर (३०० बी.सी.) के काल के दो सौ साल पहले—४९५ ई.पू. अजातशत्रु ने अपने पिता बिंबिसार की हत्या कर राज्य लिया।

४६८ ई.पू. उदयबहुश ने अपने पिता अजातशत्रु की हत्या कर राज्य लिया।

४०० ई.पू. से २०० ई.पू. में

अनिरुद्ध ने अपने पिता उदयबहुश की हत्या कर राज्य लिया।

मुंदक ने अपने पिता अनिरुद्ध की हत्या कर राज्य लिया।

नग्दशन ने अपने पिता मुंद्रक की हत्या कर राज्य लिया।

जिस चाणक्य को मगध के राजा घनानंद ने अपमानित किया था, उसी के पूर्वज पद्मनाभ नंद ने शिशुनाग के परिवार के राजा का वध कर मगध पर अधिकार किया था। राजनीति में हत्याएँ सब जगह होती हैं। भारत में भी हुईं। इस दिशा में हम अन्य देशों से भिन्न नहीं थे।

भारत का प्राचीन इतिहास गौरवमय है। इसमें कोई संदेह नहीं। पर वह प्राचीनकाल वैदिककाल था। अरविंद के हिसाब से यह ५००० ई.पू. से ८००० ई.पू. का काल था। वह हमारा स्वर्ण युग था। विश्व का सबसे प्राचीन साहित्य चारों वेदों की रचना उसी काल में हुई। धीरे-धीरे पतन आरंभ हुआ। वेदज्ञान लुप्त होने लगा। संस्कृत चली गई। उपनिषद् काल आया। उपनिषद् काल भी गया। पर पतन हम रोक नहीं पाए। बुद्ध, महावीर आए, अहिंसा का उपदेश दिया, पर देश का पतन गहरा ही होता गया। हूण, अरब के मुसलमान, मुगल, फ्रांसीसी, डच, पुर्तगाल, अंग्रेज सबने इस देश को हराया व इस पर शासन किया। भास्कराचार्य, सुश्रुत, पाणिनि, पतंजलि आदि असाधारण व्यक्ति हुए हैं, जिनका हमें गौरव है व होना भी चाहिए। पर सब मिलाकर भारत की दुर्दशा का हमारा तीन हजार वर्ष पुराना इतिहास साक्षी है।

आजादी के प्रारंभ से ही भारत में भ्रष्टाचार का शासन था। लंबी कहानी है। मेरे पिताजी का संपर्क बिहार के सत्यनाराण सिन्हा के परिवार से हुआ। इसका आर्थिक लाभ हमें मिला। नेहरू की कमजोरियों के कारण देश की नींव कमजोर हुई। श्रीमती माउंट बैटन व उनकी पुत्री के प्रति आकर्षण सभी तो गांधीजी को ज्ञात थे। नेहरू के यौवन के करीब ३००० दिन जेल में बीते। उनका त्याग अद्‌भुत था। के.बी. लाल, लक्ष्मीकांत झा आदि आर्थिक रूप में अत्यंत ईमानदार थे, पर कैबिनेट सेक्रेटरी होने की लालसा में कांग्रेसी मंत्रियों के भ्रष्टाचार को संरक्षण देते थे।

१९०१ में गांधीजी कलकत्ते की कांग्रेस में भाग लेने आए, उनका भाषण हुआ। उन्होंने अंग्रेजी अखबार देखे। उनमें उनके भाषण का समाचार नहीं था। अत्यंत अप्रसन्न हुए। फिर उन्हें बांग्ला के अखबार दिखाए गए, जिनमें विस्तार से उनके दक्षिण अफ्रीका प्रवास के आंदोलन की अत्यंत प्रशंसा की गई थी। यह देखकर उन्हें थोड़ा संतोष हुआ।

मुसलिम समस्या अत्यंत जटिल थी। भारत पर करीब पाँच सौ वर्ष उन्होंने शासन किया। हिंदू उन्हें म्लेच्छ समझते थे। उनका छुआ भोजन नहीं करते थे। मुसलमान हिंदुओं का धर्म-परिवर्तन करवाते थे। औरंगजेब के अत्याचार को भूलना हिंदुओं के लिए कठिन था। पर १९०५ में बंगभंग आंदोलन में हिंदू-मुसलमानों का आपस में प्रेम अरविंद ने करवा दिया था। दोनों ने अंग्रेजों के विरुद्ध आंदोलन किया। बंगभंग अंग्रेजों को टालना पड़ा। जिन्ना कांग्रेस में थे। हिंदू-मुसलमान प्रेम से रहेंगे, ऐसा लगने लगा था। मुसलमानों के अनेक विवाह करने पर रोक न होने पर उनकी जनसंख्या बढ़ रही थी। आर्य समाज का उस समय बहुत प्रभाव था, पर गांधीजी ने उनकी अवहेलना की। इस समस्या पर जितना गहन विचार होना चाहिए था, वह नहीं हुआ। जिन्ना को कांग्रेस छोड़नी पड़ी। १९३८-३९ में श्यामा प्रसाद मुखर्जी व फजलुल हक ने बंग विभाजन का विरोध किया था। गांधीजी ने उनको उत्साहित नहीं किया।

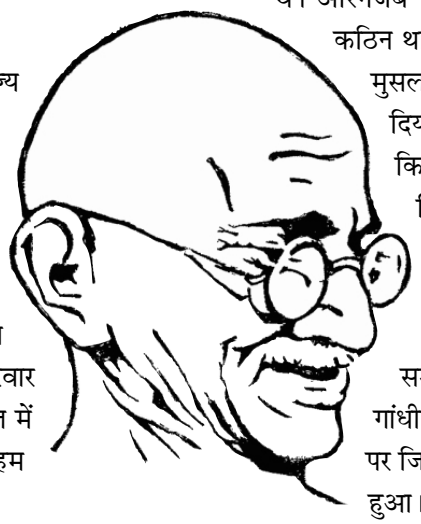

अंतिम बात लिखकर समाप्त करता हूँ। भारत विभाजन हुआ। गांधीजी चाहते तो रोक सकते थे। तीसों उपवास उन्होंने किए थे। भारत विभाजन के विरोध में उपवास करते तो नेहरू-पटेल को झुकना पड़ता, विभाजन नहीं होता। पर उन्होंने उपवास नहीं किया। पूछने पर कहा कि मेरे हृदय से यह आवाज नहीं आई।

क्रिप्स मिशन आया। सुधीर घोष एक होशियार नवयुवक था। गांधीजी के अत्यंत नजदीक था। अंग्रेज बहुत होशियार थे। सुधीर घोष से संपर्क रखा कि गांधीजी से उसके माध्यम से बातचीत हो सके। क्रिप्स ने सुधीर घोष को संकेत दिया कि कांग्रेस अब गांधीजी की परवाह नहीं करती। मौलाना आजाद भारत विभाजन पर अपनी सहमति क्रिप्स मिशन को दे चुके हैं। जब सुधीर घोष ने यह बात गांधीजी को बताई तो गांधीजी रात को सो नहीं पाए। उन्होंने सुधीर घोष को बुलाया। उससे कहा कि मौलाना का पत्र क्रिप्स से लाकर मुझे दिखाओ। क्रिप्स असमंजस में पड़ गए। सुधीर ने कहा कि गांधीजी को आप जानते हैं। वे ऐसा कोई काम नहीं करेंगे, जिससे आपको असुविधा हो। क्रिप्स ने

पत्र सुधीर को दे दिया। गांधीजी पत्र देखकर स्तब्ध रह गए। गांधीजी ने पटेल से यह बात कही, पर पटेल ने कहा कि मौलाना पर मेरा कभी अटल विश्वास नहीं रहा। नेहरू से यह बात कही तो वे सुधीर पर नाराज हो गए कि यह उसका बचपना है। आपने उसे सिर चढ़ा रखा है।

विभाजन हुआ। नोआखाली में हिंदुओं का संहार हुआ। हिंदू महिलाओं का अपहरण हुआ। भीषण संहार हुआ। गांधीजी हिंदुओं को सहानुभूति दिखाने नोआखाली गए। विभाजन के बाद भारत की स्थिति अत्यंत चिंताजनक थी। ऐसे समय में नोआखाली में उन्होंने अपना ब्रह्मचर्य साबित करने के लिए एक ही बिस्तर में नग्न हो मनु गांधी के साथ सोए। इस असाधारण प्रयोग के लिए उन्होंने राजाजी, विनोबाजी, नेहरू आदि सबको पत्र लिखे। नेहरू चुप रहे, पर विनोबाजी ने स्पष्ट कहा कि यह प्रयोग अवांछनीय है। आपकी मर्यादा के लायक नहीं है। राजाजी ने क्रोध में लिखा कि आपका तो अहित होगा ही, पर देश आपको श्रद्धा से देखता है, देश का भी अहित होगा। गांधीजी के ब्रह्मचर्य के बारे में मुझे जरा भी संदेह नहीं है। पर १९०१-१९२० में गांधीजी को टैगोर परिवार की सरला देबी चौधरानी से प्रेम हो गया था। उससे पत्र-व्यवहार हुआ। उन्होंने लिखा कि 'She is my Spiritual Wife'। लोगों के बहुत समझाने पर यह प्रेम-प्रसंग टूटा। शारीरिक संपर्क नहीं हुआ।

क्रांतिकारियों का त्याग, तपस्या गांधीजी से कहीं अधिक थी। उनको बिजली का करंट लगाते थे। नंगे कर, उलटा टाँग कोड़े लगाते थे, पर वे झुके नहीं। अरविंद के एक शिष्य को फाँसी की सजा की घोषणा होने के बाद वजन बढ़ गया। अंग्रेज जेलर लिखता है कि उसकी प्रसन्नता देख मैं दंग रह जाता था।

क्रांतिकारियों की गांधीजी ने अवहेलना की। ऐसे लोग थे, जो फाँसी की सजा सुन खुशी से नाचते थे, इन सबको गांधीजी के प्रभाव में आ हमने भुला दिया।

गांधीजी को हमने राष्ट्रपिता बनाया। दूषित बीज से उत्पन्न वृक्ष से दूषित फल ही निकलते हैं।

गांधीजी पर मेरी अत्यंत श्रद्धा रही है। १३ वर्ष की उम्र में गांधीजी को पढ़कर मैंने साबुन का उपयोग बंद कर दिया। आहार में फल-कच्ची सब्जी आदि प्रारंभ कर दी। गांधीजी का ही प्रभाव है कि ९१ वर्ष की आयु में भी स्वस्थ हूँ। बिना सहारे घूम सकता हूँ।

पर जो बीज गांधीजी ने बोए, उससे जो वृक्ष उत्पन्न हुए, उनके फल देश आज देख रहा है। गांधीजी पर मेरी अत्यंत श्रद्धा रही है। तेंदुलकर सारा पढ़ गया। उनके कारण भोजन में संयम करना सीखा। विनोबा के आश्रम में बीस-बीस दिन रहा। कभी-कभी मन इतना उत्साहित रहता है, कभी इतना निराश हो जाता है, इस सबका कारण विनोबा ने समझाया। गीता में उनके कारण रुचि हुई।

जयप्रकाश नारायण को बिनोवाजी के आश्रम में देखा। इमरजेंसी में इंदिराजी ने लाखों लोगों को जेल भेज दिया। बिनोवाजी इस समय एक साल के लिए मौन थे। पर उन्होंने इमरजेंसी की निंदा न कर इसे भारत का अनुशासन पर्व कहकर देश का क्रोध सहा। इंदिराजी को गलत सूचना मिली। उन्होंने इमरजेंसी हटाकर चुनाव करवाया। वे हार गईं। जयप्रकाशजी के नेतृत्व में नई सरकार बनी। बिनोवाजी ने जो कहा, वह सत्य साबित हुआ। मोरारजी, चरण सिंह के झगड़े देखकर जयप्रकाश निराश हुए। वापस इंदिराजी प्रधानमंत्री बनीं। भिंडरनवाला का उपयोग इंदिराजी ने सिख समस्या हल करने के लिए किया था। उसी ने इंदिराजी की हत्या कर दी।

स्वामी विवेकानंद ने १८९७ में अमेरिका में एक भाषण में कहा था कि पच्चास साल में भारत आजाद अवश्य हो जाएगा, पर चीन से हमें सावधान रहना चाहिए। नेहरू को कभी भारत की आध्यात्मिक शक्ति पर विश्वास नहीं रहा। उन्होंने तिब्बत की हत्या करवा दी। सत्ता पाने के लिए विभाजन करवा लिया। जो गांधीजी कहते थे कि विभाजन मेरे जीवनकाल में नहीं होगा, वे भी नेहरू, पटेल के मोह में विभाजन मान गए।

आज एशिया में भारत की स्थिति दयनीय है। चीन छा गया है। छोटे-छोटे देश जापान, दक्षिण कोरिया, सिंगापुर, ताइवान इतने समृद्ध हो गए हैं। भारत का भविष्य अनिश्चित लगता है। कोई लेनिन, भावतुंग या विवेकानंद आए तो ही आशा जगती है।

६३ फ्रेंड्स कॉलोनी ईस्ट,
नई दिल्ली
फोन : ०१२०४३९०३००

शेर को सवासेर

लघुकथा

• श्यामसुंदर गर्ग

एक बार एक शेर जंगल में सँकरी जगह से गुजर रहा था। उसने सामने से एक हाथी को अपनी ओर आते हुए देखा तो गरजकर कहा, ''मेरे रास्ते से हट जाओ।''

''मैं हट जाऊँ?'' हाथी ने जवाब दिया, ''मैं तुमसे बहुत बड़ा हूँ और नियम के अनुसार मुझे यहाँ से पहले निकलना चाहिए। तुम्हारे लिए मेरे रास्ते से हटना आसान है।''

शेर ने क्रोधित होकर कहा, ''मैं इस जंगल का राजा हूँ और तुम्हें अपने राजा को आता देख उसके लिए रास्ता छोड़ देना चाहिए।'' शेर ने गुस्से में आदेश दिया, ''मैं तुम्हें रास्ते से हटने का हुक्म देता हूँ।''

यह सुनकर हाथी ने अपनी सूँड़ से शेर को उठा लिया और उसे कई बार जमीन पर पटका। शेर कराहता रहा और हाथी अपने रास्ते चला गया। शेर कुछ देर बाद खड़ा हुआ और चिल्लाकर बोला, ''इसमें इतना नाराज होने की क्या जरूरत थी? ऐसी कौन सी बात थी?''

पो.बॉ. नं ६०
भीलवाड़ा-३११००१ (राजस्थान)

कहानी

काँटोंवाला बरगद

● श्याम सुंदर चौधरी

अरे, सामने चौराहे पर द्वारिकाजी ही तो खड़े हैं। सिर पर चंद बालों का बिखरा समूह। वही झुकी कमर। हाथ में वही चिर-परिचित बैग। और दिनों की तरह शायद कोई आलोचना की पुस्तक, एक डायरी, कुछ अन्य आवश्यक कागजात और एक बालपेन। अपने रूट की बस की प्रतीक्षा में लग रहे थे।

मानवेंद्र बुक स्टॉल में रांगेय राघव का उपन्यास 'आग की प्यास' उलट-पलटकर देख रहा था कि एकाएक उसकी दृष्टि सामने चौराहे पर खड़े द्वारिकाजी पर टिक गई।

''आपकी तारीफ··· ?'' उस दिन पहली बार द्वारिकाजी ने उसकी बाबत शंकर से पूछा था। वैसे शंकर पहले भी कई बार उनका जिक्र कर चुका था, शायद इसीलिए मानवेंद्र के भीतर द्वारिकाजी के सान्निध्य की इच्छा बढ़ चली थी। पहली बार द्वारिकाजी को शंकर के घर पर देखा था, सिर्फ उनकी बातें सुनता रहा। और भी एक-दो लेखक मित्र बैठे थे। सबके लिए ही इस वरिष्ठ व्यक्तित्व की बातों की गहनता में डूबना किसी उपलब्धि से कम नहीं था। एक-आध बार और इसी तरह उनसे मुलाकात हुई थी किंतु मानवेंद्र ने कभी उनसे सीधे-सीधे बात नहीं की। सिर्फ द्वारिकाजी के निकट जाने के लिए उनसे बात करना उसे बड़ा अटपटा लगता। लेकिन जब उस दिन उसके बारे में द्वारिकाजी ने जानना चाहा तो फिर किसी तरह की झिझक की गुंजाइश ही नहीं रह गई।

काफी अच्छा लगा था उस दिन उनके पुराने अनुभवों को सुनकर। आज से तीस-पैंतीस वर्ष पहले पुराने तमाम रचनाकारों के साथ उनका किस प्रकार उठना-बैठना था। उनके प्रति लोगों के मन में कितना अपनापन था आदि-आदि। उन दिनों लोग उनके लेखन का लोहा मानते थे।

दूसरी ओर शंकर ने बताया था, 'द्वारिकाजी में एक बहुत बड़ी गड़बड़ी है, जो भी लिखेंगे, इस आधार पर कि जॉर्ज स्टाइनर ने कब क्या कहा था या प्रोफेसर रॉबिनसन ने किस परंपरा को जमीन दी।' फिर किंचित् तनावपूर्ण मुद्रा में बोलता है, ''अरे भाई, वो जो कह गए···कह गए, तब और अब के जीवन जीने के ढंग में, सोच में मनुष्य के संस्कारों में बहुत बदलाव आ गया है। आपके पास जब कलम की शक्ति है तो अपने विचारों को क्यों नहीं देते ?''

मानवेंद्र स्वरूप से कहानीकार ही था किंतु शंकर द्वारा इस बाबत परिचय कराने के बावजदू वह उसको एक आलोचक के अलावा और कुछ समझना ही नहीं चाहते थे, क्योंकि वो किसी पत्रिका में मानवेंद्र का लिखा कोई आलोचनात्मक लेख पढ़ चुके थे। शायद यही वजह थी कि जब किसी से द्वारिकाजी उसका परिचय कराते, एक आलोचक के रूप में ही कराते।

सुपरिचित लखेक। अब तक सात कहानी-संग्रह, छह अनूदित पुस्तकें और एक पुस्तक सिनेमा पर, कुल १४ पुस्तकें प्रकाशित। बँगला में भी एक कहानी-संग्रह प्रकाशित। 'व्यापक' साहित्यिक पत्रिका के दो अंकों का प्रकाशन-संपादन। 'सुरभि साहित्य संस्थान', खंडवा (म.प्र.) द्वारा सम्मानित।

उस गोष्ठी में जब कहानी के ऊपर बोलने की उसकी बारी आई तो द्वारिकाजी ने बड़ी गर्मजोशी के साथ उसे एक बेहतरीन आलोचक बताते हुए परिचय कराया। मानवेंद्र के लिए वहाँ बैठना असहज लग रहा था। कितना क्या परिचय था यह। आलोचना में उसका कोई दखल नहीं था और न ही कोई दिलचस्पी। कभी किसी पत्रिका में कोई लेख छप आने के कारण उसके कहानीकार होने के सत्य को नकार दिया जाए, यह कैसे सहा जाए?

मानवेंद्र को किसी साजिश की दुर्गंध आने लगी द्वारिकाजी की इस हरकत के पीछे। द्वारिकाजी जानते थे, वे इस शहर के वरिष्ठतम आलोचक हैं। अरे, तमाम रचनाकारों के ऊपर उनकी वरिष्ठता का, उनकी विद्वत्ता का, उनकी लेखनी का आतंक छाया हुआ है। तमाम गोष्ठियों की अध्यक्षता के लिए उन्हें ही आमंत्रित किया जाता है। अब ऐसे में वह किसी रचनाकार के ऊपर जैसी मुहर लगा दें, वैसी ही उस रचनाकार की पहचान बन सकती है। यदि रचनाकार उस 'लेबिल' से अपने को बचाना चाहता है तो द्वारिकाजी की सेवा करेगा, उनकी रखैल बनकर उनको रिझाता रहेगा, वरना लिखता रहे अमर रचना, घर के किसी कोने में बैठकर और गुमनामी का अभिशाप झेलता रहे अपने अंतिम दिनों तक।

और उस दिन की गोष्ठी के बाद शंकर ने बताया, ''इस शख्स के भीतर जो इस तरह की धूर्ततावाली बात है, इसी के कारण इनको लोग व्यक्तिगत रूप से पसंद नहीं करते हैं। जहाँ जिससे मतलब होगा, उसकी लंबी-चौड़ी प्रशंसा करेंगे, ताकि वह उनके जाल में फँस जाए और अगर ऐसे नहीं फँसता है तो किसी तरह अप्रत्यक्ष ब्लैकमेलिंग शुरू कर देंगे।''

अनेक बार उन्होंने शंकर का शोषण करने की भी कोशिश की। कई बार शंकर अपने को बचाने में सफल रहा, लेकिन एक-दो बार द्वारिकाजी की धूर्तता का शिकार हो ही गया।

एक और रचनाकार रामानुज उस दिन उनकी मतलबपरस्ती वाली बात बताने लगे। अपने डिपार्टमेंट के किसी चपरासी से द्वारिकाजी ने पाँच सौ रुपए उधार लिये, अगले महीने की तनख्वाह पर लौटा देने का

वादा करके। लेकिन देखते-देखते छह महीने बीत गए और वे पाँच सौ रुपए चपरासी उनसे कई बार स्मरण कराने के बाद भी नहीं ले सका तो एक दिन उनके ऊपर झुँझला पड़े। फिर भी द्वारिकाजी ने उसकी बातों को नोटिस नहीं लिया तो चपरासी ने खीजकर कहा, ''बड़े बदतमीज हो बुढ़ऊ···तुम जैसे को तो गोली मार देनी चाहिए।''

उसका इतना कहना था कि ऑफिस में तमाम कर्मचारियों के सामने सीना आगे कर अकड़ते हुए द्वारिकाजी बोले, ''लो मार लो···चला दो गोली, अगर नहीं चला सकते तो जाओ यहाँ से, कोई पैसा नहीं मिलेगा।'' फिर रामानुज अपनी बात खत्म करते हुए बोले, ''और आज इस घटना के दो वर्ष बीत गए, लेकिन चपरासी को उसके पैसे नहीं दे सके द्वारिकाजी।'' बड़े आलोचक, बड़े साहित्यकार द्वारिकाजी की ऐसी बहुत सारी बाते हैं तो यत्र-तत्र मशहूर हैं।

एक बहुत बड़े साहित्यकार की मृत्यु के पश्चात् उनकी पत्नी ने एक चर्चित साहित्यिक पत्रिका के संपादक से बात की कि वो उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर कोई अंक प्रकाशित कर दें। संपादक महोदय ने उनकी भावनाओं को समझते हुए हाँ तो कर दी, किंतु इस काम के लिए उनसे तीस हजार रुपए देने को कहा। पत्नी तो समर्पण भाव से पति के साहित्य का पुनर्मूल्यांकन करवाना चाह रही थीं, सो उन्होंने तीस हजार रुपए दे दिए।

पत्रिका का वह विशेषांक काफी चर्चित हुआ था। लेकिन उस दिवंगत साहित्यकार की पत्नी ने सबसे बड़ी भूल की द्वारिकाजी को यह बताकर कि इस काम को अंजाम देने में उन्हें तीस हजार का सहयोग देना पड़ा था। चंद महीने के बाद पत्रिका में द्वारिकाजी ने इस बात को अपने एक लेख के माध्यम से प्रचारित किया। दिवंगत साहित्यकार की पत्नी ने बाद में द्वारिकाजी से सारे संबंध तोड़ लिये, जबकि वह उनके पति के अच्छे मित्रों में से थे। वह उन्हें अपने पति का ही नहीं, अपने ही परिवार का सच्चा हितैषी समझती रहीं, किंतु द्वारिकाजी स्वयं को चर्चा का विषय बनाने के लिए ऐसा कर सकते हैं, इसकी शायद उन्होंने कल्पना ही नहीं की थी।

शहर में इस बात की चर्चा चलने लगी कि द्वारिकाजी एक पत्रिका निकाल रहे हैं। अब जब द्वारिकाजी की एक पत्रिका निकल रही है तो चर्चा क्यों न हो। खैर साहब, पत्रिका के लिए सामग्री एकत्र की जाने लगी। शंकर को एक कहानी और मानवेंद्र को कथा-साहित्य से संबंधित एक लेख देने को कहा। उस दिन जब मानवेंद्र अपना लेख तैयार करके द्वारिकाजी के ऑफिस ले गया तो तुरंत ही द्वारिकाजी ने उसके सामने ही लेख को देखा। दो-चार जगह उचित संशोधन किया और अपने बैग में रखते हुए बोले, ''लेख तो अच्छा बन पड़ा है।''

''पत्रिका कब तक आ जाएगी?''

''बस अगले दो-तीन महीने में।''

मानवेंद्र ने जब यह सबकुछ शंकर को बताया तो वह हँसते हुए बोला, ''द्वारिकाजी के तीन महीने भी बस कमाल के होते हैं।''

और फिर वह जो कुछ कहता गया, सुनकर मानवेंद्र के सामने कुछ और नई बातें आईं। कुछ एक वर्ष पहले भी द्वारिकाजी ने पत्रिका निकालने की योजना बनाई थी। कई हजार के विज्ञापन भी उन्होंने अपने संपर्कों के बल पर बटोर लिए थे। किंतु पत्रिका नहीं निकल पाई। जिन लोगों की रचनाएँ इसमें फँसी हुई थीं, वह और स्थानीय साहित्यिक, सभी धीरे-धीरे पत्रिका को भुला देने पर मजबूर हो गए।

इस बार भी लोगों के बीच उनकी पत्रिका को लेकर वही अविश्वास हो रहा था। रामानुजजी ने उस दिन अपने कार्यालय में ही मानवेंद्र से कहा था, ''द्वारिकाजी जिस तरह लोगों को इस्तेमाल करने की कोशिश करते हैं या किसी भी वक्त अपनी धूर्तता और स्वार्थपरता को नहीं छोड़ पाते हैं, यह सब जानते हुए भी हम साहित्यिक उनका लिहाज करते हैं तो इसलिए कि वे हम सबकी तुलना में वरिष्ठ हैं और दिल के मरीज हैं। वरना वे जो कुछ लिखते हैं, उसमें कितना मौलिक होता है, यह तो किसी से भी छिपा नहीं है।''

उस रोज शंकर के घर पर जब द्वारिकाजी को पता चला कि मानवेंद्र पिछले दो-चार वर्षों से कोई कहानी प्रधान पत्रिका निकाल रहा है तथा उसका एक नया कहानी-संग्रह भी हाल ही में प्रकाशित हुआ है तो उन्होंने संग्रह और पत्रिका का लेटेस्ट अंक देखना चाहा। मानवेंद्र भी अपने सरल स्वभाव के चलते दोनों 'श्रद्धेय द्वारिकाजी को' लिखकर भेंट कर आया।

और फिर धीरे-धीरे द्वारिकाजी के साथ मानवेंद्र की निकटता बढ़ने लगी। रामानुज और शंकर उसे राय देते कि पैसे के लेन-देन को लेकर कभी भी द्वारिकाजी के जाल में न फँसे, वरना परेशान होना पड़ेगा। मानवेंद्र भी सुनी-सुनाई बातों पर बहुत अधिक ध्यान नहीं देता, इसीलिए रामानुज और शंकर की बातों को भी हलके से लेता रहा।

जब कभी रेस्तराँ में चाय-नाश्ता करना हो तो हमेशा मानवेंद्र को ही बिल चुकाना पड़ा। फिर भी मानवेंद्र इसे उनकी कोई मजबूरी समझता। घर आने-जाने से इतना तो जान ही गया था कि तीन या चार बच्चों के पिता हैं द्वारिकाजी। शायद संभव नहीं हो पाता है इधर-उधर खर्च करना। मानवेंद्र अपने परिवार अपनी एकमात्र संतान की देखभाल भी कोई बहुत अच्छे ढंग से नहीं कर पाता है, जबकि द्वारिकाजी एक परिवार के मुखिया हैं। मानवेंद्र की तरह द्वारिका जो भी हिंदी के साथ-साथ अंग्रेजी पुस्तकें समान रूप से पढ़ते थे। एक दिन मानवेंद्र ने जॉन क्लीलैंड की 'फैन्नी हिल' खरीदी और जब अगले दिन द्वारिकाजी से इस संबंध में जिक्र छेड़ा तो उन्होंने छूटते ही कहा, ''बहुत कंट्रोवर्सियल किताब रही है अपने समय की।''

सच तो यह है कि द्वारिकाजी का अभी तक इस किताब को पढ़ने का कोई संयोग ही नहीं बन पाया था, तपाक से बोले, ''चलिए, किसी दिन हमें भी खरीदवा दीजिए।'' और एक दिन एक कथा-गोष्ठी से लौटते वक्त उस परिचित दुकान के पास आते ही मानवेंद्र को द्वारिकाजी की बात याद आ गई। उसने द्वारिकाजी से इस बारे में कहा, ''यही दुकान

है द्वारिकाजी, 'फैन्नी हिल' लेना हो तो बताइए।''

''ले तो लूँ, लेकिन अभी पैसे नहीं हैं।''

''तो क्या हुआ? आज मैं ले लेता हूँ। दुकानदार मेरा अच्छा मित्र है। आप सप्ताह-दस दिन बाद ही पैसे दे दीजिएगा।''

और उसने वह पुस्तक उन्हें दिलवा दी। इसके बाद वह पूर्व की भाँति द्वारिकाजी के घर जाता रहा, उनसे मिलता रहा। तमाम साहित्यिक-गैर साहित्यिक बातों के बीच मानवेंद्र प्रतीक्षा में रहता कि द्वारिकाजी पुस्तक का मूल्य दे दें, लेकिन द्वारिकाजी ऐसा कोई प्रसंग ही नहीं आने देते। उलटे उस दिन जब तीन-चार किताबें अपने सामने फैलाकर कोई लेख तैयार कर रहे थे, मानवेंद्र से पूछ बैठे, ''आप जेरॉक्स कहाँ से करवाते हैं?''

''मेरे पड़ोस में एक सज्जन हैं। अपने डिपार्टमेंट से कर लाते हैं। काफी खूबसूरत काम करते हैं। अब यह मशीन की खूबी है या कोई और वजह, पता नहीं लेकिन टाइप हो या जेरॉक्स, मार्केट में अच्छी कीमत लेकर भी कोई सही काम नहीं करता है, लेकिन मैं उसे प्रति कॉपी पचास पैसे दे देता हूँ, सुंदर सा जेरॉक्स मिल जाता है।''

''ठीक है, फिर मेरी यह सामग्री जेरॉक्स करा दीजिए।'' कहकर द्वारिकाजी ने तीस पेज का एक लेख उसके आगे कर दिया, ''दो कॉपियाँ चाहिए। तीस रुपए लगेंगे न?''

किंतु संकोचवश मानवेंद्र उनसे उस वक्त तीस रुपए नहीं माँग सका। और जिस दिन जेरॉक्स की दो प्रतियाँ द्वारिकाजी को दीं, उनके मुँह से सिर्फ इतना ही निकला, ''भई वाह! खूब सुंदर लग रहा है।''

काफी देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। मानवेंद्र उनके घर से निकल भी पड़ा, लेकिन 'फैन्नी हिल' के सौ रुपए की तरह वे तीस रुपए भी उसे नहीं मिल सके। खिन्नतावश मानवेंद्र लगभग दो-ढाई महीने तक द्वारिकाजी से मिलने का मन नहीं बना सका। इस बीच उसने स्वयं ही जेरॉक्स और पुस्तक का बिल चुका दिया। द्वारिकाजी से पैसे मिलने की प्रतीक्षा में वह दुकानदार या फिर उस जेरॉक्स वाले मित्र को क्यों परेशान करे। अकस्मात् शाम के वक्त जब वह शंकर के घर जा रहा था तो रास्ते में द्वारिकाजी मिल ही गए।

''और भई, कहाँ चल दिए?''

''बस यहीं शंकर के यहाँ।''

''चले जाना, भई···हमारे यहाँ भी तो आते रहा कीजिए, चलिए भी···।'' अपने भीतर के सम्मान और श्रद्धा जैसे भावों के हाथों बँधा मानवेंद्र उनके घर की ओर चल पड़ा।

चाय पीते वक्त मानवेंद्र ने द्वारिकाजी को याद दिलाने की गर्ज से कहा, ''आप फैन्नी हिल पढ़ चुके हैं या अभी शुरू ही नहीं की?''

''वो तो बहुत पहले ही खत्म कर चुका था।'' फिर अपनी अगली बात को जोड़ते हुए बोले, ''अरे भई, आप शाम के वक्त आ जाया कीजिए, आपके साथ जाकर जरा मैं उस दुकान का कलेक्शन देखना चाहता हूँ।''

''वह तो ठीक है, लेकिन अभी चार-पाँच महीने बाद भी उसका 'फैन्नी हिल' का पैसा नहीं दिया गया, इसलिए···।''

''वे मिल जाएँगे, कौन-सी बहुत बड़ी रकम है।'' कहकर फिर द्वारिकाजी उस प्रसंग को टाल ही गए। और उन रचनाकारों के पुल बाँधने लगे, जिन्होंने उनकी पत्रिका के लिए आर्थिक सहयोग किया था। संभवत: वे यही कहना चाहते थे, ''मानवेंद्रजी, तुम तो सौ-दो सौ के लिए परेशान हो गए, जबकि लोग हजारों का सहयोग हँसते-हँसते दे जाते हैं।''

उन रचनाकारों की प्रशंसा जैसे मानवेंद्र के शरीर में काँटे-सी चुभने लगी। मानवेंद्र अच्छी तरह देख चुका है उन लोगों की रचनाधर्मिता, ऐसी ही चापलूसी के कारण ये लोग आज अपने कमजोर लेखन के बावजूद सभाओं, गोष्ठियों के केंद्र में बने रहते हैं।

सारे घटनाक्रम को मानवेंद्र अब तक शंकर, रामानुज के अलावा अपने एक-दो और हितैषियों को बताए बिना नहीं रह सका। ये बातें शायद द्वारिकाजी के कानों में भी पहुँच गई थीं।

एक दिन पता चला, द्वारिकाजी की पत्रिका छप चुकी है। शंकर से मालूम पड़ा, उसका लेख उसमें नहीं है।

मानवेंद्र सन्न सा खड़ा रह गया। इस कदर विश्वासघात। क्या वरिष्ठ ऐसे ही होते हैं? लेख छापने के लिए तो वे कतई बाध्य नहीं थे। अगर नहीं छापना था तो बता तो सकते थे। एकाएक ऐसी हरकत करके क्या वे बताना चाहते हैं। ''मानवेंद्र तुम अभी मुझसे बहुत जूनियर हो, और मेरे लिए जरूरी नहीं कि किसी ऐसे की रचनाओं का ध्यान रखूँ, जो मेरे ऊपर सौ-दो सौ रुपए भी खुले दिल से खर्च नहीं कर सकता।''

बीच-बीच में इधर-उधर पत्रिका की दो-चार प्रतियों के साथ द्वारिकाजी टकरा जाते, लेकिन सौजन्यता के नाते भी एक प्रति देना उन्होंने जरूरी नहीं समझा। उसे यहाँ तक सुनाई पड़ा कि द्वारिकाजी खास लोगों को ही प्रतियाँ दे रहे हैं या फिर उनको, जिनकी रचनाएँ उसमें छपी हैं।

वह आम हो गया चूँकि उसने अपनी पत्रिका का अंक देते वक्त उसकी कीमत नहीं माँगी। अपना संग्रह श्रद्धा के साथ उन्हें भेंट करने की आम हरकत कर बैठा। उनकी बौनी मानसिकता का चिट्ठा लोगों से मालमू पड़ने के बावजूद उसने उनके प्रति अपने भीतर के श्रद्धाभाव को बचाकर रखने की हर पल कोशिश की। 'फैन्नी हिल' और 'जेरॉक्स' का पेमेंट खुद किया। उन्हें खुश करने के लिए हजार-दो हजार का आर्थिक सहयोग नहीं दे सका। अपनी इन भूलों के कारण वह आज आम हो गया। अगर वह उनकी पत्रिका देखना-पढ़ना चाहता है तो उसे भी आम लोगों की कतार में खड़े होकर तीस रुपए में पत्रिका खरीदनी पड़ेगी।

''अरे···यह क्या?'' एकाएक चौराहे पर खड़े-खड़े द्वारिकाजी गिर पड़े। लोग उन्हें उठाने लगे। भीड़ बढ़ने लगी। शायद सिवियर हार्ट अटैक हुआ है। मानवेंद्र किताब वहीं रखकर बाहर की ओर लपका, लेकिन कुछ दूर चलने के बाद ही उसके कदम एकाएक जड़ हो गए। पता नहीं वह कौन सी शक्ति थी, जो उसे द्वारिकाजी के पास जाने से रोक रही थी।

एफ-१७ शांति नगर, कैंट
कानपुर-२०८००४
दूरभाष : ९६५१९२४१००

राम झरोखे बैठ के

अपने-अपने अवसाद

● गोपाल चतुर्वेदी

आतंक, अवसर, अवसाद का कोई भरोसा नहीं है कि कब किस पर आ टपके। आतंकी हादसे की सफलता की अनिवार्यता है कि किसी को गुमान तक न हो, जब विनाश की गन चले। कौन कह सकता है कि कब किसी का सबसे बड़ा शत्रु बड़ा बाबू टैं बोलकर उसे प्रमोशन से कृतार्थ कर जाए? कभी-कभी हमें भ्रम होता है कि संसार का सबसे महान् शोधकर्ता समय है। आदमी व्यर्थ ही नए-नए आविष्कार करने का मुगालता पालता है। यदि कुछ नई शोध की वाकई कूबत होती तो इतने दिनों तक प्रतीक्षा क्यों करता? वह तो समय ने सुझाया न्यूटन, आर्कमिडीज या आइंस्टाइन को नई खोज का और नाम उनका हो गया।

गन पाउडर जैसी विनाशक वस्तु की ईजाद सातवीं शताब्दी में चीन में हुई थी। कोई सोचे कि यदि ऐसा न होता तो क्या युद्ध की कल्पना तक इतनी विध्वसंक और भयावह कभी होती? चीन की विस्तारक और आक्रामक प्रवृत्ति के पीछे राष्ट्रीय अवचेतन में कहीं-न-कहीं गन पाउडर की खोज है, वरना कैसे संभव था कि नेहरू पंचशील का राग आलापते रहे और हाँ में हाँ मिलाकर चीन पूर्वोत्तर की सीमा में उन्हीं की पीठ में छुरा घोंप दे! इसीलिए आधुनिक चाणक्यों की मान्यता है कि देशों में दोस्ती-दुश्मनी न होकर सिर्फ विभिन्न राष्ट्रीय हितों के स्वार्थ का टकराव है। चीन और पाकिस्तान की मित्रता इस तथ्य का एक आदर्श उदाहरण है। चीन का लक्ष्य भारत से दोस्ती का दिखावा मात्र है, जबकि पाकिस्तान को वह उकसाता रहता है, आतंक के विषधर पालकर भारत को लगातार डंक मारने को। प्रगति की प्रतियोगिता में भारत को पीछे रखने की इससे खतरनाक रणनीति क्या हो सकती है? 'तरक्की के कसाई और कहने को भाई-भाई', शायद इसी दृष्टिकोण को परिभाषित करता है। यों इसका साक्ष्य भी उपलब्ध है। तभी तो कहावत है कि 'पढ़े-लिखे को फारसी क्या और हाथ कंगन को आरसी क्या।'

जहाँ तक अवसाद का प्रश्न है, तो इस विषय में जब डॉक्टरों का ही ज्ञान आधा-अधूरा है तो सामान्य इनसानों का अज्ञान क्षम्य है। हमारे मोहल्ले के एक सज्जन हैं। कभी-कभी वे गर्मजोशी में मिलते हैं, तो कभी अपने-अपने अजनबी से भी बदतर तरीके से। देखकर भी न देखना कोई उनसे सीखे। चौराहे के पानवाले को यही शिकायत है, ''कभी-कभी खूब चहकते-बोलते हैं, घर का हाल-चाल पूछते-बताते हैं, कभी-कभी सिर्फ पान उठाकर चलते बनते हैं। अजीब सनकी किस्म के इनसान हैं।'' पानवाले को कोई कैसे समझाए कि इस व्यवहार में उनकी गलती नहीं है, वह एक रोग से ग्रसित हैं, जिसे अवसाद का नाम दिया जाता है। उन्हें इस रोग की खुद तक खबर नहीं है तो दूसरों को कैसे हो? नहीं तो यदि जानते तो शर्तिया डॉक्टर के पास सिधारते।

सरकारी सेवा में अधिकतर इलाज फ्री इंडिया है। मुफ्तखोरी, चुगलखोरी और हरामखोरी के समान, रोग का सरकारी निदान, सरकारी सेवकों का राष्ट्रीय मिशन है। वह तो सरकारी खजाने पर खैर हुई कि उन्हें आभास तक न हुआ अपने मर्ज का, वरना अवसाद की दवा वह खुद भी खाते और पत्नी, बच्चों को भी खिलाते। कौन कहे यह छूत की बीमारी हो? डॉक्टर के इनकार करने से क्या फर्क पड़ता है? वह तो दवा की खरीद में कम-खर्ची की शासकीय नीति के अनुपालन को कटिबद्ध हैं। वह क्यों रुचि ले? न उसका कट है, न कमीशन। सरकार में कुछ बजारू-विशेषज्ञ भी कार्यरत हैं। उन्हें दवा से लेकर नोट-शीट तक बेचने से परहेज नहीं है। उलटे वह 'एक्सपर्ट' इसीलिए कहलाते हैं, क्योंकि वह सहयोगियों से भी एकत्र कर दवाओं का अच्छा रेट दिलवाते हैं। ऐसी रियायत दुकानदार क्यों न दें? वे जानते हैं कि दवाओं में सौ फीसदी से अधिक मुनाफा है। यह एक त्रासद तथ्य है कि सरकार को बेचने में उसी के कर्मचारी ही सक्रिय हैं। नोट-शीट, गुप्त जानकारी, बॉलपेन से लेकर दवाएँ तक बाजार में बिकती हैं। कुछ तो कहते हैं कि यदि सही रेट मिले तो सरकारी कर्मचारी खुद ही, दूसरे देशों की खुफिया एजेंसियों के हाथ स्वेच्छा से बिकाऊ हैं। खरीद जनहित के प्रस्ताव, टैंडर की स्वीकृति और भुगतान, खुद के कर्मियों आदि का बकाया फिर 'फ्री' या 'गुण-दोष' के आधार पर कैसे हो? कोई जन्मजात आशावादी है तो बैठा रहे आस लगाए। वह भले अवसाद में डूबे, पर सरकार में होना-जाना कुछ नहीं है।

हमें लगता है कि शीरी-फरहाद और लैला-मजनू जैसे प्रेम के धुरंधर जरूर अवसाद के शिकार रहे होंगे। नहीं तो मजनू मियाँ क्यों गिट्टी-पत्थर से पिटने तक पर उफ करे बिना, केवल चुपचाप पिटते रहते? आज कोई ऐसा दुस्साहस करके दिखाए! पहले तो पुलिस भीड़ को नहीं छोड़ेगी और यदि वरदी से लेन-देन कर कुछ प्रमुख पीटनेवाले छूट भी गए तो आधुनिक आशिक कट्टे-चाकू से अपने साथियों के साथ

ऐसों को लहूलुहान करने से बाज नहीं आएगा। यों आज की लैलाएँ भी कोई कम समझदार नहीं हैं। वे भी प्रेम में तभी अंधी होती हैं, जब मजनू के पास पारिवारिक माल-पानी का प्रबंध है या फिर ढंग की नौकरी है। नहीं तो उन्हें विश्वास है कि इश्क के कीटाणु सिर्फ किसी मानसिक मर्ज के द्योतक हैं। यह भी संभव है कि ये अवसाद के प्रारंभिक लक्षण हैं, विवाह के बाद क्या ठिकाना कि मजनू पूरी तरह अवसाद-ग्रस्त न हो जाए और विक्षिप्तों जैसी हरकत करने लगे। कभी चुप रहे, कभी चीखे और कभी मारपीट पर आमादा हो।

भारत में विवाह बहुधा दो अनजान व्यक्तियों के साथ जीवन बिताने का अभियान है। इसकी कामयाबी घरेलू सह-अस्तित्व का प्रयास है, प्रयत्न है, कोशिश है। इसके दोनों के अलग-अलग व्यक्तित्व यदि स्वयं को नई चुनौतियों के अनुरूप नहीं ढाल पाए तो जीवन और समाज में उनकी सफलता संदेहास्पद है। विवाह के दोनों प्रमुख पात्रों को समझौते की कला में सिद्धहस्त होना आवश्यक है, वरना जीवन एक सतत संघर्ष का कुरुक्षेत्र बन जाता है। युद्धरत जीवन से बचने का इकलौता रास्ता शांतिपूर्ण पारंपरिक समझौता है, जिसे स्वीकार करना दोनों पक्षों की विवश दरकार है। कौन जाने, घरेलू स्तर पर शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की सफलता से प्रेरित होकर हमने इसे देश की विदेश नीति का प्रमुख आधार बना लिया है? यों 'विवाह और विदेश नीति' के संबंधों पर आधिकारिक टिप्पणी कोई इस विषय का विद्वान् ही करने में समर्थ होगा, ऐसी अपनी निजी मान्यता है।

हमारा विश्वास है कि लड़के-लड़की के परिवारों द्वारा तय की गई शादियाँ प्रेम-विवाहों की तुलना में अधिक सफल हैं। मुमकिन है कि इसका कारण बिना किसी अपेक्षा के शादी के बंधन में बँधना है। वहीं प्रेम विवाह एक आदर्श सुखी जीवन बिताने की अपेक्षा से शुरू होता है। अनुभव की सीख है कि जिंदगी के तराजू में दु:ख का पलड़ा हमेशा भारी रहा है, और रहता आया है, नहीं तो सुख की अनुभूति कैसे हो? अपना विनम्र सुझाव है कि हिंदी में हर संभव-असंभव विषय पर पीएच.डी. हो चुकी है तो हम देश की विदेश-नीति को क्यों बख्शें? कोई आचार्य अपने शिष्य से क्यों नहीं 'भारत के पारंपरिक विवाह और विदेश नीति' के विभिन्न आयामों पर शोध करवा सकता है? शैक्षणिक क्षेत्र में यह एक प्रथम और सर्वथा मौलिक शोध होगा। क्या पता, इसमें शोधार्थी कोई-न-कोई ग्रांट हथियाकर यूरोप या अमेरिका की सैर भी करने में समर्थ हो। रोजगार की बात करें तो विदेश मंत्रालय में शोध के दौरान समाज को उसकी वहाँ किसी पद पर नियुक्ति संभावित हो?

अवसाद का अन्य कारण वर्तमान की सामाजिक संरचना है। देखने में आया है कि कुछ स्वयं ही दूसरों की तुलना में जन्मजात गौरव से भरे होते हैं। यह समझने की बुद्धि उनमें है कि जीवन की वास्तविकता में वह किसी से भी बड़े न होकर, नौकरी आदि के क्षेत्र में दूसरों से कई गुने छोटे हैं। फिर भी, वह अपने जन्म की श्रेष्ठता में मगन हैं। वह यह भूलते हैं कि किसी का भी, कोई भी परिवार में जन्म होना महज एक दुर्घटना है। इस पर क्या इतराना? आत्मा की अवधारणा तो और जोखिम भरी है। काया की केंचुल उतरना अनिवार्य है। पुनर्जन्म छिपकली के खोल में भी मुमकिन है और छछूँदर की शक्ल में भी।

मनोरोग के एक विशेषज्ञ हमें बताते हैं कि वैवाहिक जीवन की असफलता अवसाद का एक प्रमुख कारण है। इस दशा में पत्नी को कभी-कभी संदेह होता है कि उसका पति घर में जबरन घुस आया सड़क का भौंकता हुआ कुत्ता है, या फिर कोई जंगल का आक्रामक भेड़िया। जब उसकी प्रजाति ही वन्य हिंसक जीवों की है तो उसका इनसान होना कोरी गप है? यह सिर्फ मन का भ्रम है, धोखा है, छल है। पति की भी कभी यही मनोदशा मुमकिन है, जब उसके मन में भी ऐसे ही ऊलजुलूल खयाल आएँ। इतना ही नहीं, वह उन पर यकीन भी कर ले। इस हद तक कि यह काल्पनिक जीव उसे सच और वास्तविक लगने लगे।

मनोरोग की इस अवस्था में कुछ भी संभव है। पति या पत्नी का एक-दूसरे से खौफ खाना, घर से भाग निकलना या फिर आत्मरक्षा के लिए खुद को कमरे में बंद कर सुरक्षित समझना, अथवा पुलिस को फोन कर सुरक्षा की गुहार लगाना। कुछ भुक्तभोगी तो यहाँ तक कहते हैं कि शादी स्वयं ही अपनी जिंदगी बिताने की स्वतंत्रता में खलल है। कोई कब तक दूसरे की सधी जीवन-शैली के आगे घुटने टेके? महिलाएँ भी आज आर्थिक रूप से स्वतंत्र हैं। ऐसे में पारंपरिक जीवन-मूल्य और जीने की साझी पद्धति को निभाना और भी मुश्किल है। इस प्रकार विवाह के पहले दिन से अवसाद के कारण मौजूद हैं। कामयाबी यही है कि कोई कब तक इसे टालने की जुगत में सफल है।

अवसाद का अन्य कारण वर्तमान की सामाजिक संरचना है। देखने में आया है कि कुछ स्वयं ही दूसरों की तुलना में जन्मजात गौरव से भरे होते हैं। यह समझने की बुद्धि उनमें है कि जीवन की वास्तविकता में वह किसी से भी बड़े न होकर, नौकरी आदि के क्षेत्र में दूसरों से कई गुने छोटे हैं। फिर भी, वह अपने जन्म की श्रेष्ठता में मगन हैं। वह यह भूलते हैं कि किसी का भी, कोई भी परिवार में जन्म होना महज एक दुर्घटना है। इस पर क्या इतराना? आत्मा की अवधारणा तो और जोखिम भरी है। काया की केंचुल उतरना अनिवार्य है। पुनर्जन्म छिपकली के खोल में भी मुमकिन है और छछूँदर की शक्ल में भी।

ऐसे जब असलियत की खुरदरी जमीन पर आते हैं तो निराशा में डूबते हैं। कल तक जहाँ हर गली में गुलाब थे, अब सिर्फ काँटे हैं। इनसे

कैसे निबाह करें? जन्म की श्रेष्ठता का उनका सपना केवल सपना है। उसमें सच का कोई भी अंश नहीं है। न वर्तमान में, न भविष्य में। उन्हें आभास होता है कि वह जिस नाव पर सवार हैं, उसमें छेद ही छेद हैं। सामाजिक न्याय नामक एक ड्रिलिंग मशीन है, जो रही-बची नाव में भी छेद करने में जुटी है। इन हालात में सवार और नाव का डूबना निश्चित है। विघटनकारी जातीय राजनीति से और हासिल भी क्या होना है? इस प्रकार के राजनेताओं के लिए देश देश न होकर, सिर्फ अपनी और परायी जातियों का एक झुंड है। उनकी एकमात्र हसरत दूसरी जातियों की नाव डुबोने की है। दुर्घटना को अतीत की धरोहर मानना और उसके आधार पर जनमी पीढ़ियों को प्रताड़ित करना उनके चिंतन का नतीजा है। सामाजिक न्याय उनके लिए केवल नौकरियों में आरक्षण से मुमकिन है। जितना उसका फीसद बढ़ेगा, उतना सामजिक न्याय! यों कुछ अक्ल के दुश्मन इसे सामाजिक समरसता और सौहार्द का मूल-मंत्र भी मानते हैं। सबके अपने-अपने निहित स्वार्थ हैं। परमार्थ का नाम देकर सब उससे ही संचालित हैं। मक्खी-मच्छर की भिनभिन लगन से वह तत्पर हैं, दूसरे जातीय गिरोहों की नैया डुबोने में। जब तक ऐसे गिरोह सक्रिय हैं, देश की उन्नति सिर्फ एक दिवा-स्वप्न है। जो निश्चित है, वह केवल डायबिटीज की तरह फलता-फूलता लाइलाज डिप्रेशन है। हमें खीज तब आती है जब देश के सर्वे-सर्वा नए भारत के निर्माण का दिलासा देते हैं। हमें लगता है कि पुरानी पारंपरिक किश्ती में सवार होकर जैसे कोई आधुनिक न्यूक्लियर पॉवर से संचालित जहाज से प्रतियोगिता की सोचे। अपनी सोच रखने को सब स्वतंत्र हैं, पर वास्तविकता से कुछ तो वास्ता हो!

हमें आश्चर्य है तो केवल एक है। चुनाव में सूपड़ा-साफ होने के बावजूद हमारे राजनेता क्यों हँसते-खिलखिलाते रहते हैं? क्या उनकी शारीरिक और मानसिक बनावट सामान्य इनसान से अलग है? कभी-कभी संशय होता है कि इनके कान में केवल ठकुरसुहाती का प्रवेश है। जुबान है, जो आठ-दस लोगों को देखा नहीं कि धाराप्रवाह चलने को मजबूर है। दिल की जगह कोई ऐसा यंत्र है, जो संवेदना-विहीन है, पर साँस लेने-छोड़ने के लिए पर्याप्त है। मुमकिन है कि उनका हँसना-मुसकराना हमारी ही मूर्खता दरशाता है। वोट न दिया, न सही, पर चंदा तो इतना दे ही दिया कि अगले चुनाव तक काम आ सके। इसके पहले बेटे की फैक्टरी में उसका उपयोग हो। चुनावों के खर्चे की एक-एक पाई का हिसाब बनाने को चार्टर्ड अकाउंटेंट तो है ही।

सत्तासुख न भोगने की पीड़ा है तो उसे बर्दाश्त करना ही पड़ेगा। एक बार दल सत्ता में आया था तो ठेकेदार ने आलीशान बँगला बनवा दिया था, दूसरी दफा कमर्शियल कॉम्प्लेक्स। गुजारे के लिए आय काफी से अधिक है, लाखों का तो किराया ही आता है। घर में न सेवकों की कमी है, न वाहनों की। इस बार सोचा था कि सत्ता में आए तो हैलिकॉप्टर की कंपनी बनाएँगे। अपने चुनाव का खर्चा बचेगा और दूसरों को उपयोग के लिए देकर भाड़ा अलग। एविएशन क्षेत्र के एक विशेषज्ञ से प्रारंभिक बात ही नहीं, योजना भी तैयार की कि चुनाव-परिणाम ने सब गुड़-गोबर कर दिया। जनमत के सर्वे उनको पहले ही जिता चुके थे। चुनाव-प्रचारकों ने भी उन्हें सकारात्मक प्रतिक्रिया दी थी। चुनावी नतीजों ने सब पर तुषारपात कर दिया। दरअसल, उनके कान में जनता की आवाज जा ही नहीं पाई। वहाँ प्रशंसा के अलावा हर स्वर का प्रवेश-निषेध है।

उनका मन एक नई संभावना की उधेड़-बुन में है। क्यों न जनता का धन जनता के ही कल्याण में लगाया जाए? वह खाली पड़े प्लांट पर कॉलेज का निर्माण कर सकते हैं। सुना है कि शिक्षा के क्षेत्र में भी काफी लाभप्रद कमाई है। समाज सेवा की छवि अलग है, अपनों को नौकरी देने की भी। संस्था चल निकली तो प्रवेश देकर एहसान भी मुमकिन हैं सैकड़ों पर। निरक्षर समाज भक्षक को और चाहिए ही क्या?

फिर उन्हें एविनेशन कंपनी का खयाल आता है। चुनाव के अलावा भी इसके उपयोगी प्रयोग हैं। सरकार अपनी नहीं तो क्या हुआ, कट्टर विरोधियों से भी उनके मित्रवत् रिश्ते हैं। क्यों न हों, दलों में सुविधानुसार आना-जाना लगा ही रहता है। सिद्धांत, उसूल सब वोटर को उल्लू बनाने के जुगाड़ का ढाँचा है, अंदर तो सबमें सत्ता के स्वार्थ के कलपुरजे हैं। यदि एक-दूसरे के काम न आए तो सियासत का लाभ ही क्या है? हवाई कंपनी में सबका योगदान होगा। सियासी धंधे में भी डॉक्टरों जैसा भाईचारा है। बीमार फँसे तो एक डॉक्टर खुद तो फीस आदि वसूलता ही है, दूसरे विशेषज्ञ के पास रैफर कर उसकी भी कमाई करवाता है। इसके अलावा भी दवा की दुकानें हैं, जाँच के केंद्र हैं। यहाँ हर स्थान पर 'कमीशन' नियत है। इसीलिए डॉक्टर राजनीति के समान एक परोपकारी धंधा है।

यही वजह है कि नेता भ्रष्टाचार का भले हो, अवसाद का शिकार बहुत कम होता है। यों उसमें अवसाद को भी साधने की प्रकृति-प्रदत्त प्रतिभा है। जब उसे निजी स्वार्थ के इतर कुछ महसूस ही नहीं होता है तो अवसाद उसका क्या बिगाड़ लेगा? वह 'न सावन हरे, न भादौं सूखे' की प्रकृति का है। नेताओं का भाषा-ज्ञान जैसे 'अ' से आम, आमदनी और आय तक सीमित है, इसमें अवसाद का शब्द ही नहीं है। उन्हें इसका कोई डर भी नहीं है, उलटे जाँच करनेवाले डॉक्टर को उनसे मिलकर अवसाद में डूबने का गंभीर खतरा है। इसीलिए संपर्क के बावजूद, डॉक्टर नेताओं के इलाज से कतराते हैं। पता नहीं कब, जिसकी संभावना तक नहीं थी, उन्हें उसी अवसाद का रोग लग जाए! इसे हमारे ऐसे ही जन-भक्षकों की, देश की व्यवस्था में स्थायी देन ही कहेंगे कि हर संभव प्रयास के बावजूद सरकार की ख्याति घटिया गुणवत्ता के बिकाऊ माल से बेहतर नहीं है। इन परिस्थितियों में प्रशासन से सुशासन की कल्पना किसी ऐसे निराकार की साधना है, जिसका साकार होना सर्वथा असंभव है।

९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

दो कौड़ी का न्याय

• विजय कुमार सिंह

पूस की पहाड़ सी रात। ऊपर से सर्दी ऐसी कि बंद कमरे में भी एक कंबल पर्याप्त नहीं लगता था। मुझे तो विचारों की गरमी भी प्राप्त थी, पर वे भोले-भाले बच्चे, जिनमें अक्षर भी नहीं बोए गए थे, सुबह से देर रात तक मेहनत-मजदूरी करके भी एक कंबल नहीं खरीद पाते। कंपनी के मालिक ने सबको दो-दो मोमन्ना बोरा दे दिए थे—एक बिछाने के लिए और एक ओढ़ने के लिए। प्रत्येक वर्ष कंपनी लाखों रुपए का टर्न ओवर करती है, लेकिन जिनके पसीने की बूँदों में उसका विकास निहित है, वे ही रातभर दाँत किटकिटाते हैं, एक-दूसरे की गरम साँस पीकर सर्दी से लड़ते हैं···क्या इसी भारतीय गाँव का सपना देखा था महात्मा गांधी ने? क्या इसी आजाद भारत के लिए हमने कुरबानियाँ दी थीं? क्या आज भी गरीबी भारत के लिए अभिशाप नहीं है? और क्या अँगरेजों को सिर्फ इसलिए भगाना था, क्योंकि वे परदेशी थे? ऐसे अनगिनत सवाल मेरे जेहन में कौंध रहे थे। करवटें बदल-बदलकर थक गया था। घड़ी देखी तो अभी रात के सिर्फ बारह बजकर चालीस मिनट हुए थे। मन में आता था कि तुरंत उठकर कंपनी तक जाऊँ और बच्चों को उस कैदखाने से आजाद कराकर उनके घरों तक पहुँचा दूँ; लेकिन दूसरे ही क्षण मैं अपने आपको अक्षम पाता। मन को किसी शुभ घड़ी में सब ठीक हो जाने की तसल्ली देकर सोने का प्रयास करने लगता, लेकिन मेरी आँखें तुलसी के निकट जलनेवाले दीप की भाँति जल रही होतीं। उनमें दूर-दूर तक नींद का नामो-निशान नहीं होता।

सुबह के सात बज रहे थे। देह में बेहद दर्द था। खाट से उठने की इच्छा नहीं हो रही थी। माँ ने सिरहाने बैठकर मेरी पीठ सहलाई। मैंने अँगड़ाई लेते हुए करवट बदली और झटककर उठ बैठा, ताकि माँ को लगे कि मैं सचमुच अभी ही सोकर उठा हूँ,

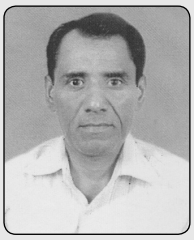

सुपरिचित लेखक। कादंबिनी, दैनिक जागरण, नवभारत टाइम्स, हिंदुस्तान राष्ट्रीय आदि पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर रचनाएँ प्रकाशित।

लेकिन जब भाभी के कमरे में जाकर आईने में देखा तो मन का तनाव चेहरे पर साफ झलक रहा था। भाभी साकेत और शीला को पाठशाला के लिए तैयार कर रही थीं। उन्होंने तुरंत ही मेरे चेहरे को पढ़ लिया, ''क्या बात है देवरजी, रात में कोई शहरवाली की याद आ रही थी क्या? बड़े थके-थके दिख रहे हो सुबह-सुबह।'' मैं चुपचाप मुसकराकर उनके कमरे से निकल गया।

माँ, बाबूजी, भैया, भाभी—सभी मुझे बेहद प्यार करते थे। मेरी इच्छा होने पर भी खेतों में काम नहीं करने देते। शायद वे समझते थे कि बरसों तक शहर में रहने के बाद अब मैं खेतों में काम करने के योग्य नहीं रह गया हूँ। भाभी के बच्चे भी मुझे बेहद चाहते थे। छुट्टियों में वे मेरे ही साथ रहना पसंद करते थे। महीने का दूसरा शनिवार था। विद्यालय में छुट्टी थी, इसलिए दोनों बच्चे सात बजे तक सोते रहे। भैया खेत में काम करने जा चुके थे। भाभी ने बच्चों को उठाकर तुरंत तैयार किया। मैंने चाय की चुस्कियाँ लीं। माँ नहा-धोकर घर के पिछवाड़े पीपल के पौधे में जल देने जा रही थी। मैं भी बच्चों को ले उनके साथ हो लिया। हम तीनों कौलेसर चाचा के ओटे पर बैठ गए। बेचारा पीपल का नन्हा पौधा परजीवी की लताओं के बोझ से झुका जा रहा था। माँ ने उस नाजुक पीपल को श्रद्धापूर्वक पकड़ा और परजीवियों से मुक्त करने के बाद उसे गुड़ का शरबत अर्पित किया। मैंने सोचा कि माँ कितनी स्नेहमयी हैं। कितनी जल्दी

उन्होंने उस पौधे को मुक्त कर दिया। काश, ऐसे ही कोई बीड़ी कंपनी के उन बाल-मजदूरों को मुक्त करा पाता।

वहाँ से लौटा तो बाबूजी भैया के लिए जलपान लेकर जा चुके थे। नाश्ता करने के बाद मैं बच्चों के साथ रवाना हो गया। रास्ते में मुकेश मिल गया। हम दोनों बातें करते हुए सड़क तक आ गए। वह सड़क बाईं ओर बाजार तक थी और दाहिनी ओर बीड़ी कंपनी तक। इसी सड़क के उस पार लगभग चार सौ गज की दूरी पर खेत में काम हो रहा था। मुकेश गाँव के स्कूल में साथ पढ़ा था। तब वह बहुत सीधा-सादा लड़का था, लेकिन अब मैंने सुना था कि बड़ा 'बॉस' या यों कहें कि 'डॉन' हो गया है। इलाके भर का कोई भी व्यक्ति उससे पंगा लेना नहीं चाहता। मुझे घृणा हुई, जब उसने स्वयं बताया कि बीड़ी कंपनी को वही संरक्षण देता है और बदले में कंपनी के मालिक से हर माह एक लाख रुपए वसूलता है। बातचीत के क्रम में मैंने उसे समझाने का प्रयास किया कि एक लाख रुपयों के लिए वह कितने मासूमों की जिंदगी तबाह कर रहा है। उसे यह काम नहीं करना चाहिए, लेकिन जब उसने आपबीती सुनाई तो आँखों में आँसू आ गए।

उसने बताया कि लगभग दस वर्ष पूर्व जब महेंद्र सिंह और देवेंद्र सिंह के बीच भयानक भिडंत हुई थी और कोई भी बीच-बचाव करने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था, तब मुकेश के पिता दिनेश सिंह बीच में कूद पड़े थे। फिर तो दोनों भाइयों ने आपसी लड़ाई को भूलकर दिनेश सिंह को ही मौत के घाट उतार दिया। रूपा देवी पति की मौत का सदमा बरदाश्त नहीं कर पाईं और इक्कीस वर्षीय इकलौते बेटे मुकेश को छोड़कर चल बसीं। फिर जब मुकेश ने पुलिस का सहारा लेना चाहा तो जमींदार महेंद्र सिंह ने उसे समझा-बुझाकर अपनी कंपनी में मुंशी बना दिया। धीरे-धीरे मुकेश ने मेहनत और समझदारी से कंपनी के मजदूरों का मन जीत लिया। अब वे उसके साथ जीने-मरने के लिए तैयार हो गए। तभी से वह कंपनी की सुरक्षा की कमाई खाता है। उसकी आँखों की धधकती ज्वाला इसके अतिरिक्त बहुत कुछ कह रही थी। अंत में मैंने भारी मन से विदा ली, लेकिन मन-ही-मन पुनर्मिलन की तैयारी भी कर रहा था। अब मेरे मन के एक कोने में उसके प्रति दया का भाव भी था।

दूसरे दिन सुबह मैं जंगल की ओर निकल गया। वहाँ देखा तो पचासों जोड़े हाथ तेंदू के पत्तों को पौधे से अलग करने में लगे हुए थे। मैंने उनकी तसवीरें लीं, फिर पास जाकर एक बालक से पूछा, ''बेटा, क्या नाम है तुम्हारा?'' उसने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। फिर एक चॉकलेट के सहारे मैंने उसे अपने कब्जे में कर लिया। उसने मुझसे ढेर सारी बातें कीं। उसका नाम रमेश था। उसके पिता किसान थे। उसका घर यहाँ से बहुत दूर था। रातभर बस में बैठकर दलाल के साथ वह यहाँ आया था। अन्य बच्चे भी दूर से आए थे। वे दिन में एक बार ही रूखा-सूखा खाते थे। फिर देर रात में सभी को एक साथ खिचड़ी खिलाई जाती थी। उन्हें भरपेट भोजन कभी नहीं मिलता था···वगैरह···वगैरह।

अगली सुबह गलियारे से 'राम नाम सत् है' की ध्वनि सुनकर मैं सिहर उठा। न जाने क्यों मुझे अचानक संदेह हुआ कि कहीं रमेश को तो उन लोगों ने···। जब पिछवाड़े जाकर कौलेसर चाचा से पूछा तो मेरा संदेह विश्वास में बदल गया। उन्होंने बताया कि कंपनी का एक लड़का कालरा से मर गया। उसका नाम रमेश था। यह अंतिम वाक्य सुनकर मुझे काठ मार गया। मुझे ऐसा लग रहा था, जैसे मैं ही उसका हत्यारा हूँ, क्योंकि न मैं उससे पूछताछ करता और न वे उसे मारते। तुरंत मैंने महेंद्र सिंह को जाकर धमकी दे दी कि अब वह कोई जुल्म नहीं कर पाएगा, क्योंकि उसके पाप का घड़ा जल्दी ही फूटनेवाला है, इसलिए वह जेल जाने के लिए तैयार रहे। लेकिन जमींदार का चट्टानी मौन विखंडित नहीं हुआ। वह यथावत् लेटा मालिश करवाता रहा।

वापस आते समय रास्ते में ही दर्जन भर लठैतों ने मुझे घेर लिया और तड़ातड़ लाठियाँ बरसानी शुरू कर दीं। मैं किसी को पहचान नहीं पा रहा था। हाँ, मुकेश की आवाज मैंने अवश्य पहचानी···''कंपनी के साथ मेरी रोजी-रोटी है पंडित, और मेरी रोटी छीननेवालों का यही हश्र होता है, जो रमेश का हुआ। तुम्हें तो मैं दोस्त मानकर माफ कर रहा था, लेकिन तुम हो कि समझते ही नहीं।'' इसके बाद मुझे कुछ पता नहीं कि क्या-क्या हुआ!

मुझे होश आया तो मैं अस्पताल में था। इंस्पैक्टर ने हथकड़ियाँ पहनाते हुए कहा, ''आपको गिरफ्तार कर लिया गया है।''

''किस जुर्म में इंस्पैक्टर?''

''आप पर कंपनी के एक मजदूर को चॉकलेट में जहर खिलाकर हत्या करने का आरोप है।''

इंस्पैक्टर की बातें सुनकर मैं जमीन में गड़ा जा रहा था। मुझे मेरा अपना ही जमीर धिक्कारने लगा कि ऐसा न्याय नपुंसकता से कम नहीं है, जो हर कदम पर घुटने टेक दे। जिस न्यायी के विचारों में तल्खी तो हो, लेकिन संग्राम जीतनेवाली बहादुरी न हो, उसका न्याय दो कौड़ी का है।

१३८५/१३, गोविंद पुरी
कालकाजी, नई दिल्ली-११००१९
दूरभाष : ०९९७१७२८०४४

कबीर-साहित्य की सामाजिक प्रासंगिकता

● राहुल

प्रत्येक युग के साहित्य में उस युग की प्रतिच्छाया मिलती है। युग-चेतना के निर्माण में समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए साहित्य-संरचना में समाज के समस्त क्रिया-कलाप, आचार-विचार, रीति-रिवाज, संकल्प-विकल्प और अन्य संपूर्ण गतिविधियाँ स्वयं ही प्रतिबिंबित हो जाती हैं। कबीर-साहित्य इसका अपवाद नहीं है। कबीर का संत-मन चाहे कितना ही निर्गुणपरक है, उनका आत्मनिष्ठ मन स्वकीय (आत्मगत) सामाजिक स्थितियों, जन-जीवन की दुर्दशाओं, शोषण, आतंक, पाखंड, रूढ़िवाद, देववाद, मिथ्यावाद जैसी प्रवृतियों के विरोध में खड़ा है, उनमें सामाजिक चेतना जनवादी चेतना सी प्रतिभासित होती है।

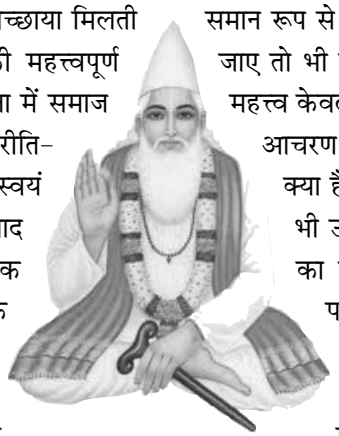

कबीर धर्मगुरु थे, किंतु उनकी प्रतिष्ठा समाज-सुधारक के रूप में अधिक है। हिंदू-मुसलिम दोनों संप्रदायों के जीवन का निरूपण वास्तविक आधार पर करते हैं। उनकी दृष्टि प्रगतिशील थी। प्रगतिशील या जनवादी यानी मानववादी सृष्टि और दृष्टि भी कबीर-साहित्य में प्रतिष्ठित हुई है। बेजाड़ दृष्टि की संपन्नता के लिए वे संपूर्ण विश्व में जाने-माने जाते हैं। उनके काव्य-सृजन की एक ही पद्धति है—यथार्थवाद। प्रगतिशील रचनाकार और समीक्षक जीवन-जगत् के यथार्थपरक चित्रण को श्रेष्ठ कला-सृजन की पहली शर्त मानते हैं। 'यथार्थ' से उनका अर्थ यथावत् नहीं, जीवन-जगत् को समग्रता में देखने और उसकी विविधिता को पुनर्सृजित करने से है, क्योंकि यदि किसी रचना में यथार्थ का चित्रण 'यथावत्' किया जाए तो वह रचना नहीं, 'स्टेटमेंट' बन जाएगा। उसमें कल्पना का कुछ पुट जरूरी है। यह कल्पना ही वह कला है, जो रचना को काव्योत्कर्ष प्रदान करती है। यथार्थवादी कविता या कला मनुष्य को जीवन के समग्र यथार्थ से परिचित कराती है, जिससे कि वह जीवन और जगत् में विसंगत और कुत्सित है। उसके निवारणार्थ जो श्रेष्ठ-सुंदर और उदात्त है, उसकी उपलब्धि के लिए समुत्सुक और प्रयत्नशील हो।

जब से मानव समाज बना, तभी से सामाजिक विषमता नहीं आ गई। यह पंडितों द्वारा अपने वर्चस्व और निम्न जातियों के साथ अमानवीय सोच के चलते फैली या कि फैलाई गई—जो आज तक समान रूप से बनी हुई है। इसलिए आज की विषमता यदि खत्म हो जाए तो भी कबीर उसके साथ खत्म नहीं होंगे। क्योंकि कबीर का महत्त्व केवल सामाजिक विषमता के कारण नहीं है। मनुष्य को कैसे आचरण करना चाहिए, ब्रह्मचर्य का ध्यान रखना चाहिए, आनंद क्या है? व्यग्र मनुष्य की कैसी मनोदशा होती है, इसकी ओर भी उन्होंने सबको आकृष्ट किया। उनमें पंडित-पुरोहितवाद का जहाँ विरोध-भाव है, वहीं सामाजिक कुरीतियों और पाखंडों के प्रति भी जोरदार आवाज उनकी रचनाओं में सुनाई देती है। मानवीय प्रेम, सामाजिक सहज संबंध और जातीय वैषम्य को मिटाकर एक विराट् फलक पर नए समाज के निर्माण की दृष्टि उनमें थी। इसीलिए कबीर का महत्त्व शाश्वत-सार्वभौम है। उनकी प्रासंगिकता सदैव बनी रहेगी।

कबीर एक क्रांतिकारी कवि थे। सामाजिक विसंगतियों, खोखली मान्यताओं के विरुद्ध जितनी जोरदार आवाज कबीर की वाणी में है, वह आज भी समाज-परिवर्तन की दिशा में कारगर कही जा सकती है। प्रगतिशीलता का जैसा दर्शन वहाँ है, वह हिंदी की समूची कविता में दिखाई नहीं देता। ग्रामीण और शहरी जीवन के विविध पक्षों को उन्होंने बड़ी गहराई और बेबाकी से उठाया है। जन-जीवन मैं व्याप्त जड़ता, अज्ञान, अंधविश्वास तथा आम आदमी (लघु मानव) की वेदना, पीड़ित, शोषित, दलित जन की दयनीयता का जितना दिलकश अक्स कबीर-काव्य में विद्यमान है, वैसा आज तक की समूची कविता में नहीं है। वह वाकई विलक्षण है, बेजोड़ है। आर्थिक विपन्नता को उन्होंने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। जिस प्रकार उन्होंने धार्मिक पाखंडों और खोखले आदर्शों, मान्यताओं, परंपराओं पर निर्मम प्रहार किया है, उसी प्रकार उन्होंने हिंदू-मुसलमानों के बीच भेद को भी उघारा है। यों वे दोनों को एक ही पिता (ब्रह्म) की संतान समझते और मानते थे कि 'मानव-मानव के बीच छुआछूत एक प्रकार का सामाजिक अपराध है।' उनकी दृष्टि में पूजा-पाठ भी इनसानी एकता में बाधक बनते हैं। उनका कहना था कि सभी मानव एक समान और समाज के सेवक हैं, उनके बीच में कोई बड़ा, कोई छोटा नहीं है।

जो तू बाभन बैभनी जाया, तौ आन वाट है काहे न आया।
जो तू तुरक तुरकनी जाया, तो भीतर ही खतना क्यों न पुराया॥

× × ×

न को ऊँच, नहीं को नीचा।
जाका पिंड ताही का सींचा॥

कबीर का समाज-सुधारवादी काव्य उनकी ज्ञानात्मक अनुभूतियों पर आधारित है। वे धार्मिक पाखंडों, कर्मकांडों का घोर विरोध करते थे, पंडित और मौलवियों की खिल्ली उड़ाते थे—

दुनिया ऐसी बावरी पाथर पूजन जाय।
घर की चकिया कोई न पूजे, जेहिका पीसा खाय॥
दिनभर रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुदाय॥

उन्होंने अपनी अनुभूतियों के माध्यम से सामाजिक विषमताओं व हिंसक प्रवृत्तियों पर साहस एवं निर्भीकता से प्रहार किया है—

बकरी पाती खात है ताकी काढी खाल।
जे जन चकरी खात है तिनको कौन हवाल॥

सामाजिक रूढ़ियों का उन्मूलन कर उन्होंने अपनी अद्वैतवादी साधना का मार्ग प्रशस्त किया। परंपरा से आनेवाली समस्त मान्यताओं को किस प्रकार युग के अनुकूल परिवर्तित किया जा सकता है, किस सीमा तक उनका खंडन किया जा सकता है, यह अंतर्दृष्टि संत कबीर में थी। यही कारण है कि शास्त्र-ज्ञान की अपेक्षा करते हुए उन्होंने जन-मानस को समझा और जाति-भेद एवं कर्मकांडों का विरोध करते हुए ऐसे विश्व-धर्म की परिकल्पना की, जिसमें विविध वर्गों के लोग समान रूप से एक पंक्ति में बैठ सकें। कबीर के दृष्टिकोण की अवधारणा उनका अनुभव-ज्ञान था। उसमें जीवन का प्रत्यक्ष दर्शन है, समाज का अक्स है और परिस्थितियों, असंगतियों और विसंगतियों के प्रतीकात्मक बिंब हैं। उन्होंने सत्य का साक्षात्कार किया था। वे अपने जीवनानुभव के साक्ष्य पर आधारित तर्कों से पंडितों, मुल्लाओं, धार्मिक-मठाधीशों, योगियों और अवधूतों को निरुत्तर कर देते हैं।

कबीर के परिप्रेक्ष्य में यदि विद्यापति, जयदेव, कालिदास, केशव, देव, बिहारी, घनानंद आदि कवियों को देखें तो वे समाज-सुधारक के रूप में नहीं दिखते, पर वे समाज-सुधार के विरोधी भी नहीं थे। संतों और भक्तों में सामाजिक निरपेक्ष भावना अधिक होती है। यों निर्गुण की अपेक्षा सगुण साधना में सामाजिक सुधार की संभावना न भी हो तो भी उनकी वाणी में सामाजिक सुधार की अद्‌भुत प्रेरणा रहती है। उनका आचार लोक को आचारवान बनाता है। वे मानवता के प्रतीक होते हैं। साधु-संत-महात्मा समाज-सुधार की आदर्श प्रतिमा माने जाते हैं।

कबीर के काव्य-दर्शन के विविध पक्षों के साथ उनके सामाजिक दृष्टिकोण के बार में डॉ. रामविलास शर्मा के कथन का एक अंश है, 'कबीर समेत सभी संत दो चीजों पर जोर देते थे, पहला है, आत्म-संसार और दूसरा समाज-संस्कार है। काम, क्रोध, मद और लोभ को जीतना आत्म-संस्कार है।' कबीर ने कहा भी है, 'मन न लाए रँगाए जोगी कपड़ा।' समाज-संस्कार में उन्होंने बलि-प्रथा का विरोध किया है। कहा भी है, 'पांडे निर्गुण कसाई' अर्थात् पांडे चतुर कसाई हैं। ये दोनों संस्कार साथ-साथ चलते हैं। समाज-संस्कार में जाति-प्रथा का विरोध है। इस जाति-प्रथा को बल्कि ये कहना चाहिए कि 'वर्ण-प्रथा' का विरोध है। क्योंकि मनुष्य एक जाति है। और इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्ण हैं, हिंदू मुसलमान भी दो भिन्न-भिन्न वर्ण ही हैं, जाति नहीं। मंदिर में जाकर मूर्तिपूजा जैसे कर्मकांड का विरोध है। हिंदू-मुसलमनों में परस्पर द्वेष-भाव का विरोध है।' कबीर जो साधु समाज स्थापित कर रहे थे, वह न हिंदू है, न मुसलमान, न ब्राह्मण, न शूद्र। वे मनुष्य हैं, भक्त हैं। कबीर के उपदेश का एक नैतिक पक्ष है। इसके अनुसार समाज में कैसे रहना, कैसे बोलना चाहिए के प्रति उन्होंने संपूर्ण मानव-समाज को कहा है, ''ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय, औरन को शीतल करै आपहु सीतल होय।'' यह सदाचार की शिक्षा है। कोई खंडन-मंडन नहीं है। सदाचार का आधार है प्रेम। कबीर की ऐसी उदात्त भावनामयी उक्तियाँ कहावतें बन गई हैं।

जाने-माने आलोचक-कवि। 'प्रजातंत्र, कहीं अंत नहीं', 'जंगल होता शहर', 'महानायक सुभाष', (कविता-संग्रह), 'युगांत' (प्रबंध काव्य) चर्चित; संपादित कृतियों के साथ-साथ दर्जन भर बाल-साहित्य और राजभाषा हिंदी से संबंधित पुस्तकें भी। हिंदी अकादेमी एवं अन्य साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्मान प्राप्त।

सामाजिक विषमताओं पर कबीर ने भरपूर प्रहार किया है। मध्यकाल में सामाजिक वैषम्य, आर्थिक विवशता के साथ जातीय-वर्णीय-वर्गीय थी। यह वर्णीय-वर्गीय विषमता आर्थिक से अधिक भयावह-खतरनाक होती है। वर्गीय चेतना को सबसे पहले कबीर ने जगाया। उनकी इस प्रासंगिकता के विषय में डॉ. रामकुमार वर्मा की एक उक्ति है, ''समाज में जाति-बिरादरी को लेकर राजनीतिक पार्टियाँ बनती हैं, हिंदू-मुसलिम भेद को लेकर पार्टियाँ बनती हैं। इन पार्टियों के आगे मनुष्य नहीं रहता, ब्राह्मण, हिंदू, मुसलमान, शूद्र रहता है। इसलिए कबीर ने कोशिश की थी कि मनुष्य की पहचान कैसे की जाए। उनकी व्यंजना थी कि बाहर का कर्मकांड छोड़ो, अपने अंतर को शुद्ध करो, सभी को अपना भाई समझो। कबीर ने जोर देकर कहा कि साधु की जाति मत पूछो।'' भारतीय समाज का संबंध एक ओर राजनीति से है तो दूसरी ओर धर्म-कर्म से। राजनीतिक परिस्थितियाँ अव्यवस्थित होती हैं तो समाज के आचरण और व्यवहार में भी उच्छृंखलता आ जाती है। कबीर की कविता में आज की कविता की बौद्धिक बेचैनी भले ही न हो, पर वह कविता शोषण और अन्याय के विविध रूपों, उनको बनाए रखने के लिए पूँजीवर्ग (शोषक-वर्ग) के हथकंडों और शोषित वर्ग की जटिलताओं की अभिव्यक्ति प्रकारांतर से हुई है। समाज की जटिल व्यवस्था को व्यक्त करने का प्रयत्न तथा पीड़ित-उपेक्षित जनता के दृष्टिकोणों को उसमें साफ देखा जा सकता है—

हिंदू अपनी करै बड़ाई, गागर छुवन न देई।
साधो यह गति कहत न जाई।
वैश्या के पाइन तक सोवैं यह देखो हिदुआई।
मुसलमान के पीर औलिया, मुर्गा-मुर्गी खाई।
खाला के घर बेटी ब्याही, घरहि में करें सगाई।

कबीर जातिगत, दलगत, वर्गगत, वर्णगत और संप्रदायगत सामाजिक व्यवस्था के पक्के विरोधी थे, जिसकी पुष्टि उनके काव्य में जगह-जगह होती है। इससे समाज का विकास अवरुद्ध होता है। वह पतन की ओर या कि गर्त में चला जाता है। इसीलिए वे इससे ऊपर उठकर मानवीय दृष्टिकोण से उन्हें सोचने और समान व्यवहार करने पर जोर देते रहे। वे कहते रहे, जब सबकी समान रचना है, सबके खून का रंग एक जैसा 'लाल' है, तब भेद कैसा?

कबीर ने हिंदू-मुसलमान के बीच पड़ी वैमनस्य की खाई को पाटने का भरसक प्रयत्न किया है—

साई के सब जीव हैं कीरी, सूकर दोय।
कापर दया कीजिए, कापर निर्दय कोय॥

समकालीन संदर्भ में कबीर की वाणी आचरण शुद्धि, मन की पवित्रता, प्रेम, सत्संग के महत्त्व, नियम, परोपकार, आत्मसमर्पण, सत्य और मन-नियंत्रण का मूल मंत्र है। उनकी दृष्टि में जप, तप, माला, तिलक सब ढोंग है। इसके करने, पहनने और लगाने से न कोई साधु बन जाता है और न कोई पंडित। व्यक्ति का सत्कर्म, सद्भाव, सद्व्यवहार, संयम, नियम, आचरण ही उसे महान् बनाता है। वे इसके लिए मन की पवित्रता पर बल देते हुए आचरण की शुद्धता के प्रति सचेत करते हैं—

पंडित होय के आस मारे, लंबी माला जपता है।
अंदर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है।
हिंदू-तुरक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई।
कहै कबीर सुनहु रे संतो राम न कहेउ खुदाई।

कबीर व्यष्टिवादी नहीं, समष्टिवादी थे। उनकी दृष्टि भी समष्टिपरक थी। सवधर्म समभाव के लिए जिस मजबूत आधार की जरूरत पड़ती है, वह कबीर में थी। उनसे अधिक सांप्रदायिक एकता का प्रतिपादन किसी अन्य संत-कवि ने नहीं किया है। राम-रहीम एवं केशव-करीम की एकता का, जो स्वयं सिद्ध है, उसे भी उनके पदों में सहजता से देखा-पढ़ा जा सकता है। वे सांप्रदायिक सद्भाव बढ़ाने, आर्थिक अभाव मिटाकर और धार्मिक ढोंग, जातीय हिंसा, सामाजिक लूटपाट, चोरी, बेईमानी का प्रमुख कारण धार्मिक जुनून को ही मानते थे। भाईचार की भावना को बढ़ाने के प्रति निरंतर प्रयासरत थे, क्योंकि जातीय, वर्गीय विच्छेदन न केवल समाज को कमजोर बनाता है, बल्कि यह जुनून मानवता का सबसे बड़ा शत्रु है। यह शोषण का एक अभेद्य कारक भी है। कबीर-साहित्य प्राणिमात्र के प्रति दया और करुणा, प्रेम और एकता का बीजसूत्र है। संतोष सर्वोत्तम सुख-संपत्ति का साधन है। इसके आते ही मन में असीम तृष्टि की अनुभूति होती है और मनुष्य सुखदानंद की प्राप्ति करता है। सच को सर्वोपरि माननेवाले कबीर कहते हैं, 'साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप/जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदै आप।' कबीर का जीवन सत्य और साधना से परिपूर्ण था। वे सत्यमय मानव समाज को निर्मित करना चाहते थे। उस काल में सामाजिक व्यवस्था इतनी कलुषित हो गई थी कि निष्पक्ष रूप से सत्य का उद्घाटन करना बड़ा साहस भरा काम था। यों इसका संकट आज भी है। सत्य कभी हारता नहीं। यह असत्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है। सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। यह परब्रह्म समान सर्वोपरि है। समय सबसे अधिक मूल्यवान् है, किंतु सत्य समय से अधिक मूल्यवान् है। कबीर ने सत्य के पक्ष में और असत्य के विरोध में खड़ा होने के लिए अपने भीतर अप्रतिम आत्मविश्वास जगाया। इसी आत्मविश्वास और आत्मोन्नति के द्वारा वे सत्य के होने का साहस जुटा सके—

नीम कीट जस नीम पियारा।
विष को अमृत कहत गंवारा॥

कबीर निर्भीक थे। उन्होंने बड़ी निडरता, निष्पक्षता से अपनी बात कही है। क्रांति और बदलाव को लाने के लिए जिस साहस और आत्मविश्वास की आवश्यकता होती है, कबीर के अक्षय और विराट् व्यक्तित्व में उसकी प्रचुरता थी। उनमें अद्भुत ओज और ऊर्जा थी। उनकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। वे समष्टि मैं व्यष्टि और व्यष्टि में समष्टि को देखते थे। उन्होंने शब्दों को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया है। पाखंड के विरोधी और परिवर्तन के आग्रही कबीर कुटिलता, कुरीति और कुशासन के प्रति हमेशा अपनी आवाज बुलंद करते रहे। क्योंकि पाखंडी मनुष्य कभी सुशील आचरण नहीं कर सकता। उत्तम लक्षणों से रहित ऐसे मनुष्यों से समाज विकृत होता है। परिवर्तन सृष्टि है। स्थिर होना मृत्यु है। स्थिरता में विकास नहीं होता। कुटिल जन अपने व्यवहार से अनीति फैलाते हैं। अनीति से विसंगतियों का जन्म होता है। विसंगतियाँ मनुष्य और समाज दोनों को विघटित कर देती हैं। कुरीति के अधीन होना कायरता है, उसका विरोध करना पुरुषार्थ है। समाज में फैले इन विषाणुओं की भर्त्सना कबीर की चिंतन-चेतना का साक्षी है।' 'कबीर सच्चे मानवतावादी थे, जिनका एकमात्र लक्ष्य मानव मात्र की कल्पना-साधना था। वे उसी ज्ञान को स्तुत्य मानने के पक्षधर थे, जिससे मानव की पीड़ा का शमन हो।

कबीर में जन-जीवन के प्रति गहरी संवेदना थी। सत्याग्रही कबीर समता-समानता के पक्षधर और सह-अस्तित्व के सबल सर्जक थे। समाज की विसंगति और विषमता को देखकर वे कह उठते हैं—

निर्बल को न सताइए जाकी मोटी हाय।
मुए खाल को स्वास सों सार भसम हो जाय॥

वे अपने समय-समाज के बड़े कटु आलोचक थे। उनकी दृष्टि रसाल थी—

मैं कहता हूँ जागत रहियो, तू कहता है सोई रे।
मैं कहता निर्मोही रहियो, तू जाता है मोही रे॥

प्रख्यात आलोचक प्रो. नामवर सिंह ने लिखा है, 'आज से ६०० वर्ष पहले समाज को अंधकूप से निकाल रहे थे। सामाजिक कुरीतियों,

आडंबरों, विसगतियों में सुधार के लिए वे 'आत्मज्ञान' की बात करते हैं। उनका मानना था कि आत्मज्ञान और मन की शुद्धि द्वारा मनुष्य के दृष्टिकोणों में सुधार संभव है। मानवीय सुधार और आत्मोत्थान द्वारा ही समाज को विकसित और सुसंपन्न, सुखी बनाया जा सकता है।'' वे कहते हैं, 'आत्मज्ञान बिन जग झूठा, क्या मथुरा क्या काशी।' सामाजिक वातावरण इतना विषाक्त हो चुका है कि सच के सहारे ही जीवन को सुखमय, शांतिमय और सुंदर बनाया जा सकता है। समाज ने बाकी जीवन-मूल्यों को तौलते थे। उनकी एक पदोक्ति है, 'हृदय तराजू तौल के तब मुख बाहर आन।' वे हमेशा सच बोलने पर बल देते रहे, क्योंकि सच जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है। इससे बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है।

सत्य सबसे अधिक शक्तिशाली है। उसकी विजय अवश्य होती है। आज के इस भौतिकवादी युग में कबीर-वाणी की प्रासंगिकता यथावत् है। संत कवियों ने साँच को 'ब्रह्म' कहा है। गरीबदास और दादू भी सत्य द्वारा ईश्वर के साक्षात्कार की पुष्टि करते हैं। अत: समस्त जंजाल का परित्याग कर सत्य का पालन करना चाहिए। 'सत्य बोलना श्रेय का प्रधान साधन है। सत्य के साथ-साथ जो हितकर हो, वही बात कहनी चाहिए।' महात्मा गांधी ने अहिंसा के सिद्धांत से अधिक सत्य के आदर्श को प्रचारित-प्रसारित किया। कबीर ने भी कहा है—

साँचे ताप न लागई, साँचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिले, साँचे मोहि समाय॥

उच्चकुल-वंश, जाति में पैदा होने से मनुष्य बड़ा नहीं होता, बल्कि वह अपने अच्छे कर्मों, ज्ञान और व्यवहार से महान् बनता है, जब व्यक्ति के मन में दुराग्रह हो तो समाज में भी उत्कर्ष का अभाव होगा। व्यक्ति के आचरण प्रवणता को वे श्रेय और प्रेम मानते वे। मन की चंचलता, शुद्धि, आत्मसंयमशीलता, चरित्र व पवित्रता को धारण करने के साथ, विवशता तथा विलासिता से मुक्ति के लिए उन्होंने अनेक साखियाँ रची हैं। उनकी साखियों में तत्कालीन समाज और उसके परिवेश के जीवंत अक्स हैं। कबीर की पैनी दृष्टि सामाजिक परिवेश की विसंगतियों, जनजीवन की जटिलताओं को भी बड़ी सूक्ष्मता से देखती है और उनका विश्लेषण करती है। समाज की तमाम विरूपताओं को उन्होंने खोलकर सामने रख दिया है।

कनककामिनी (रूपसुंदरी नारी) के संबंध में कबीर की वाणी पूरी प्रखरता से मुखरित है। स्त्री चाहे भले ही जग की पवित्र ज्योति है, वह भले ही पुरुष-शक्ति के लिए जीवन-सुधा है, उसका मन भले ही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान की पुस्तक है, वह भले ही श्रद्धा और देवी-रूप हो, परंतु कबीर के लिए वह एक छलना है, मात्र माया है, काया है—

कनक कामिनी देखि कै, तू मति भूल सुरंग।
बिछुरन मरन दुहे जरा, केंचुकि तजै भुजंग॥

रामानंद और कबीर ने समाज की व्यवस्था में जाति-बंधन को देखा और उसके दुष्परिणाम को भी। उन्होंने अनुभव किया कि जाति-मुक्ति समाज ही सही मायने में विकास और उत्थान कर सकता है। उन्होंने यह भी अनुभव किया था कि विदेशियों के धर्म प्रचार का मुकाबला करने के लिए हिंदू-धर्म का पुनर्गठन आवश्यक है। जातिभेद यदि शिथिल न किया जाएगा, तो धर्म की रक्षा संभव न हो सकेगी। इसलिए जाति-बंधन परंपरा तोड़ने के लिए उन्होंने अभूतपूर्व प्रयोग किया। 'हरि को भजे सो हरि का होई' के सिद्धांत की प्रतिष्ठा कर उन्होंने धर्म को सशक्त और सुगठित किया। जातिभेद की संकीर्णता का संकेत उनकी रचनाओं में मिलता है—

गरभवास महँ कुल नहिं जाती।
ब्रह्म बिंद ते सब उतपाती॥
कहुं ले पंडित ब्राह्मन कब के होय।
ब्राह्मन कहि-कहि जनम मत खोय॥

जातिगत सामाजिक अव्यवस्था के विरोध में जिस तरह कबीर ने ब्राह्मणों और शूद्रों को एक-दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया, उसी प्रकार हिंदू और मुसलमानों के बीच भी भेद की दीवार तोड़कर उन्हें एक ही परिवार का व्यक्ति घोषित किया। स्पष्ट है कि पंद्रहवीं शताब्दी में भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति बहुत ही अव्यवस्थित थी। राजनीति और धार्मिक परिस्थितियों और प्रवृत्तियों ने उसे और जर्जर बना दिया था। सिद्धांतहीन, आदर्शहीन, मूल्यहीन और आचरण (चरित्रहीन) समाज में मानव जीवन दूभर हो जाता है। जनजीवन को मरण समझने लगता है। ऐसे में कबीर जैसा युगदर्शी, क्रांत-पुरुष ही अपनी अमोघ वाणी-शक्ति से परिवर्तन ला सकता था। कबीर-साहित्य में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, यथार्थ नारी-दृष्टि, सृष्टि, धर्म, ईश्वर और रूढ़ियों के प्रति अंधास्था-विरोध, मानववाद का अनहद नाद है। कबीर सच्चे अर्थ में समाजचेता कवि थे। कबीर ने ऐसी बातें कही हैं, जिनसे (अगर उपयोग किया जाए तो) समाज-सुधार में सहायता मिल सकती है, पर इसलिए उनको समाज-सुधारक समझना गलती है। वस्तुत: वे व्यक्तिगत साधना के प्रचारक थे। अपनी रचनाओं द्वारा समाज को पुनर्गठित करने, धर्मांध-मुक्ति करने, नई दिशा-दृष्टि देने में वे सफल रहे। जीवन के जटिल अनुभवों-अनुभूतियों से उपजा उनका काव्य आज भी समाजी-वैविध्य को मिटाने और मानववाद को विकसित करने की ऊर्जा-शक्ति देता है। मनुष्य की क्षमताओं और उसकी महत्ता को उजागर करने में युग-युगांतर तक वह ऊष्मा देता रहेगा और विकसित करता रहेगा मनुष्य के गौरवपूर्ण भविष्य के प्रति दृढ़ आस्था।

सारत: कबीर ने ऐसे धर्म का आह्वान किया, जो विश्वधर्म है, जो देश का निरपेक्ष्य है, जो समस्त मानव समाज के सदाचरण का प्रतीक है। कबीर के अनुसार जो धर्म है, वही जीवन है। इससे समस्त मानव मात्र एक ही सत्ता की इकाई है, उसमें एक ही जीवन का आदर्श है, एक ही राष्ट्रीयता है। इस दृष्टि से कबीर को मानव धर्म (मानवता) और राष्ट्रीय एकता का महान् सूत्रधार कहा जा सकता है।

साहित्य कुटीर, साइट २/४४
विकासपुरी, नई दिल्ली-११००१८
दूरभाष : ०९२८९४४०६४२

घर वापसी

• रामगोपाल राही

कभी-कभी समय भी अपने आपको दोहराता है, ऐसा ही कुछ हुआ—आदित्य व शुचिता के जीवन में।

एच.आई.वी. कॉन्फ्रेंस में भाग लेने के बाद झीलों की नगरी उदयपुर देखने का मन हुआ तो डॉ. आदित्य पत्नी डॉ. नेहा यहीं रुक गए।

अगले दिन दिनभर देखते रहे, संध्या को सहेलियों की बाड़ी देखकर निकले और इंतजार में खड़ी टैक्सी में बैठने को डॉ. आदित्य ने खिड़की (दरवाजा) खोलने को हाथ बढ़ाया कि पीछे हॉर्न बजाती दौड़ती आ रही कार की तरफ ध्यान गया। सामने देखा तो उनकी नजर सड़क पार कर रही भिखारिन पर पड़ी, तत्क्षण दौड़ उसकी कलाई पकड़ अपनी ओर खींच लिया।

डॉ. आदित्य कलाई पकड़े ही बोले, ''देख के चला करो बाई, अभी मर जाती न!''

कलाई पकड़े इन्हीं पलों में डॉ. आदित्य की निगाह भिखारिन के चेहरे पर ऐसी गढ़ी कि वे भिखारिन के चेहरे को देखते ही रहे। डॉ. आदित्य की निगाह हटाए नहीं हट रही थी।

इस बीच भिखारिन कहती ही रही, ''बाबूजी, मुझे छोड़ो, बाबूजी, बाबूजी मुझे''—मुझे ऐसा ही कहती रही, उसके मुँह से बाबूजी, बाबूजी के आगे कुछ निकल ही नहीं पा रहा और जब निकला तो बोली, ''मुझे एच.आई.वी. है। बाबू, तुमने मुझे छू लिया, अच्छा नहीं किया।''

डॉ. आदित्य अब भी भिखारिन की कलाई पकड़े रहे, देखते रहे, इसी बीच उन्होंने तीन बार गरदन व सिर झिंझोड़ा, निगाहें भिखारिन के चेहरे पर गढ़ी थीं। काफी देर सोचने के बाद डॉ. आदित्य के मस्तिष्क में विस्मृति पटल से निकला किशोर वय का लम्हा उनके दिमाग के कंप्यूटर की स्कीन पर उभर आया। डॉ. आदित्य को अपने अतीत की घटना याद आई।

वर्षों पूर्व विद्यालय के सारे छात्र जयपुर से उदयपुर देखने आए थे। सहेलियों की बाड़ी देख शुचिता सड़क के उस पार खड़ी सहेलियों के पास चली आने को बिना इधर-उधर देखे तेज गति से कदम बढ़ा चुकी थी। दूसरी तरफ ही खड़े आदित्य ने देखा, बगल से हॉर्न बजाती कार दौड़ती आ रही थी कि उसी पल आदित्य दौड़ा और शुचिता को खींच लिया। आदित्य उसे नहीं खींचता तो शुचिता गाड़ी के नीचे आ गई होती। शुचिता बोली, 'आदित्य, तुमने मुझे बचा लिया। धन्यवाद!'

सुपरिचित लेखक। चार कहानी-संग्रह एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। 'साहित्यलंकार', 'साहित्य शिरोमणि', 'काव्य श्री', 'राष्ट्रभाषा आचार्य' सहित कई सम्मानों से सम्मानित।

आज ठीक उसी जगह डॉ. आदित्य ने भिखारिन को कलाई पकड़ खींचा, दस मिनट हो गए कलाई पकड़े ही, डॉ. आदित्य ने भिखारिन से पूछा, ''क्या नाम है—तुम्हारा?''

भिखारिन प्रत्युत्तर में यही कहती रही, ''बाबू मुझे छाड़ो, बाबू मुझे छोड़ो, मुझे एच.आई.वी. है।''

उधर खड़ी पत्नी डॉ. नेहा देख बड़े अचरज में थी, वह सोचती रही, डॉ. आदित्य को यह क्या हो रहा है, वह यही सोच-सोच हैरान होती रही। बच्चे भी बोले, ''पापा, बैठो न पापा!''

इधर शुचिता नहीं बोली तो डॉ. आदित्य ही बोले, ''तुम्हारा नाम शुचिता है!''

डॉ. आदित्य के मुँह से अपना नाम सुन भिखारिन चौंकी!

अब भिखारिन ने डॉ. आदित्य के चेहरे को ध्यान से देखा, देखती रही और खयालों में खो गई। इस पर आदित्य ने फिर कहा, ''जयपुर रहती हो!'' आगे बोला, ''जौहरी बाजार में गली में रहती हो!''

डॉ. आदित्य की बातें सुन-सुन भिखारिन सोचे जा रही थी। सोचते-सोचते सहसा उसके मुँह से निकल पड़ा, ''आदित्य, तुमने मुझे बचा लिया।''

फिर अगले ही पल शुचिता को लगा, वह सपना तो नहीं देख रही। शुचिता के फिर ध्यान में आया। हो, न हो यह आदित्य ही है, फिर भी उसको संशय ही रहा, आदित्य की जगह कोई और हो तो, यही सोच वह मौन ही रहा।

अगले ही क्षण डॉ. आदित्य के मुँह से निकला, ''शुचिता!''

शुचिता के मुँह से निकला—''आदित्य!'' दोनों के चेहरों पर विश्वास के भाव दौड़ते रहे।

विस्मृति के अँधेरे में, यादों के उजालों में दोनों को किशोरवय की घटना याद आ गई।

दोनों का साथ कक्षा दसवीं तक ही रहा। बाद में रत्न व्यवसायी आदित्य के पिता बैंगलुरु चले आए और वहीं बस गए। तीस वर्ष की दीर्घ अवधि में आदित्य शुचिता को भूल गया, शुचिता आदित्य को भूल गई। और आज मिले तो ऐसे मिले···।

दोनों को देख रही आदित्य की पत्नी डॉ. नेहा स्वत: ही समझ गई, यह डॉ. आदित्य की सहपाठी रही होगी। साथ ही यह भी सोचा, पहचान जब हो जाती है, बात करने की इच्छा स्वत: ही हो आती है। यही सोच डॉ. नेहा भी बच्चों के साथ डॉ. आदित्य के पास चली आई।

डॉ. आदित्य ने भिखारिन की कलाई पकड़े हुए ही पूछा, ''शुचिता, तुम्हारी यह दशा कैसे हो गई?''

शुचिता ने लंबे-लंबे श्वास खींचते हुए कहा, ''मेरे पिताजी ने मेरी शादी जयपुर में ही ट्रांसपोर्ट कंपनी में सर्विस करनेवाले ड्राइवर से कर दी। मेरे पति को ट्रक लेकर दूर-दूर जाना होता था, बहुत दिनों बाद आते थे। मेरे एक साथ दो बच्चे हुए। बच्चे बड़े हो गए। तब तक सबकुछ ठीक चलता रहा। डेढ़ वर्ष पहले मेरे पति महीने भर बाद आए थे। मेरे पर उनकी आसक्ति स्वाभाविक थी। मैंने उनकी आसक्ति का विरोध नहीं किया।

''पति कुछ दिनों बाद बीमार पड़े, इसी दौरान जाँच हुई, उनके एच.आई.वी. आया। इलाज चलता रहा, इसी दौरान उनकी मौत हो गई। मैं भी अस्वस्थ हुई, मेरी भी जाँच हुई, मुझे भी एच.आई.वी. आया। मैं इजाज कराने जाने लगी। देवर को पता तो चला उसने मेरी सास को भड़का दिया। सब मुझे अछूत समझ घृणा करने लगे। बिस्तर अलग कमरा, अलग रोटी-पानी, सब दूर से रखने लगे। मैंने अपनी रूढ़िवादी सासू माँ से कहा, 'मेरा इसमें क्या कसूर है? डॉक्टर ने कहा है, दवा लेती रहो, सब ठीक हो जाएगा।'

''घृणा के चलते किसी ने मेरी बात नहीं सुनी। घर में ही उपेक्षित मैं मन-ही-मन बहुत दु:खी थी। पढ़े-लिखे श्वसुर ने मेरी बात को समझा। वे जानते थे, मेरे पति ड्राइवर को एच.आई.वी. था। उन्होंने सास को समझाया भी, पर रूढ़िवादी सास नहीं समझीं। अब सास रोजाना असभ्य व्यवहार करने लगीं।

''इसी दौरान ससुरजी कहीं बाहर गए हुए थे—रूढ़िवादी सास ने रात को देवर-देवरानी को साथ ले मुझे दरवाजे से बाहर धकेल किवाड़ लगा लिये। शहर में ही मैं अपने भाई के पास गई, कुछ दिन रही भी, पर उसको भी अब पता चला तो मुझे घर छोड़ जाने को कहा।''

डॉ. नेहा व आदित्य शुचिता की दर्द भरी दास्तान ध्यान से सुनते रहे। उन्हें हमदर्दी के साथ-साथ शुचिता पर दया आने लगी। सोचा, ऐसे भी निर्दयी इनसान होते हैं, जो अपने ही घर के व्यक्ति का इलाज नहीं कराते और बाहर धकेल देते हैं।

अपनी दास्तां सुनाते-सुनाते शुचिता हिचकियाँ भर-भर रोने लगी थी। उसकी आँखों से अश्रुधार निरंतर बहती जा रही थी।

डॉ. नेहा एक डॉक्टर हैं, पर इससे पहले वो एक औरत हैं, औरत औरत का दर्द समझती है। डॉ. नेहा ने शुचिता को ढाढ़स बँधाया, उसके आँसू पोंछे।

बच्चे-बच्ची खड़ी फोर व्हीलर में पहले ही बैठ गए थे।

रोती हुई शुचिता फिर से बोली, ''भाई द्वारा भी उपेक्षा पर मैं शाम को जयपुर रेलवे स्टेशन पर आ थोड़ी दूर जा पटरियों के पास मरने चली आई, पर मर न सकी। लौट के प्लेटफॉर्म पर आई, इतने में ट्रेन आ गई, मैं बैठ गई, पता चला, गाड़ी उदयपुर जा रही है। इसी दौरान महिला टी.टी.आई. ने टिकट माँगा, मैंने धीरे से उसे अपनी बात संक्षेप में बताई। टी.टी. भी औरत थी, उसने मेरा दर्द समझा और मुझे पाँच सौ रुपए दिए, साथ ही यह कार्ड दिया, बोली, घर आ जाना। मैंने रुपए रख लिये, ट्रेन से उदयपुर जब उतरी, मैं बहुत घबराई हुई थी, अनजान नगर, अनजान डगर, यहाँ कौन है मेरा? यही सोच मैं थोड़ी दूर जा रेल की पटरियों के बीच आँख मींच सीधी लेट गई। मालगाड़ी हॉर्न बजाती हुई मेरे ऊपर से निकल गई। मुझे खरोंच भी नहीं आई!

''मैं उठकर सिर पकड़ रोने लगी, मौत ने भी मेरी उपेक्षा कर दी, मुझे मौत नहीं, जिंदगी मार रही है, आदित्य!''

हताश शुचिता फिर बोली, ''मैं न मर सकती, न जी सकती, क्या करूँ, यहाँ चली आई!''

पास खड़ी सुन रही डॉ. नेहा ने उसे फिर ढाढ़स बँधाया। खड़े-खड़े पंद्रह मिनट में व्यथित शुचिता ने अपनी सारी बात बता दी।

इस पर डॉ. आदित्य दंपती ने सोचा, शुचिता को बचा तो लिया, दोनों ने स्वत: ही इनसानियत का फर्ज निभाने के लिए टैक्सी का दरवाजा खोलते हुए कहा, ''चलो, बैठो हमारे साथ।'' यह सुन शुचिता से करते बना। सब रात को ही जयपुर के लिए चल निकले। अगली सुबह फ्लाइट से बैंगलुरु लौट आए।

आदित्य दंपती के अपनत्व से शुचिता को काफी अच्छा महसूस हुआ। मन का विषाद घुल सा गया। डॉ. आदित्य दंपती ने शुचिता का इलाज घर पर ही आरंभ किया। जरूरत के अनुसार अपने संग अस्पताल भी ले जाते थे। शुचिता का सोने का कमरा ही अलग था, बाकी रहन-सहन, खाना-पीना, अपने तरीके से साथ होता था। इतनी निकटता का स्नेह व अपनत्व के व्यवहार से शुचिता को जिंदगी का सकून मिलने लगा। डॉ. नेहा ने शुचिता के इलाज की व्यवस्था स्वयं सँभाल रखी थी। नियमित दवा चिकित्सा से कुछ ही दिनों में शुचिता भूल सी जा रही थी कि उसे एच.आई.वी. है।

प्रसन्नता का सुकून मन की मलीनता धो देता है। स्नेह की धार

गंगाजल से कम नहीं होती। प्रेम की गंगा में जब डुबकी लगती है, जीवन की हर बुराई कम होती चली जाती है और यह भी सच है डॉ. की दिनचर्या ने रोगी की चिकित्सा ईश्वर की पूजा होती है, सच्चे अर्थों में यही 'नर सेवा नारायण सेवा होती' है।

यह भी एक सच्चाई है, रोगी मरीज, बीमार, व्यक्तियों से डॉक्टर चिकित्सक का महत्त्व है, इसीलिए तो कहते हैं, डॉ. मरीजों के भगवान् होते हैं। मरीज न हो तो मरीजों के भगवान् को कौन पूछे।

घर में अपनत्व, चिकित्सा में अपनत्व, रहन-सहन में अपनत्व, इससे डॉ. नेहा व शुचिता कुछ महीनों में आपस में इतना घुल-मिल गई कि दोनों एक-दूसरे को पूर्व जन्म की छोटी-बड़ी बहन समझने लगीं।

डॉ. आदित्य दंपती से मिले अपनत्व, प्रेम व निकटता के व्यवहार से शुचिता स्वयं समझने लगी थी। एच.आई.वी. छूत का रोग नहीं है। यह तो आंतरिक संसर्ग से फैलता है तथा इलाज व आपसी अपनत्व से मिटता है। डॉ. आदित्य दंपती घर में अब तो सभी साथ बैठकर कई तरह की बातें करते, हँसते, अपनत्व-ही-अपनत्व, प्रेम-ही-प्रेम, इससे शुचिता एच.आई.वी. को अपने आप भूल सी गई।

शुचिता के साथ ही अब तो घर के कामों में शुचिता भी हाथ बटाती और सक्रिय रहती थी। बातों-ही-बातों में एक दिन शुचिता बोली, ''आदित्य, आपका यह अहसान किस तरह किस जन्म में चुका पाऊँगी। मैं तो सौ जन्मों में भी आपका यह ऋण नहीं चुका पाऊँगी आदित्य, डॉ. नेहाजी!''

इस पर डॉ. नेहा ने कहा, ''कर्तव्य अहसान नहीं होता, हमारा तो कर्म व धर्म ही यही है, डॉक्टर इसीलिए होते हैं, भगवान् ने चिकित्सक बनाया है, इसलिए कि वह तन्मयता से मरीजों का इलाज करें, हमारा तो यही कर्तव्य, कर्म, पूजा ईश्वर की बंदगी है। इसमें एहसान ऋण की कोई बात नहीं।'' डॉ. नेहा फिर बोली, ''और फिर आप तो हमारे घर जैसी हैं! मैंने एक दीदी के प्रति कर्तव्य निभाया, कौन सी बड़ी बात कर दी।''

समय तो अपनी गति से चलता है। नित्य के हालातों में इतने दिन कैसे निकल गए, पता ही नहीं चला। तीन साल हो गए, शुचिता एच.आई.वी. से कभी की मुक्त हो गई।

इधर डॉ. आदित्य दंपती ने सोचा, शुचिता की चिकित्सा कर्तव्य तो पूरा हुआ, पर उन्हें लगता, मानवीय कर्तव्य अभी अधूरा है। इसे पूरा करने की सोच ही रहे थे। इसी के चलते उन्हें, फिर अबकी बार एच.आई.वी. कॉन्फ्रेंस में जयपुर आने का अवसर मिला।

डॉ. आदित्य दंपती इस पर बड़े प्रसन्न हुए, दोनों ने सोचा, शुचिता को भी साथ ले चलेंगे, इसके घरवालों से रू-ब-रू होंगे, कोशिश कर इसे अपने घर पहुँचाएँगे। इसी सोच के चलते डॉ. आदित्य दंपती कॉन्फ्रेंस की पूर्व संध्या को जयपुर आए। होटल में रुकने से पूर्व टैक्सी ले सीधे शुचिता के घर चले आए। अपने लौटे आत्मविश्वास के साथ शुचिता ने अपने घर के दरवाजे पर दस्तक दी।

दस्तक सुन रूढ़िवादी सास व पीछे-पीछे ससुर भी दरवाजा खोलने चले आए। दरवाजा खोल, सामने आगंतुक को खड़े देख सास-श्वसुर असमंजस में धुँधली आँखों से देखते रहे। अपरिचित समझ रहे थे। सोच रहे थे। यह कौन आए, फिर बोले, ''आओ, पधारो साहब।''

उधर शुचिता इसी बीच दोनों के पैर छू अंदर आ चुकी थी।

शुचिता को अपना अतीत याद आ गया, जब शुचिता को सास ने रात को घर से बाहर निकाला था। बीमारी के डर, भय, आशंका से वह मरी-मरी हो गई थी। आँखें धँसी थीं, चेहरा पीला-पीला, गाल पिचके, बाल भी सफेद होने लगे थे।

अंदर बैठने पर शुचिता के श्वसुर बोलने लगे, ''कहीं से आए साहब, आप कौन हैं। क्या करते हैं?''

इस पर डॉ. नेहा ने चुटकी ली, ''लो डॉ. आदित्य इंटरव्यू दो।''

डॉ. आदित्य ने बड़े धैर्य के साथ कहा, ''हम बैंगलुरु से आए हैं। दोनों डॉक्टर हैं, एड्स रोगियों का इलाज व ऑपरेशन करते हैं।'' तभी दूसरी मंजिल पर पढ़ रहे बच्चे किसी के आने की आहट व वार्त्तालाप की आवाज सुन नीचे आए। आगंतुकों को देखने लगे, माँ को देखा, बच्चे माँ की छाती से चिपक दूध पीते हैं, दूध पिलानेवाली को तुरंत पहचानते हैं।

शुचिता ने किशोर बच्चों को देख बाँहें फैलाईं, दोनों बच्चे बोले, ''मम्मी!'' माँ ने दोनों बेटों को बाँहों में भर लिया।

सास-श्वसुर दोनों पहचान गए, देखा—यह शुचिता है।

डॉ. आदित्य ने कहा, ''हाँ यह आपकी बहू शुचिता है। इसे एड्स नहीं है। यह तीन साल से हमारे घर, हमारे पास ही रही है। हम एड्स रोगियों की चिकित्सा करते हैं, उन्हें देखते हैं, इलाज करते हैं।'' डॉ. नेहा ने शुचिता से हाथ लगाकर बोला, ''दीदी, पानी पिलाओ!'' शुचिता के हाथ से दोनों ने पानी पिया।

मन-ही-मन प्रसन्न शुचिता के श्वसुर ने दोनों को हाथ जोड़ धन्यवाद दिया। सास भी समझ गई, उठकर शुचिता को बाँहों में भर गले लगा लिया। दोनों के आँसू छलक आए।

डॉ. आदित्य, डॉ. नेहा दोनों को मानवीय, नैतिक कर्तव्य पूरा कर बड़ी तसल्ली हुई। भरोसा हो गया, घरवाले अब शुचिता से घृणा नहीं करेंगे।

कुछ देर बाद दोनों लौटने को उठे। डॉ. आदित्य के दोनों बच्चे ''बुआजी टा टा-टाटा'' कह चलने लगे।

शुचिता की नई जिंदगी की शुरुआत हुई थी। वह बेहद प्रसन्न थी। कुछ ही दिनों में सब ठीक हो गया।

इस बीच शुचिता ने अपने देवर-देवरानी के बारे में पूछा। पता चला कि देवरानी देवर को ले मायके में रहने लग गई।

शुचिता क्या आई, बुजुर्ग सास-श्वसुर को वरदान मिल गया, शुचिता बुजुर्ग सास-श्वसुर की तन्मयता से सेवा करने लगी।

बुजुर्गों को सेवा और प्रेम ही तो चाहिए और वैधव्य से दुःखी महिला को घरवालों का प्रेम। घर में सब खुश व प्रसन्नता से रहने लगे।

वार्ड नं. ४, गणेशपुरा मोहल्ला, लाखेरी
जिला-बूँदी-३२३६१५ (राजस्थान)
दूरभाष : ०९९८२४९१५१८

जल है तो सुनहरा कल है

• दुर्गादत्त ओझा

प्रश्नोपनिषद् के अनुसार हमारा शरीर पंच महाभूतों से मिलकर बना है, यथा—पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश। (आकाशे एष देवो वायु: अग्नि: आप: पृथिवीत्येतानि पञ्च महाभूतानि शरीरारम्भकाणि।) जल प्रकृति द्वारा सभी जीवों को प्रदत्त नि:शुक्ल उपहार है, जिसका कोई विकल्प भी नहीं है। विश्व में मात्र जल ही एक ऐसा पदार्थ है, जो तीन रूपों—ठोस (बर्फ), द्रव (जल) तथा गैस (जलवाष्प) के रूप में पाया जाता है। अतुल मात्रा में जल का पाया जाना हमारी पृथ्वी की एक विशेषता है, इसी कारण सौरमंडल के सभी ग्रहों को छोड़कर केवल पृथ्वी पर ही जीवन की उत्पत्ति हुई। पृथ्वी पर कुल जल की मात्रा का आकलन १४६ करोड़ घन किलोमीटर किया गया है। परंतु इतना पानी होते हुए भी स्वच्छ-पीने योग्य या मीठा पानी इसका मात्र एक प्रतिशत ही है, शेष ९७ प्रतिशत समुद्रों में लवणीय जल है और दो प्रतिशत बर्फ के रूप में हिमनदों में है।

यदि हमारे शरीर का रासायनिक विश्लेषण किया जाए तो विदित होता है कि इसमें ६०-६५ प्रतिशत जल ही है। मानव शरीर के अलावा अन्य जीवों में भी जल की मात्रा बहुतायत होती है। यथा—मुरगी में ७४ प्रतिशत, मेढक में ७७ प्रतिशत, जैलीफिश में ९५ प्रतिशत जल ही होता है। इसी प्रकार हम प्रतिदिन खाद्य पदार्थों का सेवन करते हैं, इनमें भी जल की अधिक मात्रा विद्यमान रहती है। हमारे शरीर को जल की प्राप्ति पेय तथा खाद्य पदार्थों से प्राप्त होती है। वैज्ञानिकों के अनुसार एक वयस्क व्यक्ति को प्रतिदिन लगभग १.७५ लीटर जल की आवश्यकता होती है। कुछ जानवरों के शरीर में तो ऐसी व्यवस्था होती है, जिससे वे बिना जल के कई दिनों तक जीवित रह सकते हैं। इसका उदाहरण रेगिस्तान का जहाज ऊँट है। कई रेगिस्तानी पौधों में भी ऐसी व्यवस्था होती है, जिससे वे बिना पानी के कई दिनों तक जीवित रह सकते हैं।

शरीर में जल के कार्य

हमारे शरीर में जल के निम्नांकित प्रमुख कार्य हैं—

१. जल शरीर के तापमान को नियंत्रित करता है तथा पूरे शरीर की उष्मा को समान रूप से बनाए रखता है।

२. जल रक्त को तरल बनाए रखता है, जिससे रक्त समान रूप से गतिशील रहता है।

३. यह शरीर में होनेवाली रासायनिक क्रियाओं का संतुलन बनाए रखता है।

सुप्रसिद्ध विज्ञान-लेखक। पुरातन एवं अद्यतन विज्ञान विषयों पर हिंदी में ५० से अधिक पुस्तकें, सहस्राधिक विज्ञान आलेख एवं शताधिक शोध-पत्र प्रकाशित। पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर लेखन, अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों एवं सम्मानोपाधियों से अलंकृत।

४. जल शरीर से अनावश्यक तत्त्वों को मूत्र, पसीना तथा मल के रूप में बाहर निकालता है।

५. जल भोजन के पौष्टिक तत्त्वों को शरीर में एक अंग से दूसरे अंग तक पहुँचाकर उन्हें पचाने में सहायता करता है।

६. शरीर के कई अंगों को घर्षण से बचाने तथा उन्हें शुष्क होने से बचाता है।

७. शरीर में जल की मात्रा इलेक्ट्रोलाइट तत्त्वों की सांद्रता को प्रभावित करती है, इनमें संतुलन होना हमारे शरीर को सुचारु रूप से कार्य करने हेतु आवश्यक है।

जल का उभयचारी रूप

आयुर्वेद के अनुसार जल सभी रोगों की ओषधि है (आप: सर्वस्य भेषज:)। इसी प्रकार विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) के अनुसार शरीर में ८० प्रतिशत रोगों का कारण भी जल है। अत: जल रोग-शामक एवं रोगकारक दोनों ही रूप में उभयचारी भूमिका निभाता है। वैदिक शास्त्रों में जल को अन्न की अपेक्षा श्रेष्ठ बताया है।

जल का औषधीय रूप

यद्यपि चिकित्सा की कई विधियाँ विद्यमान हैं तथापि वर्तमान में जल चिकित्सा अर्थात् 'वाटर थैरैपी' ने भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। जल के औषधीय गुण विषयक संक्षिप्त एवं महत्त्वपूर्ण जानकारी निम्नवत् हैं—

१. शरीर के किसी अंग में मोच आने की दशा में उस अंग को लगभग आधे घंटे पानी में डुबोकर रखना चाहिए, क्योंकि उस अंग का तापमान पानी द्वारा कम कर देने से रक्तस्राव कम पड़ जाता है।

२. गुनगुना पानी पीने से खाँसी कम हो जाती है तथा जलन भी

कम होती है। जुकाम के कारण यदि नाक बंद हो जाए तो उबले हुए पानी में विक्स डालकर नाक से भाप लेने पर नाक खुल जाती है।

३. गरमियों में जब रक्तप्रवाह नाक से होने लगता है, तब सिर पर ठंडा पानी डालने से रक्तप्रवाह बंद हो जाता है।

४. दस्त हो जाने पर अथवा लू लग जाने पर शरीर में पानी के साथ-साथ सोडियम-लवण की भी कमी हो जाती है। इसके लिए पानी में एक छोटा चम्मच शक्कर एवं एक-चौथाई नमक डालकर बार-बार लेने से आराम मिलता है।

५. यदि आँख में कोई रसायन गिर जाए तो उस आँख को तत्काल ठंडे पानी से धोना चाहिए। इसी प्रकार धूल या कोई सूक्ष्म कीट आदि आँख में पड़ने पर भी जल से धोना चाहिए।

६. जल से किए जानेवाले उपचारों में 'कटिस्नान' भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इससे शरीर में एकत्र विजातीय पदार्थ शरीर से बाहर निकलते हैं। इससे कमजोर आँतों को बल मिलता है, पुरा बुखार, कब्ज, गैस, बवासीर, डायरिया, स्वप्नदोष आदि रोगों में आराम मिलता है।

जलजन्य रोग

वस्तुत: जल निश्चित तौर पर कई ऐसे रोगाणुओं और रसायनों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का बहुत अच्छा वाहक है, जो पानी के साथ हमारी आँतों में पहुँचकर अनेक रोगों को उत्पन्न करते हैं, जैसे—हैजा, मोतीझिरा (टायफॉइड), पेचिश, अतिसार, सिस्टोसोमियासिस, संक्रामक यकृतशोथ, कालाजार, मलेरिया, खुजली, पेराटाइफॉइड ज्वर, कंजक्टिवाइटिस, रोहे, नारू, फ्लोरोसिस, कैंसर, डेंगू, पोलियो, फाइलेरिया, पीला ज्वर, स्लीपिंग सिकनैस आदि।

ऐसा देखा गया है कि पानी की कमी, खराब व्यक्तिगत स्वच्छता तथा व्यर्थ पदार्थों के निबटान की उचित व्यवस्था के अभाव में भी कई रोगों की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं।

वर्तमान में प्रदूषित जल पीने तथा कृषि में रासायनिक उर्वरकों के असंतुलित एवं अनुचित उपयोग से भी स्वच्छ पीने के पानी की समस्या भी गंभीर होती जा रही है, क्योंकि प्रयोग किए गए रासायनिक उर्वरकों का अधिकांश भाग भूमि में रिसकर या अन्य तरीकों से भू-जल, नदियों, तालाबों और झरनों में मिल जाता है, फलत: जलस्रोत प्रदूषित होते जा रहे हैं। अधिकांश रासायनिक उर्वरकों का अवशिष्ट प्रभाव श्वसन-तंत्र तथा आहार-तंत्र को प्रभावित करता है। पीने के पानी में नाइट्रेट तथा फ्लोराइड की अधिक मात्रा होने से बच्चों में 'ब्ल्यू बेबी सिंड्रोम' तथा फ्लोराइड की अधिकता से दंत एवं अस्थि फ्लोरोसिस जैसे भयानक रोग हो चुके हैं। हमारे देश में अनुमानत: ५ करोड़ लोग फ्लोरोसिस रोग से ग्रसित हैं। प. बंगाल, छत्तीसगढ़, उत्तर प्रदेश, बिहार, गोवा, महाराष्ट्र तथा केरल के कुछ भागों में भू-जल आर्सेनिक विषालुता से भी प्रभावित है।

आजकल तो बोतल-बंद पानी भी सुरक्षित नहीं है। मार्च २०१८ में अमेरिका में किए गए अध्ययन के अनुसार बोतल-बंद पानी, जो बाजार में बिकता है, उसमें भी प्लास्टिक के नैनो कण प्रेक्षित किए जा चुके हैं।

पानी कब एवं कैसे पीएँ

पानी पीने हेतु बहुत सी बातें ध्यान देने योग्य हैं। सर्वप्रथम पानी छाना हुआ और पूर्णत: शुद्ध होना चाहिए। पानी पीने का सर्वोत्तम तरीका यह है कि जब पेट खाली रहे, तभी पिया जाए। पानी को पेट में एकदम से उड़ेलना नहीं चाहिए, वरन् उसे घूँट-घूँट इस तरह पीना चाहिए कि मुँह में वह कुछ क्षण रुका रहे। उसका तापमान मुँह के तापमान जितना बन जाए तथा जीभ आदि की ग्रंथियों से निकलनेवाले स्रावों का समावेश हो जाए। कुछ विशेष परिस्थितियों में ही अधिक पानी पीना चाहिए, यथा—बुखार आने पर, लू लगने पर, पेशाब संबंधी रोग होने पर, रक्तचाप अधिक होने पर, हृदय की धड़कन तेज होने पर, कब्ज, पेट की जलन जैसी शिकायतें होने पर सामान्य स्थिति की अपेक्षा अधिक जल पीना उचित रहता है। हमेशा अच्छी तरह हाथ धोकर ही जल को पीना चाहिए एवं टोंटीदार लोटे से ही घड़े से जल निकालना चाहिए।

भोजन के आधा घंटा पूर्व जल पी सकते हैं, भोजन के साथ एवं भोजन करने के तत्काल बाद अधिक जल पीने से पाचन में गड़बड़ी होती है। प्रात:काल अर्थात् उषाकाल में जल पीना शरीर के लिए लाभदायक एवं रोगशामक भी है, तली-गली चीजों के सेवन, फल-मिठाई आदि के सेवन के तत्काल बाद जल नहीं पीना चाहिए। प्रात:काल बिना कुछ खाए चाय पीना शरीर में अम्लता, आमाशयव्रण आदि रोग बढ़ाता है। जल हमेशा ताँबे के पात्र, जो जीवाणुनाशी होता है, में रखना चाहिए।

जुकाम, गले के रोग, खाँसी आदि होने पर गुनगुने पानी में नमक डालकर पीना चाहिए। थकावट की स्थिति में गुनगुने पानी में थोड़ा नमक डालकर स्नान करने से शरीर तरोताजा हो जाता है।

वर्तमान में जल-संकट के कारण

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में जल की उपलब्धता एक-तिहाई रह गई है। अर्थात् १९५२ से लगातार जनसंख्या वृद्धि, जल के उपयोग में वृद्धि के कारण प्रतिव्यक्ति जल की उपलब्धता में गिरावट आई है। सतही जल-स्रोतों के अभाव में हमारी पूर्णरूपेण निर्भरता भू-जल पर बढ़ चुकी है तथा उसका निरंतर दोहन करने से कालांतर में जल की समस्या विकराल रूप धारण कर त्रासदी उत्पन्न करेगी। जल संकट के निम्नांकित कारण हैं—

जनसंख्या वृद्धि, वृक्षों की अंधाधुंध कटाई, बढ़ता औद्योगिकीरण, कम होती वर्षा का परिमाण, बढ़ता शहरीकरण, विलासिता एवं भोगवादी प्रवृत्ति, अत्यधिक भू-जल दोहन, जल की कृषि एवं अन्य कार्यों में अनावश्यक खपत, परंपरागत जल संग्रहण तकनीकों की उपेक्षा तथा जल-शिक्षा का अभाव।

जल-संरक्षण एवं वर्षाजल संचयन

वैज्ञानिकों ने आकलन किया है कि इक्कीसवीं सदी में जल का विवेकपूर्ण उपयोग नहीं किया गया और पृथ्वी की कोख को फिर भू-जल से नहीं भरा गया, तो आनेवाले कुछेक वर्षों में ही हमें पानी की त्रासदी को भयंकर रूप से झेलना पड़ेगा। हमें जल-प्रबंधन को व्यक्तिगत, सामुदायिक स्तर तथा सांस्थानिक स्तर पर मौलिक कर्तव्य के रूप में करना होगा तथा कृषि कार्यों में, जहाँ जल का अत्यधिक अपव्यय हो रहा है, उसको रोकने के प्रभावी कदम उठाने होंगे।

• हमारे दैनिक जीवन के क्रियाकलापों का यदि हम अवलोकन करें तो वैज्ञानिक तरीकों से एक व्यक्ति लगभग २०० लीटर फिल्टर पानी बचा सकता है। इसमें मात्र हमें हमारी आदतों में परिवर्तन करना होगा, यथा—प्रात:काल दातुन करने में मग का प्रयोग, स्नान में बालटी का, न कि शॉवर का, शौचालय में कपड़े धोने से बचे पानी का, रसोई कार्यों में बरतन धोने में टब का, लॉन या बगीचे में पानी सूर्योदय से पहले अथवा सूर्यास्त के पश्चात् झारे से, गाड़ी धोने में बालटी आदि का प्रयोग करके जल की बचत की जा सकती है।

• इसी प्रकार घर में मेहमान को प्यास लगने पर ही जल पिलावें, अन्यथा वे दो घूँट पानी पीकर पूरा गिलास झूठा करके रख देते हैं तथा उस गिलास को धोने में भी और जल का अपव्यय होता है। प्रायश: आपने देखा होगा, लोग रेल अथवा हवाई यात्रा करते समय, विशेषत: वातानुकूलित डिब्बों में पानी की कुछ भरी बोतलें, जिनके लिए वे प्रति बोतल १५-२० रुपए देते हैं, दूसरे यात्रियों के लिए उपहारस्वरूप छोड़कर चले जाते हैं, जिसको वे फेंक देते हैं। कल्पना करिए, भारत में कितनी रेलें, उनमें वातानुकूलित डिब्बे और असंख्य लापरवाह यात्री एवं लाखों में बिका पानी का अपव्यय! यह हाल है भारत के पढ़े-लिखे संभ्रांत व्यक्तियों का। हमारे सभी धर्मों में जल के अपव्यय को, झूठे भोजन छोड़ने को इसीलिए पाप माना गया है।

• अब हमारी लापरवाही कितनी है कि हम हमारे घरों, कार्यालयों, सामुदायिक स्थानों पर लाखों रुपए खर्च करते हैं, परंतु वॉश बेसिन के टपकते पानी को रोकने हेतु टोंटी का वासर नहीं बदलते, जिनसे प्रतिदिन लगभग १७ लीटर या उससे ज्यादा पानी व्यर्थ चला जाता है। इसी प्रकार हम अपने स्वार्थ के लिए सरकारी पाइप लाइनों को तोड़ देते हैं, जिनसे लाखों लीटर पानी व्यर्थ चला जाता है।

• हमें जल को अगली पीढ़ी के लिए बचाना है, क्योंकि जल की मात्रा तो सीमित है, परंतु हम असीमित होते जा रहे हैं, हमारी वर्तमान में भोग-विलास की जल अपव्यय की आदतें दिनोदिन बढ़ती जा रही हैं। अतएव हमें छोटे बच्चों को जल के किफायती उपयोग की शिक्षा देनी होगी, आम व्यक्ति में जनचेतना का संचार करना होगा।

भू-जल पर बढ़ती देशव्यापी निर्भरता को देखते हुए इसके पुनर्भरण हेतु वैज्ञानिक तरीके अपनाने होंगे। वर्षा जल-संचयन की हमारी प्रादेशिक परंपराओं के प्रति हर व्यक्ति को जागरूक करना होगा, पुराने जल-स्रोतों का अनुरक्षण करने की व्यवस्था करनी होगी, भू-जल दोहन पर अधिनियम लागू करने होंगे, विशेषत: डार्क जोनवाले अधिकांश क्षेत्रों में।

कृषि कार्यों में भी जल के अपव्यय को रोकने हेतु टपकन सिंचाई, फव्वारा सिंचाई के प्रति किसानों को जागरूक करना होगा तथा कम पानी में अधिक उपज देनेवाली फसलों के उत्पादन हेतु किसान भाइयों को अभिप्रेरित करना होगा। विदेशों में जल के अपव्यय पर दंड का भी प्रावधान है, जिसे भारतीय परिप्रेक्ष्य में भी सोचना होगा।

अत: जल का संरक्षण-संचयन जल के प्रत्येक उपभोक्ता का नैतिक दायित्व है, न कि मात्र सरकार का। तो आइए, आज ही इस सत्य संकल्प को लेकर हम इस प्रकृति प्रदत्त अनमोल संपदा का सुनहरे कल के लिए संरक्षण करें।

'गुरुकृपा', ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरा
जोधपुर-३४२००१ (राज.)
दूरभाष : ९४१४४७८५६४

सच्चे मित्र हैं पेड़

बाल-कविता

• सूरजपाल चौहान

गरमी में छाया देकर
तन की तपन बुझाते पेड़,
वर्षा-ऋतु में नहा-धोकर
हरे-भरे हो जाते पेड़।

और बसंती ऋतु में तो
फूलों से लद जाते पेड़,

प्रदूषण को दूर भगाते
मंद-मंद मुसकाते पेड़।

हवा चले जब सन-सन,
झूम-झूम लहराते पेड़,
जख्म पत्थरों से खाकर
हमको फल दे जाते पेड़।

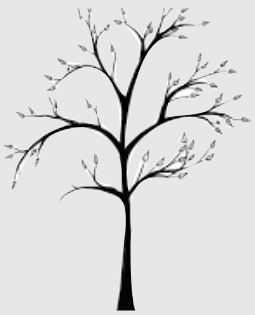

पशु-पक्षी और मानव तक को
जीवन देते हैं ये पेड़,
तन ढकते ये धरती माँ का
रिश्ता खूब निभाते पेड़।

आँधी औ' तूफानों में
धर्मवान बन जाते पेड़,

दुनियावालो सच-सच सुन लो
सच्चे मित्र हैं ये पेड़।

सी-१३०-ए, सेक्टर-२०
नोएडा-२०१३०१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९७१११९६८५५

कोई तो है

मूल : **गायत्री सराफ**
अनुवाद : **देवदत्त यदुमणि नायक**

सात साल बाद एक दिन प्रयास भैया का फोन आया कि वे आ रहे हैं, उसके बाद पल्लवी का पाँव जमीन पर नहीं पड़ रहा था। वह खुशी से नाच रही थी और गीत गुनगुना रही थी। वह अपने बचपन में बिताए पलों को याद करते हुए अतीत में खो गई। वहीं देखने लगी मम्मी, पापा, भैया और खुद को।

यह प्रयास भैया उससे चार साल बड़े हैं, लेकिन वह बचपन में उनको भैया नहीं बुलाती थी। मम्मी, पापा और दूसरे लोग जिस तरह उसे नाम से बुलाते थे, वह भी वैसे ही बुलाती थी। मना करने पर भी किसी की सुनती नहीं थी, बोलती थी कि वह तो मेरा दोस्त है, भैया क्यों बुलाऊँ?

थोड़ा बड़ा होने के बाद भैया ने खुद भैयाई दिखाई। आम, अमरूद दिखाते हुए बोले, 'भैया बुलाने पर मिलेगा।' हाँ, बोलकर वह ले तो लेती थी, लेकिन उसे भैया बुलाने का मन नहीं करता था। भैया उसकी चोटी खींचते थे। उँगली से सिर को ठक से मारते थे। बात-बात पर दोनों एक-दूसरे से लड़ते थे, मगर लड़ाई के बाद समझौता, फिर प्यार-दोस्ती; कोई किसी को छोड़कर नहीं रह पाता था।

अब बीत गया अबोध बचपन···भैया के स्वभाव बदल गए। ठीक पापा की तरह वे गुस्सैल बन गए। पापा और भैया के बीच बढ़ते नोक-झोंक व बहसबाजी से पापा के मान-सम्मान को ठेस पहुँची थी। तब उन्होंने उड़ीसा के बाहर एक हॉस्टल में भैया को डाल दिया। वे वहाँ रहकर पढ़ाई करने लगे।

भैया ने घर से बाहर हॉस्टल में रहकर इंजीनियरिंग व मैनेजमेंट की पढ़ाई पूरी की, उसके बाद वे मुंबई की एक कंपनी में नौकरी करने लगे। इसी दौरान उन्हें एक दलित लड़की से प्रेम हो गया और उन्होंने उस लड़की से शादी कर ली। माता-पिता के विरोध के कारण उन्हें शादी के समय घर आने की अनुमति नहीं मिली। वे भी अभिमान के कारण घर से दूर रहे। लेकिन मैंने एक-दो बार उन्हें फोन किया था। फिर एक लंबी नीरवता के बाद अचानक यह खबर आई कि भैया आनेवाले हैं।

मैंने पूछा, 'भाभी को साथ लेकर आओगे न, भैया?' पर उन्होंने कहा, 'मुंबईवासियों का गणपति प्रेम अद्‌भुत है। गणेश-पूजा के समय वे लोग कहीं नहीं जाते; मुंबई में ही रहते हैं और ग्यारह दिन चलनेवाले इस महोत्सव का लुत्फ उठाते हैं।'

'तो भैया, क्या अकेले आएँगे? ठीक है, आइए! आना-जाना पहले शुरू तो हो, सब ठीक हो जाएगा।'

पल्लवी खुश थी। फिर वह मन-ही-मन सोचने लगी, उसके बाद उसने अपने मन से बात की—'कैसे दिख रहे होंगे भैया अभी—मोटे, पतले, गोरे या साँवले? वैसे ही गुस्सैल होंगे या शांत? हाय रे मन, तू कैसे जानेगा? रुक, धीरज धर।'

उसने अपने पति संग्राम को फोन किया और पहाड़ी शहर नेडरहाट में पढ़नेवाले बेटे को भी। चिकचाक···चिकचाक···खुशी का समय है। देशी गुलाब में घुला थोड़ा और गुलाबी रंग। मन खुश हो तो समय में आता है छंद।

तयशुदा दिन पर प्रयास आया, जो मुंबई में जेनिथ कंपनी में सॉफ्टवेयर इंजीनियर है। इसके खातिरदारी के लिए छुट्टी पर थे संग्राम। पल्लवी कामकाजी महिला नहीं है। उन दोनों ने प्रयास का भरपूर स्वागत किया, साथ ही फाटक पर खिली हुई मधुमालती का अभिवादन तथा बहुत दिनों के बाद घर लौटने पर चार-छह पतंगों का प्रीतिभरा आह्वान।

पल्लवी ने देखा कि भैया अभी बिल्कुल पापा की तरह दिख रहे हैं—ज्यादा गोरा, ऊँचा और सेहतमंद। वे गुस्सैल नहीं, शांत लग रहे हैं; स्नेहशील व भ्रातृत्व से भरपूर। बातचीत वैसी ही है, जैसे पहले थी। लगा ही नहीं कि सालों बाद एक-दूसरे से मिल रहे हैं।

पता नहीं कहाँ से तभी दो कबूतर गुटरगूँ करते हुए उड़कर आए और बरामदे की रेलिंग पर बैठ गए। पंख फड़फड़ाकर उड़ गए। उनके पीछे मैना की एक जोड़ी आई, जैसे पहले से उनकी बात हुई हो और फुदकने लगी। अपनी भाषा में क्या-क्या बातें करने लगीं, फिर फुर्र हो गईं।

यह सब देखकर प्रयास को काफी अच्छा लगा। पूरा वातावरण खुशनुमा हो गया, जैसे जिंदगी स्पंदित हो रही हो। पंख की फड़फड़ाहट में भी एक शब्द-माधुरी हो सकती है, ऐसा उन्होंने महसूस किया। मुंबई की भाग-दौड़ वाली जिंदगी में यह स्पंदन या यह अनुभव नहीं होता है। पल्लवी ने संग्राम से पूछा, ''इन पंछियों को क्या आपने यहाँ इस तरह देखा था?''

''हाँ, आते हैं कभी-कभी···सुख-दुःख बाँटते हैं···''

''आज दुःख नहीं, मेरे भैया के साथ जरूर सुख बाँटने आए हैं।''

प्रयास के चेहरे पर एक चमक उभरी। उन्होंने घूमकर देखा, बहन का राज्य, उसकी सीमा, परिसीमा सब स्वच्छ व परिपूर्ण है। यहाँ सुशासन जरूर है। उन्होंने तारीफ की कि लड़कियों को सच में कितने कला-कौशल पता होते हैं—सूखती हुई डाली पर फूल खिल सकते हैं, फटी बाँसुरी में भी सात सुर भर सकते हैं।

''इस पल्लवी को देखो, अपने घर-परिवार को किस तरह शोभामय

बनाकर रखी है।'' यह बात सुनकर खुशी से उछल पड़ी पल्लवी।

प्रयास तब मन-ही-मन सोचने लगा, 'हर नारी के लिए इसी कारण मेरे मन में श्रद्धा और सम्मान है। दलित लड़की प्रीति को मैंने जीवनसंगिनी बनाया। माता-पिता के विरोध का सामना किया। अपने लोगों के पराए बन जाने की यातना सही, मगर मैं मेरी इस प्यारी बहना को परायी कैसे समझ लूँ बताओ।'

''भैया, भाभी याद आ रही हैं क्या?'' पल्लवी ने पूछा। फिर खिलखिलाने लगी। वह एक कप चाय लाई और बोली, ''नहा-धो लो। बड़ा-घुघनी बनी है। तुम्हें पसंद है न! खाकर खूब गप्पे मारेंगे। वर्षों की बातें बाकी हैं, अरे हाँ, संग्राम! भुट्टा लाए हो न? शाम को हमारे बीच भुट्टा खाने की प्रतिस्पर्धा होगी। याद है न भैया, वह मुकाबला—मैं किस तरह चैंपियन बनती थी···हमेशा!''

हो-हो···कुछ भी तो नहीं बदला था। बह रही थी उस दिन की वही स्नेहधारा। उसके बाद पल्लवी ने पति संग्राम को फिर एक चेतावनी दी, ''हम भाई-बहन की बातचीत की तुम बिल्कुल मजाक मत बनाना, समझे! नहीं तो जुर्माना देना पड़ेगा।''

''ठीक है, मैं लीना की सहायता करूँगा। जुर्माना क्यों दूँ?''

''अहा, कितना अच्छा तालमेल है पति-पत्नी में!''

''तो यह लीना कौन है?''

''सबके लिए ट्रे में जो फिर से चाय लेकर आई, वही लीना है। मोबाइल चार्जर ले आ बोलने पर जो दे गई, वही लीना है। दूध उबल रहा है, गिर जाएगा, जा के देख, जो देखने गई, वही लीना है। इस कमरे से उस कमरे तक जो दौड़कर जा-आ रही है, वही तो लीना है।''

''छोटी-सी एक लड़की, हवा में उड़ रही है। हवा में दौड़ रही है। तेरा नाम क्या है रे? ओहो, लीना न! छोटी-सी लड़की, नन्ही-सी चिड़िया, तेरा घोंसला कहाँ है?'' पल्लवी ने पहचान करवाई।

''एक अनाथ लड़की है। कोई नहीं है इसका।''

''है, मेरी दीदी है, बाल-सुधार केंद्र में।''

पल्लवी की बात शायद उसको चुभी। उसने धीरे से कहा, ''कोई तो एक है उसका।''

''रहने से क्या होगा? वह इसकी मदद करेगी? मैंने इसको सहारा दिया है, भैया। घर में लाकर रखा है। यह पढ़ाई कर रही है? स्कूल के हाजिरी खाते में इसका नाम है।''

प्रयास ने कहा, ''अच्छा किया पल्ली, लड़की को लाकर घर में रखा है और पढ़ने भेज रही है।''

लीना का सिर सहलाते हुए फिर से बोला, ''पढ़ रही है न! मन लगाकर पढ़ना। प्यारी बच्ची है। आज स्कूल नहीं गई?''

पल्लवी बीच में ही बोल पड़ी, ''तुम आए हो न भैया, संग्राम की छुट्टी है। इसकी भी छुट्टी है। पाँच दिन का पूरा वक्त है तुम्हारे लिए।''

''क्या जरूरत थी इसकी? इन सब लौकिकता में मुझे विश्वास नहीं है।'' प्रयास ने कहा और लीना की ओर देखा। वह स्कूल की कोई छात्रा जैसी नहीं लग रही थी। मुरझाया चेहरा, उड़े रंग के कपड़े, चमक है नहीं। किशोरावस्था की पढ़नेवाली लड़की के हाव-भाव नहीं थे उसमें। उस लड़की के प्रति उनका दया-भाव उभरा। लेकिन उसे पत्नी की एक बात याद आ जाने से वह उस दया-भाव से मुक्त हो गया।

प्रीति बोलती है—'छोटी-छोटी बातों को दिल पर लेकर तुम दुःखी हो जाते हो। ऐसे में कंपनी कैसे चलेगी? उसके हित में कठोर फैसले कैसे लोगे? इतनी भावुकता तुम्हें शोभा नहीं देती, मिस्टर हसबैंड!' सच में मराठी सुंदरी 'प्रीति' सिर्फ उनकी जीवनसंगिनी नहीं है, बल्कि जीवन को दिशा भी वही देती है; लेकिन अपने स्वभाव का मैं क्या कर सकता हूँ!

मन में प्रीति का रंग लेकर वे फिर से लौट आए बहन की खुशहाल दुनिया में। नहाना-धोना, जलपान, फिर दिल खोलकर गपशप। गोद में लैपटॉप लेकर सबको दिखाया अपना संसार—पत्नी और बेटे से जुड़ी अपनी जिंदगी और जीवनशैली।

''अरे, मैं तो भूल गया!'' कहकर वे बीच में ही उठ गए। बैग में से तीन पैकेट निकालकर पल्लवी के हाथ में दिए। बोले, ''तुम लोगों के लिए प्रीति का भेंट है। साथ में थी—लोनावला की खास स्वादिष्ट 'चिकी'। छोटे से एक और डब्बे में थी एक मोती की माला मैचिंग कर्णफूल के साथ। लीना से कहा, ''यह तेरे लिए है।''

इस पर पल्लवी ने कहा, ''भैया! यह तो काफी महँगी है। लीना कहाँ रखेगी? मेरे पास ही रहने दो। बाहर जाने पर वह पहन लेगी।''

फिर बढ़ा हुआ नन्हा सा हाथ लौट गया। उस पर प्रयास की माया उमड़ी। तभी संग्राम ने कहा, ''ठीक है, तुम दोनों भाई-बहन बातें करो। मैं लीना को लेकर रसोई सँभालता हूँ।''

''रुको, रुको, इस नई मिठाई चिकी का एक पीस खाकर जाओ। लीना, दो कप ग्रीन टी लाना तो।''

खाने में छप्पन भोग परोसे गए। ''इतना सारा, किसने बनाया, बहन पल्लवी रानी! तू तो मेरे साथ गप्पें मार रही थी?''

संग्राम बोले, ''लीना ने बनाया और मैंने उसकी सहायता की। समझे भैया! लेकिन इन सबके पीछे पल्लवी ही है। कुछ नहीं जानती थी वह, पल्लवी ने उसको सिखाया है। सीखने के बाद अब वह खुद बना लेती है।'' प्रयास को बात अच्छी नहीं लगी, लेकिन अपनी प्रशंसा होने के कारण पल्लवी को अच्छी लगी। वह प्रयास की प्लेट में दो पीस चिकन डालते हुए बोली, ''वह तो झोंपड़ी की लड़की है। हमारा खाना पकाना क्या जानेगी बेचारी?''

प्रयास थोड़े रुक गए; गले में खाना भी। खाते समय वे बीच में पानी नहीं पीते, लेकिन एक घूँट लिया। लीना को देखा, उसका मुँह सूख गया था। अपना घर हर किसी के लिए स्वर्ग होता है। घर की परिस्थिति को लेकर किसी के मन में ठेस पहुँचाना ठीक नहीं है, यह पल्लवी नहीं जानती। खाते वक्त वह फिर से कमियाँ ढूँढ़ने लगी—''दाल इतनी पतली क्यों है? भिंडी क्या ऐसे तली जाती है? चिकन में थोड़ा और मसाला

डलता, तेरा ध्यान किधर था?''

प्रयास ने देखा कि लीना बारंबार संग्राम की ओर देख रही है। ''क्यों? उनकी गलती क्या है? इन व्यंजनों को इन्होंने बनाया है?'' गलती किसी की भी हो, पर प्रयास को लगा, जैसे मैं दोषी हूँ। खाना बनाने में एक छोटी सी लड़की की कड़ी मेहनत लगी है, वे पचा कैसे सकते हैं? मुख में घुसते भोजन में से जैसे उनको उस छोटी सी लड़की का करुण दीर्घश्वास सुनाई दे रहा था।

पहले दिन कुछ और, दूसरे दिन सूर्योदय के बाद कुछ और! प्रयास ने समझना शुरू किया था। पल्लवी सुगृहिणी है। जीवन की कला की अधिकारिणी है। बगीचे में फूल खिलने की कहानी है।

'क्या, कैसा!' उन्होंने पढ़ना शुरू किया था। उन्हें समझ में आ गई कि इस सुंदर राज्य का वास्तुकार और चित्रकार उनकी बहन या जीजा नहीं, बल्कि कोई और है—नन्हे-नन्हे दो हाथों के साथ जो दस भुजा है, नन्हे पाँव से जो चलती है लाखों कदम। वे दोनों घर के मालिक हैं, प्रभु और वह भृत्य। वंशवाद होने को बाध्य है। वह अनाथ जो है। उसका कोई सहारा नहीं। वह हुक्म मानेगी ही मानेगी। अच्छे दिन, अच्छी जिंदगी कौन लाकर दे उसे?

जो कल खूबसूरत था, रुचिशील लगता था, आज वह निर्दय और निष्करुण लगने लगा। प्रयास समझ गए कि सबमें लीना के हाथ की कारीगरी है। लड़की छोटी जरूर है, मगर उसमें अनेक गुण हैं, उसके सिर पर घर का सारा बोझ है। वह इतना बोझ कैसे उठा लेती है—खाना बनाना, घर की सफाई करना, घर सजाना, पौधों में पानी देना, कपड़े धोना आदि-आदि का बोझ तो कम नहीं है! तो पल्लवी क्या करती है?

अनगिनत बातों में से उन्होंने अवश्य सही जवाब निकाल लिया। जो इस प्रकार है—वह आधुनिक है, पदस्थ अधिकारी की पत्नी, उसको लड़ना पड़ता है उम्र और सौंदर्य के साथ। रहना होता है अपडेट। इंटरनेट के जरिए स्मार्ट फोन, फेसबुक पर लोकप्रियता के लिए बटोरने होते हैं सैकड़ों लाइक। वहाट्सएप चैटिंग, टी.वी. सीरियल, प्रोफाइल के लिए परिपाटी का भी ध्यान रखना होता है। आधुनिक जीवनशैली के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है, वरना पूछता कौन है? और इसके लिए शोषित होते हैं लीना व रीना जैसे लोग। प्रयास के मन में भावना की एक नदी बह रही थी। ईंट के भट्ठों में, पत्थर की खादानों में बाल-श्रमिकों का शोषण किए जाने, गुलामी करवाए जाने की खबरें वे हमेशा पढ़ते थे, मगर सिर्फ वहीं नहीं, सारे घरों में भी चल रहा है यह शोषण। यही तो देख रहे हैं वे लीना नामक इस नाबालिग में। उसका शोषण नहीं हो रहा है? प्रयास अपनी भावनाओं की नदी के तट नहीं ढूँढ़ पा रहे थे। मन-ही-मन वे प्रीति को बोल रहे थे कि इन सब दु:खों को मैं हवा में नहीं उड़ा सकता, प्रीति? क्या करूँ, बताओ?

यह रात फिर से इनसान पहचानने की रात थी। संग्राम के साथ प्रयास कुछ वक्त बैठे, ड्रिंक लिया। पी-पीकर मदहोश हो गए संग्राम उठे, पर अपने बिस्तर पर नहीं गए, बल्कि लीना की चटाई पर चले गए। अचंभित हुए प्रयास। पहचान लिया मुखौटा पहने हुए इनसान को—तो ऐसा है यह? इस पीड़ा को भी सहती है लीना? उस रात चाँद-सितारे नहीं थे, था तो केवल अँधेरा। लेकिन दूसरे दिन की सुबह खूब उज्ज्वल थी।

□

हरिशंकर घूमने का कार्यक्रम था। फिर पति-पत्नी के बीच खींचा-तानी होने लगी। पल्लवी बोल रही थी कि लीना घर पर रहेगी, पर संग्राम कह रहे थे कि चलेगी। बीच में प्रयास आ गए। उन्होंने कहा, ''वह क्या सिर्फ काम करती रहेगी? वह भी चलेगी!'' लीना गाड़ी में बैठी। उसके होंठों पर मुसकान उभर आई। प्रयास को काफी अच्छी लगी वह मुसकान। हाँ, शीशु की मुसकान ईश्वर की मुसकान है। हे ईश्वर! तुम इसी तरह मुसकराते रहो। लोगों को सद्बुद्धि देते रहो।

हरिशंकर पुराण-प्रसिद्ध गंधमादन पर्वत की गोद में एक अपूर्व पर्यटन स्थूल है। प्रकृति रानी ने यहाँ ऐसी अकुंठित हरियाली बिखेरी है कि देखने से लगता है कि यहाँ पेड़-पौधों में तो जिंदगी है ही, साथ-साथ पत्थरों में भी है। यहाँ पत्थर के विभोर होकर प्रेमिका बन जाते हैं। अपूर्व इसका झरना भी काफी ऊँचाई से बहता है। इसका झर-झर शीतल जल। इस झरना में रोज स्नानोत्सव चलता है। वहाँ पहुँचते ही लीना को पल्लवी ने आगाह किया, ''इस पत्थर पर बैठ, झरने के पास मत जाना। पानी को छूना मत। सर्दी-बुखार होने पर तुझे कौन सँभालेगा?''

संग्राम ने प्रयास को बुलाया, ''तुम दोनों जाओ। पहले मैं इस मनमोहक परिवेश की शूटिंग कर लूँ।'' वे घूमने निकल गए। घूमते रहे। मुग्ध व चकित होकर रूपसी प्रकृति को कैमरे में कैद किया। वहाँ के बंदरों की बदमाशी और उछल-कूद को भी कैद कर लिया।

पहाड़, जंगल, झरना, चिड़िया, बंदर सबको लेकर हरिशंकर खूबसूरत है। प्रयास विभोर हो गए। वे लौट आए। लौटते वक्त उन्होंने दूर से देखा कि लीना पत्थर पर बैठी है। उसके बदन से सटकर कौन बैठा है? पहचान लिया—वह गीले कपड़ों में संग्राम है! वह हाथ घुमा रहा है—उसके कंधे पर, पीठ पर, फ्रॉक के अंदर। ओह!···कितना सांघातिक है।

लंबे-लंबे डग भरकर प्रयास जल्दी वहाँ पहुँच गए। संग्राम खड़े हो गए। बोले, ''शावर साथ ले आया था। आइए, स्नान का लुत्फ उठाते हैं।''

''चलो, हैंडीकैम रखकर आता हूँ। संग्राम के चले जाने के बाद प्रयास ने पूछा, ''लीना! वे कुछ कह रहे थे?''

''नहीं।''

''सच बता लीना, डरने की कोई बात नहीं?''

''पेशाब करने जाऊँ? क्या पूछ रहे थे? कुछ चिल्लर पैसा दिखाकर खनका रहे थे?''

मन-ही-मन उन्होंने सोचा, 'तो बहलाने-फुसलाने का नेटवर्क फेल हो गया। बच गई बेचारी···अहा! कहीं भी जरा सी शांति नहीं है इसको।' उसके बाद झरने के पानी में नहाने चले गए।

''इतना नहाने पर भी मेरा मन व शरीर नहीं भीग रहा है। मन हो रहा है कि नहाता रहूँ। ऐसा लग रहा है, जैसे कुछ जादू है इस झरने के पानी में।'' उन्होंने कहा और नहाते रहे।

पल्लवी ने बुलाया, ''भैया! असली जगह तो अभी बाकी है।

आओ, मंदिर देखते हैं।''

हरि और शंकर के मिलन का मंदिर हरिशंकर मंदिर। भक्तों का तीर्थस्थल। यहाँ हमेशा भीड़ रहती है। मंदिर-दर्शन और प्रसाद सेवन के बाद वे लोग जल्दी औट आए।

□

दूसरे दिन सुबह जाना है सोमतीर्थ रानीपुर-झरियाल, प्रसिद्ध चौंसठ योगिनी पीठ, चौंसठ कला, चौंसठ विद्या का स्थल। सब गए, लीना भी। यहाँ प्रयास बिल्कुल भक्त बन गए। शिला और सौंदर्य से भरपूर योगिनियों को देखा। आते वक्त संग्राम ने बताया, ''योगिनियों की संख्या अभी बासठ है। दो असली योगिनियों की चोरी हो गई थी। चोर ने उस जगह पर नकली योगिनियों को रख दिया है।'' यह बात सुनकर और उसका अवहेलित शक्ल देखकर प्रयास दु:खी हुए। उन्हें लगा, जैसे दु:ख और क्षोभ से अभी भी रो रही हैं योगिनियाँ। वहाँ का प्रसिद्ध इंद्रलाठ और सोमेश्वर मंदिर भी प्रयास ने घूमकर देखा। सबसे बड़ी बात, वे लीना के हाथ पकड़कर घूम रहे थे तथा उसको सबकुछ समझा रहे थे। वह समझे, चाहे न समझे, 'हूँ-हूँ' कर रही थी।

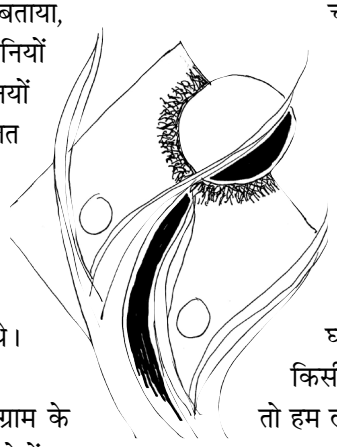

शायद यह सब पल्लवी सहन नहीं कर पाई। संग्राम के साथ वह वहाँ की भूल-भुलैया घूमी और आराम से दोनों एक जगह बैठ गए।

'तो यही एक मौका है!' प्रयास ने सोचा।

उन्होंने लीना से संग्राम के मंसूबे के बारे में पूछा। लीना डर गई और उनका हाथ छोड़कर दूर हट गई। प्रयास ने हिम्मत दी। काफी मुश्किल से बताया। बोली, ''उन्होंने अगर जान लिया कि मैंने आपको कहा है, तो मेरा और मेरी दीदी का गला घोट देंगे।''

''नहीं, नहीं, बता कुछ नहीं जानेंगे वे। बोल, तेरे पिताजी क्या तुझसे बुरा बरताव करते हैं?''

''हाँ, पिता क्या कभी अपनी बेटी को काटता है? उसके ऊपर सोता है? परेशान करता है? मुझे बहुत रोना आता है, इसलिए...'' कहते हुए वह सचमुच रो पड़ी।

''मत रो लीना, अच्छा, तू रोज स्कूल जाती है?''

आँखों से आँसू पोंछकर उसने कहा, ''कभी-कभार जाती हूँ। आधी छुट्टी में छुपकर भाग आती हूँ। घर पर बहुत सारे काम होते हैं न मुझको, लेकिन स्कूल बहुत अच्छा लगता है। किताबें, पढ़ाई...सबकुछ अच्छा लगता है। मैं पढ़ना चाहती हूँ...सहेलियों को, मेरी दीदी को देखना चाहती हूँ।'' फिर से उसकी आँखों में आँसू।

प्रयास ने एक बार लीना को देखा, एक बार योगिनियों को। उनके आँसू और इस लड़की के आँसू उन्हें एक जैसे लगे। दोनों आँसुओं का मोल समझे कौन? गगन चुप, पवन चुप। लौटते वक्त वे भी चुप।

तो रहने के दिन समाप्त। कल लौट जाएँगे प्रयास। बगीचे में सुबह की चाय पीते वक्त पल्लवी ने कहा, ''समय कितनी जल्दी बीत गया न, भैया!''

चाय का कप रखते हुए प्रयास बोले, ''समय अपने रास्ते, अपने लय में चलता है। हमें बस ऐसा लगता है। अच्छा पल्ली! आज सुबह-सुबह लीना को एक मुक्का क्यों जड़ दिया, हुआ क्या था?''

''आज तक एक कप चाय भी ठीक से बना नहीं पाई। गाली-मार चाहिए इसको।''

''लेकिन क्या यह सही है? पगली, तुमने एक नाबालिग को रखा है। उसको मार-पीट रही हो। हमारे देश में ऐसा कानून नहीं है। बाल-श्रमिकों की पीड़ा को लेकर फिलहाल काफी चर्चा है? हल्ला हो रहा है चारों ओर, ढूँढ़ा जा रहा है...सावधान!''

प्रयास की इस बात पर पल्लवी कुरसी से उठ गई। बोली, ''जानती हूँ, हमारा देश किस तरह कायदे-कानून से चल रहा है, समाधान के नाम पर क्या चल रहा है!''

''पल्लवी धीरे बोल, रिलेक्स।''

संग्राम को न सुनाई दे, अत: पल्लवी ने धीमी आवाज में फिर बात आगे बढ़ाई। बोली, ''देखो भैया! घर आकर चपरासियों के काम करने का कानून नहीं है। किसी लड़की को रखकर काम करवाने का कानून नहीं है। तो हम लोग करेंगे क्या? चलेंगे कैसे?''

प्रयास के इशारे पर तीनों बगीचे से चलकर ड्राइंग-रूम में बैठे। पंखा घिर्र-घिर्र घूमने लगा।

जब अपनी जगह पर अखबार टलमलाने लगा तो उसके ऊपर एक पेपर वेट रखते हुए प्रयास ने पल्लवी की बात का जवाब दिया, ''चलने की बात कर रही हो, पल्ली! दूसरे देशों में लोग जिस तरह चलते हैं, चाहें तो हम भी चल सकते हैं बिना नौकर-चाकर के; सिर्फ मानसिकता बदलनी है। उस तरह का वातावरण तैयार करना है।''

''हाँ, तू एक कामवाली बाई रख सकती है, उचित मेहनताने के साथ।''

बात पल्लवी को अच्छी नहीं लगी। इसलिए वह दूसरी ओर देखते हुए बोली, ''कामवाली बाई बहुत हिसाब रखनेवाली होती है, आती है, फटाफट काम करके चली जाती है। नहीं जमेगा। लीना ही रहेगी यहाँ।'' अपना फैसला सुनाकर पल्लवी अंदर चली गई।

दोपहर में प्रयास ओड़िया अखबार पढ़ रहे थे। आग बरस रही थी चारों ओर, पूरी धरती पर। बीच आसमान में अचानक एक चीख सुनाई दी। ''क्या हुआ?'' प्रयास ने जाकर देखा—इस कमरे में भी वही आग की लपट है। आयरन करते हुए छोटी सी कोई गलती कर देने पर पल्लवी आयरन से लीना को डरा रही थी। वह तुरंत रसोईघर में घुसा, फ्रीज खोला। बर्फ के टुकड़े लाकर लीना के हाथ पर रगड़े और सोचा कि मेरी बहन ने अपने उस खूबसूरत दिल को कहाँ गँवा दिया? क्यों दूसरे हजारों पत्थर दिल लोगों में वह शामिल हो गई? क्यों सात सुरों से भरी बाँसुरी को तोड़ दिया?

जानेवाले दिन पल्लवी और संग्राम तैयार हो रहे थे प्रयास को स्टेशन छोड़ने के लिए, लेकिन उन्होंने मना किया। कहा, ''मैं चला

जाऊँगा।'' टैक्सी के लिए टैक्सी स्टेंड फोन किया है।

सही समय पर टैक्सी आई। प्रयास ने विदा लिया। दोनों ने हाथ हिलाए, करुण आँखों से लीना ने भी।

लगभग ढाई घंटे बाद दरवाजे पर दस्तक हुई। कॉल बेल बजी। जूतों की आवाज सुनाई दी। पल्लवी ने जाकर दरवाजा खोला, ''कौन?''

सामने पुलिस है

''आप ही मिसेज पल्लवी दास हैं?''

''हाँ, बोलिए!''

''आप और आपके पति संग्राम दास के नाम पर भारी अभियोग है।''

''क्या··· ?''

''एक नाबालिग लड़की को आप लोगों ने घर पर रखा है। काम करवाते हैं। संग्राम दास पर यौन-उत्पीड़न का अभियोग है। यह खबर प्रमाण के साथ आई है हमारे एस.पी. साहब के पास।''

''गलत, सब गलत है। किसने···किसने अभियोग किया है?''

''प्रयास त्रिपाठी ने!''

यह सुनते ही आसमान से गिर पड़े बादल। आठ-दस टुकड़े होकर टूट गई धरती। और पल्लवी धड़ाम से नीचे बैठ गई।

सी-३०१, कृष्णा यशोधन बिल्डिंग, अब्रोल
सोपारा रोड, बालिंज, विरार (प.),
पालघर, महाराष्ट्र-४०१३०३
दूरभाष : ०९८२२०१६००३

कविता

भावी पीढ़ी के लिए

• दयाकृष्ण विजयवर्गीय 'विजय'

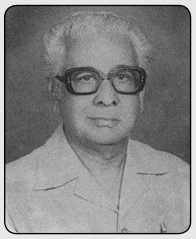

जाने-माने रचनाकार। 'श्वेत शिखरों पर धूप बिंब', 'राम की बहुरिया', 'मेरे भारत मेरे देश' (काव्य); 'आदि सम्राट्', 'सिंहासन', 'छत्रपति शिवाजी' (नाटक); 'बड़ी मछली', 'स्वप्न और सत्य', 'उलझन' (कथा-संग्रह); 'गीता अनुशीलन', 'राजस्थानी काव्य साधना : अब और तब' (समीक्षा) आदि चर्चित।

संघर्ष का नाम ही है जीवन

मनुष्य
यह क्यों भूल जाता है
कि वह
मात्र पंचतात्त्विक काया भर न हो
सर्व शक्तिमान परमात्म पुरुष का ही है
एक अंश!
क्यों भूल जाता है वह
कि उसका धरा पर अवतरण
उस परम प्रभु के ही
किसी प्रयोजन विशेष की संपूर्ति का ही है
एक माध्यम?
यह सब जानते हुए भी
क्यों बन जाता है मनुष्य
अपने निराश्रित बाल-गोपाल
वृद्ध-असहाय माता-पिता
तथा सात-सात जन्मों तक
साथ निभानेवाली अर्धांगिनी भार्या को—
बिलखता छोड़
कभी फंदा लगा
कभी गरल घूँट पी
कभी नदी में डूब तो कभी
केरोसीन छिड़क
देह को माचिस लगा लग
ले लेता है सदा-सदा के लिए
इस कर्म-संसार से विदा।
जीवन से संघर्ष न कर
भौतिक कष्टों से घबरा
दायित्वों को भुला
एकाएक पलायन कर जाना
कायरता नहीं तो और क्या है?
आत्महत्या उतारती नहीं
बढ़ाती ही है परिवार के सिर का बोझ।
कब चुका है लिया ऋण
कब हुई है पार
सांसारिक जिम्मेदारियों की बाढ़ी नदी।
जीवन पलायन का नहीं
संघर्ष का ही है दूसरा नाम।

ऐसे जियो बंधु

आज में भी जियो
तो ऐसे जियो बंधु,
आनेवाला कल
तुम्हें ही नहीं
तुम्हारे कर्मनिष्ठ
सेवा-सिद्ध जीवन की श्रेष्ठता को
बार-बार दुहरा
न केवल अपनी वाक्पटुता से
श्रोता मन को चमत्कृत करे
अपनी सशक्त
युगांतरकारी शब्दावली से
कुछ नवीन
रचनात्मक कर-गुजरने को
संप्रेरित भी कर सके।
वर्तमान में
सचेतन सक्रियता
तथा पूर्ण क्रियाशीलता के साथ
जीना ही है
सार्थक जीवन।
भावी पीढ़ी के लिए
बनता है यही
गहरी प्रतिष्ठा का विषय
प्रेरणास्पद, उदाहरणीय, अनुकरणीय।

विजयभवन
२२८ बी, सिविल लाइंस
कोटा-३२४००१ (राजस्थान)
दूरभाष : ०९४६०५७०८८३

यह जग मेरा, यह जग तेरा!

● घमंडीलाल अग्रवाल

सुपरिचित बाल-साहित्यकार। कई विधाओं की ७४ पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के प्रतिष्ठित 'भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार', 'चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट पुरस्कार' एवं 'हरियाणा साहित्य अकादमी पुरस्कार' सहित अब तक १२८ पुरस्कार सम्मान प्राप्त।

पूछ न साथी

पूछ न मुझसे मेरे साथी
क्यों जीवन आँसू से तर है,
जितना दर्द उभरता बाहर
उतना ही मन के भीतर है।

हर बादल की अपनी मस्ती
हर मंजिल की अपनी बाधा,
हर सपने का अपना सच है
हर पनघट की अपनी राधा।
पूछ न मुझसे मेरे साथी
क्यों तन पर भारी पत्थर है,
जितना शोर उमड़ता बाहर
उतना ही मन के भीतर है।

काँटे शैतानी पर उतरे
फागुन फीके रंग लुटाता,
यह जग मेरा, यह जग तेरा
आहों का मेला तड़पाता।
पूछ न मुझसे मेरे साथी
क्यों सावन रोता अकसर है,
जितना घाव उपजता बाहर
उतना ही मन के भीतर है।

विश्वासों के हार पिरोना
कुछ बेमानी, कुछ नादानी,
डूबूँ भी तो कहाँ बताओ
इस धरती पर थोड़ा पानी।
पूछ न मुझसे मेरे साथी
क्यों हरदम सूखा तरुवर है,
जितना यत्न बिखरता बाहर
उतना ही मन के भीतर है।

पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण
घायल-सी दिखती उम्मीदें,
कैसी होली, क्या दीवाली
कैसा क्रिसमस, कैसी ईद।
पूछ न मुझसे मेरे साथी
क्यों मेरा खँडहर सा घर है,
जितना रूप बिगड़ता बाहर
उतना ही मन के भीतर है।

पग-पग पर

जितने भाव दिए थे तुमने
सबके सब गीतों में ढाले,
अपने डर को जला जगत् में
पग-पग पर कर दिए उजाले।

तूफानों ने मुझको रोका
काँटों ने भी मुझको टोका,
इंतिहान लेने को आया
तेज हवाओं वाला झोंका।

तेरी सुधियों की थाती ने
लेकिन दुःख पर परदे डाले।

सावन से क्या नयन मिलाना
फागुन से क्या मस्ती पाना,
इंद्रधनुष के रंग निरर्थक
मेघों से क्या लूँ इठलाना।

तुम जो दे दो कालजयी हो
दुनिया के सुख देखे-भाले।

चाँद-चाँदनी की बाँहों में
गीत बाँसुरी की राहों में,
जोगी-सपने आस लगाए
कोई तो आए आहों में।

आओ, आओ, आ भी जाओ,
तुम बिन मुझको कौन सँभाले।

लौटा दो

अगर निभाना नहीं चाहते
लौटा दो वह प्यार हमारा,
सुंदर फूलों की खुशबू-सा
रूपायित संसार हमारा।

अमुवा की डाली का झुकना
अब तक भी तुम समझ न पाए,
'पिया-पिया' की टेर लगाकर
चातक मन में प्यास जगाए।

तुम मिल जाते तो हो जाता,
और सबल आधार हमारा।

बादल के आँचल में बिजली
कैसा अनुपम सुख पाती है,
पलकों से सपनों की दूरी
फूटी आँख नहीं भाती है।

कैसी प्रीति जुड़ाई तुमने,
नित पूछे घर-द्वार हमारा।

वादों की पतझड़ी-गणित को
इन अधरों ने कब आवृत्ति दी,
साँसों के हर हवन-कुंड में
आहों ने अपनी आकृति दी।
पता नहीं माना भी है क्या
इस जग ने उपकार हमारा।

जीवन की टूटी सी नौका
भवसागर में ले हिचकोले,
किसी हाट पर बैठ सुहागिन
जैसे अपनी गठरी खोले।

कब तक और हृदय तड़पेगा,
उऋण करो अधिकार हमारा।

गीत बन जाने दो

अंतर्मन के मृदु भावों को
इन अधरों तक लाने तो दो,
गीतों में खुद को पाओगे
गीत मधुर बन जाने तो दो।

रजनीगंधा की खुशबू ने
आँचल मेरा महकाया है,
नयनों के कोरों में कोई
सपना नया उतर आया है।

अब तक खोया ही खोया था,
अब थोड़ा सा पाने तो दो।

सूरज की लाली रोजाना
मुझसे कुछ बतियाती रहती,
चंदा वाली धवल-चाँदनी
बाँह हमेशा मेरी गहती।

जीवन से अँधियारा भागे,
अँधियारे को ताने तो दो।

बेशक पूर्ण नहीं कुछ जग में
सब में कमी यहाँ पर साथी,
फिर भी लुटने में सुख मिलता
पीड़ा जन्म सफल कर जाती।
पीड़ा से संबंध पुराना,
इस पीड़ा को आने तो दो।

मन से मन की डोरी बाँधूँ
ऐसा साहस मुझमें आए,
मीरा, मीर, कबीर सभी की
गाथा सबक नवीन सिखाए।

प्रीति-पाँखुरी चुन निर्जन में
कुटी नेह की छाने तो दो।

७८५/८, अशोक विहार,
गुरुग्राम-१२२००६ (हरियाणा)
दूरभाष : ०९२१०४५६६६६

हुक्मरान की भैंस

• मीना अरोड़ा

था ना बारात घर सा सजा हुआ था। ढोल-नगाड़ों की ध्वनि दूर-दूर तक गूँज रही थी। सलाखों के पीछे बैठे कैदी भोज का आंनद उठा रहे थे। एक भैंस का मैकअप तथा दूसरी का गेटअप चेंज करनेवाले थोड़ी दूरी पर अपना सामान समेट रहे थे।

एक हट्टी-कट्टी भैंस और थानेदार दोनों ही फूलों से लदे हुए थे। कुछ नासमझ देखनेवालों का कलेजा मुँह को आ रहा था कि आखिर हो क्या रहा है? क्या अब पुलिसवालों से समाज की नारियाँ विवाह करने को तैयार नहीं, जो यह थानेदार भैंस से विवाह करने जा रहा है।

थाने में उपस्थित सभी पुलिसवाले पीकर नाचने में मग्न थे। मीडियाकर्मी बड़ी ही तन्मयता के साथ भैंस और थानेदार की तसवीरें ले रहे थे।

भैंस बार-बार अपनी पूँछ उठाकर घुँघरू टँके साटिन के लाल रिबन को ऐसे लहरा रही थी, जैसे कोई नई नवेली अपना आँचल सँवार रही हो। थाने का सफाईकर्मी हाथों में परात और झाड़ू लिये ऐसी उतावली मुद्रा में खड़ा था कि यदि भैंस ने थाने में ही उपलों के लिए सामग्री परोस दी तो वह थाने के बाहर की दीवार पर ले जाकर थाप देगा और अपने कार्य को ईमानदारी से निर्वाह करने का सबूत पेश करेगा।

मीडियाकर्मियों की भीड़ संग एक नया नवेला पत्रकार भी अपना कागज-पेन उठाए घुसा हुआ था। उसकी हालत से उसकी प्रेस का अनुमान लगाना बहुत ही आसान था।

नवेला पत्रकार : 'यहाँ थाने में दो भैंस क्यों खड़ी हैं, चोरी तो एक हुई थी?'

पुलिसकर्मी : 'दरअसल कांस्टेबल गलत भैंस पकड़कर ले आया था। हम उसका गेटअप चेंज कर हुक्मरान के हवाले करने ही वाले थे कि किसी मुखबिर ने थानेदार साहब को असली भैंस की जानकारी दी, बस हमारे थानेदार साहब अपनी पूरी फोर्स के साथ गए और भैंस चोर के चंगुल से छुड़ा लाए।'

नवेला पत्रकार, 'चोर ने आसान हाथों भैंस लौटा दी?'

पुलिसकर्मी : 'कैसे नहीं लौटाता, थानेदार साहब के एक झापड़ ने उसे दिन में तारे दिखा दिए।'

जानी-मानी व्यंग्यकार। अब तक 'शेल्फ पर पड़ी किताब' तथा 'दुर्योधन एवं अन्य कविताएँ' एवं 'एक ऐसी भी निर्भया' (उपन्यास) प्रकाशित। तथा व्यंग्य लेख, कावय रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहते हैं। कविताओं के लिए सम्मानित।

नवेला पत्रकार : 'जब एक झापड़ से काम चल सकता है तो पूरी फोर्स क्यों लेकर गए।'

पुलिसकर्मी : 'बहुत चपड़-चपड़ कर रहे हो, जरा अपने अखबार का नाम तो बताओ।'

नवेला पत्रकार : 'अखबार छोड़िए, यह बताइए कि थानेदार साहब भैंस रानी से विवाह रचा रहे हैं क्या?'

पुलिसकर्मी : 'विवाह! बावरे हुए हो क्या?'

नवेला पत्रकार : 'वो दरअसल थानेदार साहब ने जब भैंस रानी को माला पहनाई तो पंडित महोदय ने कुछ मंत्रों का उच्चारण किया। उपस्थित सभी जनों ने ताली बजाई, मेरे सहयोगी मित्रों ने कपल की तसवीरें भी उतारीं।'

पुलिसकर्मी : 'अच्छा, तो क्या भैंस को माला पहनाते हुए भी देखा तुमने?'

नवेला पत्रकार : 'हो सकता है, उन्हें यह रिश्ता मंजूर न हो, अपनी बिरादरी में विवाह का मन बना रखा हो।'

पुलिसकर्मी : 'बकवास बंद करो और दफा हो जाओ, नहीं तो कोई भी दफा लगाकर यहीं थाने की जमीन में दफन कर दिए जाओगे।'

नवेला पत्रकार चुप्पी साध नृत्य देखने लगा।

पुलिसकर्मी कर्मों से विमुख नाचने-गाने में व्यस्त थे।

पुलिसवालों के नागिन नृत्य से सम्मोहित होकर भैंस भी जमीन पर लोट-पोट होने की सोच ही रही थी कि एक बदहवास सा परिवार थाने में घुसा चला आया।

मेज पर चढ़कर झूम-झूमकर गानेवाले पुलिसकर्मी गाना रोक उस परिवार को घूरने लगे।

नवेला पत्रकार : 'कौन हैं आप लोग और क्यों रंग में भंग डाल रहे हैं?'

बदहवास परिवार के पुरुष ने मेज पर चढ़े एक पुलिसवाले के पैर पकड़ लिये और बोला, 'साहब, मेरी बेटी को बचा लीजिए, उसे कुछ गुंडे उठाकर ले गए हैं।'

पुलिसकर्मी : 'कल आना, आज कोई एफ.आई.आर. दर्ज नहीं की जाएगी।'

'पर कल तक बहुत देर हो जाएगी साहब, मेरी बेटी को बचा लीजिए।' अब औरत ने पाँव पकड़ लिये।

नवेला पत्रकार : 'आप लोग बच्ची को भूल भोजन-भजन का आनंद लीजिए। जिन्होंने भैंस खोज निकाली है, वह अवश्य ही एक-दो दिन में आपकी बेटी खोज निकालेंगे।'

पीड़ित माँ : 'तब तक बहुत देर हो जाएगी।'

परिवार बिलख-बिलखकर रोने लगा।

उनका रोना सुन भैंस का हृदय द्रवित हो उठा, वह अपनी जगह से हिली और दु:खी परिवार के करीब आ गई।

भैंस की आँखों से जलधारा बह निकली।

तमाशबीन यह देख हैरान थे कि जानवरों का हृदय पुलिस हृदय से कोमल होता है।

भैंस को रोता देख थानेदार भड़क उठा। उसने दु:खी परिवार के पुरुष की पीठ पर लात जमाते हुए कहा, 'तुम्हारी वजह से हमारे अन्नदाता की भैंस आँसू बहा रही है।'

नवेला पत्रकार : 'पर आप सबको तो सरकार पगार देती है और यह भैंस सरकार की नहीं। मेरे खयाल से भैंस भी चाहती है कि आप परिवार की पीड़ा को समझें।'

थानेदार : 'यह समझदार मच्छर कहाँ से घुस आया, इसे बाहर निकालो।'

भैंस ने थानेदार की ओर देख मुँह चलाया।

थानेदार चिल्लाया : 'अबे! कोई मैडम के लिए पानी लेकर आओ।'

पुलिसकर्मी अपनी-अपनी पानी की बोतल ले भैंस की ओर लपके।

बाहर तैनात एक गार्ड ने थानेदार को सूचना दी कि भैंस के सिरताज जहाँपनाह अलाने-फलाने एरिया के हुक्मरान स्वयं भैंस लेने पधार चुके हैं।

पुलिसकर्मी अपनी-अपनी वर्दी दुरुस्त कर भैंस की आँखें और बदन अपने-अपने रुमाल से पोंछने लगे।

हुक्मरान को देखते ही दु:खी परिवार अपना घायलात्मिक शरीर ले उसके चरणों में बिछ गया।

हुक्मरान को लगा, मानो कदमों से आकर कर्तव्यों के सर्प लिपट गए हों। उन्होंने पैरों को झटका और बोले, 'दूर होकर गिड़गिड़ाओ, जूते खराब हो जाएँगे।'

संतप्त परिवार ने अपनी बेटी को बचाने की गुहार लगाई।

उनकी बात सुनकर हुक्मरान ने कहा कि रेप और छेड़छाड़ से बचने के लिए महिलाओं को घरों में ही रहना चाहिए। लड़कियों को ऐसी जगहों पर नहीं जाना चाहिए, जहाँ बेशर्मी का नंगा नाच हो रहा हो।'

परिवार : 'पर हमारी बेटी तो पढ़कर लौट रही थी।'

हुक्मरान : 'अच्छा तो फिर यह कोई राजनीतिक पार्टी का कार्य लगता है। सत्ता की लोभी पार्टियाँ किसी भी हद तक जा सकती हैं।'

नवेला पत्रकार : 'पर इसमें राजनीति कहाँ से आ गई। यह तो गुंडागर्दी है। सरेआम बच्ची अगवा की गई है। पुलिस एफ.आई.आर दर्ज नहीं कर रही है।'

हुक्मरान : 'भई जरा इनके पर चेक कर लो, कुछ ज्यादा निकल आए हैं। और हमारी भैंस रानी को सम्मान के साथ विदा करने का प्रबंध करो।'

थानेदार : 'जी जनाब, भैंस को पूरे शहर में घुमाते हुए हम सब आपके निवासस्थान पर लेकर पहुँचते हैं।'

नवेला पत्रकार : 'पूरे शहर से घुमाते हुए क्यों?'

थानेदार : 'पूरे शहर से इसलिए कि आम नागरिक हम पर भरोसा कर सके कि हम पूरी ईमानदारी से अपनी ड्यूटी निभाते हैं। हमारे होते हुए एक जानवर का भी बाल बाँका नहीं हो सकता।'

हुक्मरान ने भैंस के सिर पर हाथ फिराया और थाने से बाहर निकल गया। थानेदार भैंस की रस्सी पकड़ पीछे लपका। पुलिसकर्मी, मीडियाकर्मी तथा तमाशबीन भी साथ चल दिए।

दु:खी परिवार 'साहब सुनिए' की रट लगाए पीछे-पीछे लपका।

थाने से ५०० मीटर की दूरी पर एक बच्ची क्षत-विक्षत हालत में पड़ी थी।

हुक्मरान गुजर गए। थानेदार के हाथ से रस्सी छुड़ाकर भैंस बच्ची के करीब पहुँच गई। भैंस ने गरदन बच्ची के नग्न शरीर पर झुका दी। बच्ची का शव फूलों से ढक गया।

मीडियाकर्मियों ने अपने कैमरे में भैंस की तसवीरें बच्ची के शव के साथ खींचनी आरंभ कर दीं।

अचानक भैंस ने अपना सिर और पूँछ एक साथ हिलाना शुरू कर दिया और फिर अपनी आगे की एक टाँग उठा पागलों की भाँति नृत्य करने लगी। देखनेवालों को ऐसा लग रहा था, मानो स्वयं शंभु क्रुद्ध हो तांडव कर रहे हों।

थानेदार : 'अरे! इसे क्या हुआ?'

नवेला पत्रकार : 'शायद अपने जानवर होने की खुशी जता रही है। अगर इनसान की औलाद होती तो शायद इस बच्ची की तरह दरिंदों की वासना का शिकार बन मिट्टी में मृतक पड़ी होती।'

सा
अ

हिमालय फर्म, बरेली रोड
जिला-नैनीताल
हल्द्वानी-२६३१३९ (उत्तराखंड)
दूरभाष : ०९९१७२५२२४४

भारतीय ज्ञान-परंपरा

● वेदप्रकाश

मानव की विकासावस्था में व्यवहार के कारण वह एक-दूसरे के संपर्क में रहा होगा, तदुपरांत उनके व्यवहार से अनुभवों का क्षेत्र विकसित हुआ होगा और धीरे-धीरे इन विविध आयामी अनुभवों का संश्लेषणात्मक और विश्लेषणात्मक रूप ज्ञान के रूप में जाना गया होगा। 'जिज्ञासा' ज्ञानरूपी भंडार का प्रवेश द्वार कही जा सकती है, अपनी विकासावस्था में इस जिज्ञासा ने मानव को अनेक प्रकार से अचंभित किया होगा, आज भी वह यही काम उसी रूप में कर रही है—कभी गोचर जगत् को लेकर तो कभी अगोचर को लेकर।

वामन शिवराम आप्टे अपने 'संस्कृत हिंदी कोश' में 'ज्ञान' का अर्थ करते हैं—जानना, समझना, परिचित होना, प्रवीणता, विद्या, चेतना, संज्ञान, जानकारी, परम ज्ञान, विशेषकर उस धर्म और दर्शन की ऊँची सच्चाइयों पर मनन से उत्पन्न ज्ञान, जो मनुष्य को अपनी प्रकृति या वास्तविकता को जानना तथा आत्म-साक्षात्कार या परमात्मा से मिलन की बात सिखाता है? स्पष्टत: मनुष्य का ज्ञान से पहला साक्षात्कार स्वानुभव से होता है, जिसमें जन्मजात—त्वचा, रचना, चक्षु, कर्ण तथा घ्राण, ये पंचेंद्रियाँ उसकी सहायक होती हैं।

वेदों को भारतीय ज्ञान-परंपरा का आदिस्रोत माना जाता है। 'वेद' शब्द 'विद्' धातु से घण् प्रत्यय लगने पर निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है—'पवित्र ज्ञान'। विद् धातु-लाभ, सत्ता, ज्ञान और विचारणा आदि अर्थों में पृथक्-पृथक् निर्दिष्ट है? इसलिए विद्वानों ने वेद का निर्वचन किया—विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते एभिर्धमादि पुरुषार्था: इतिहास वेदा:।' वेद को श्रुति, त्रयी, छंदस, निगम तथा स्वाध्याय आदि नामों से भी अभिहित किया गया है। वेदों के महान् भाष्यकार सायणाचार्य के द्वारा 'तैत्तिरीयसंहिता' के भाष्य की भूमिका में दी गई परिभाषा वेदों के महत्त्व का उद्घाटन करती है, 'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयों अलौकिकं उपायं तो ग्रंथो वेदयति संस्कृति वेद:।' अर्थात् जो ग्रंथ इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार के उपायों का ज्ञान कराता है, वह वेद है।

ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् साहित्य में वेदों की संख्या ४ बताई गई है। ग्रंथों में शब्दबद्ध मंत्रों को ऋचाएँ कहा गया है, जिसका अर्थ है—ज्ञान। इन ग्रंथों में समाज, दर्शन, धर्म, राजनीति, जीव, जगत्, ब्रह्म आदि अनेक सूक्ष्म तथा गूढ़ विषयों पर चिंतन मिलता है। भारतीय

सुपरिचित लेखक। अब तक चार पुस्तकें तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में शोध लेख प्रकाशित। मध्यकालीन साहित्य के अध्ययन-अध्यापन में विशिष्ट अभिरुचि। संप्रति हिंदी विभाग, हंसराज महाविद्यालय दिल्ली में असिस्टेंट प्रोफेसर।

ज्ञान-परंपरा का यह प्रारंभिक रूप उस समय प्रौढ़ता को प्राप्त था, जिस समय विश्व के अनेक देश संभवत: अस्तित्व में भी नहीं थे। यद्यपि वेदों के आविर्भाव तथा काल-निर्धारण के प्रश्नों पर मतवैभिन्न्य मिलता है तथापि यह भारतीय ज्ञान-परंपरा के आदिस्रोत माने गए हैं।

वेदों के उपरांत भारतीय ज्ञान-परंपरा में ब्राह्मण ग्रंथों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन ग्रंथों में यज्ञ और उनमें विनियुक्त होनेवाले मंत्रों की व्याख्या मिलती है। डॉ. जियालाल कंबोज द्वारा लिखित ऋग्वेद संहिता की भूमिका में मिलता है कि 'वेदों के मंत्रों के अर्थों और अभिप्राय को स्पष्ट करनेवाले ग्रंथों का नाम ब्राह्मण है, इनमें मंत्रों का यज्ञों में विनियोग दिखाया गया है, यज्ञों की विधियों और प्रक्रियाओं की व्याख्या की गई है और प्रसंगवश रोचक कथाओं के माध्यम से वेद-मंत्रों के आशय को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।'

भारतीय ज्ञान-परंपरा में ब्राह्मण ग्रंथों के उपरांत आरण्यक ग्रंथों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिनमें ग्राम तथा नगरों से दूर अरण्य अर्थात् वन में वानप्रस्थों के द्वारा मानव जीवन के रहस्यों का वर्णन मिलता है। कुछ विद्वान् इन्हें 'रहस्यब्राह्मण' तथा 'उपासनाकांड' के नाम से भी अभिहित करते हैं।

आध्यात्मिक चिंतन, रहस्य, तत्त्व, दर्शन आदि की व्याख्या के लिए उपनिषद् ग्रंथों का आविर्भाव हुआ। उपनिषदों का ज्ञान अथवा विषय अत्यंत गूढ़ तथा जनसामान्य की समझ से परे और उनके मन में शंका उत्पन्न करनेवाले माने गए, इसलिए उसे गुप्त रखा जाता था और अधिकारी पात्र अथवा योग्य शिष्य को ही दिया जाता था। इसके लिए शिष्य को अनेक कठिन परीक्षाओं से भी गुजरना पड़ता था।

भारतीय ज्ञान-परंपरा में वेदों के भाष्यकारों के रूप में यास्क, सायण, स्कंदस्वामी, नारायण, उद्गीथ, माधवभट्ट, आनंदतीर्थ,

भटगोविंद, मैक्समूलर, ग्रिफिथ, विल्सन, स्वामी दयानंद सरस्वती, श्रीअरविंद घोष तथा वासुदेव शरण अग्रवाल आदि देशी-विदेशी विद्वानों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

भारतीय ज्ञान-परंपरा के विविध आयाम हैं, जिनमें—व्याकरणशास्त्र, योगशास्त्र, आयुर्वेद, चिकित्साशास्त्र, अंकगणित, खगोलशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इतिहास, दर्शनशास्त्र, संगीतशास्त्र, तर्कशास्त्र तथा विज्ञान आदि प्रमुख हैं। उपर्युक्त आयामों से संबद्ध ज्ञान-परंपरा को पाणिनि, पतंजलि, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भरतमुनि, चाणक्य, रामानुजाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, तिरुवल्लुवर, कालिदास, तुलसीदास, कबीरदास, संत नामदेव, गुरु नानकदेव, रामकृष्ण परमहंस, रविंद्रनाथ ठाकुर, अरविंद, विवेकानंद तथा महात्मा गांधी आदि अनेक ऋषि-मुनियों तथा चिंतकों ने समृद्ध किया है। भारतीय ज्ञान-परंपरा की समृद्धता यहाँ की शिक्षा-व्यवस्था में भी देखी जा सकती है। अवशेष-स्वरूप आज भी तक्षशिला, नालंदा, उदंतपुरी, सोमपुरा, नागार्जुनकोंडा, कांचीपुरम, पुष्पगिरी तथा शारदा पीठ आदि विश्वविद्यालय तथा शिक्षापीठ विद्यमान हैं, जिनमें देश-विदेश से हजारों छात्र विविध विषयों की शिक्षा अथवा ज्ञान प्राप्त करने आते थे।

भारतीय ज्ञान-परंपरा में हमारी समृद्ध संस्कृति भी महत्त्वपूर्ण है। विदेशी चमक-दमक अथवा चकाचौंध में वह छूटती चली गई। 'मेरे सपनों का भारत' नामक पुस्तक में गांधीजी लिखते हैं, 'पहले हम अपनी संस्कृति का सम्मान करना सीखें और उसे आत्मसात् करें।'''मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि हमारी संस्कृति में जैसी मूल्यवान निधियाँ हैं, वैसी किसी दूसरी में नहीं हैं।'''अपने आचरण में उसका व्यवहार करना तो हमने लगभग छोड़ ही दिया है।'''मेरा धर्म मुझे आदेश देता है कि मैं अपनी संस्कृति को सीखूँ और उसके अनुसार चलूँ।'

इतिहास के मध्यकाल तथा आधुनिककाल में जैसे-जैसे भारतवर्ष पर विदेशी शासकों का शिकंजा कसता गया, वैसे-वैसे भारतीय ज्ञान-परंपरा को भी नष्ट करने का प्रयास किया गया, कभी पुस्तकालयों को जलाया गया, कभी विदेशियों द्वारा अपने ढंग से ज्ञान-परंपरा की नूतन व्याख्या प्रस्तुत की गई तो कभी यहाँ की सामाजिक-सांस्कृतिक तथा धार्मिक परंपराओं को तोड़-मरोड़कर हेय सिद्ध किया गया। मैक्समूलर जिसे भारत में एक उदार पाश्चात्य वैदिक विद्वान् के रूप में स्वीकार किया जाता है, ने लिखा है, 'वैदिक सूक्तों की बहुत बड़ी संख्या नितांत बचकाना, जटिल, घटिया और साधारण है।' मैकाले हिंदू संस्कृति और शिक्षा को बहुत घृणा की दृष्टि से देखता था। वह कहा करता था कि 'संस्कृत भाषा में जो पुस्तकें लिखी गई हैं, उन सबका समस्त ऐतिहासिक ज्ञान इंग्लैंड के प्रेप स्कूल में पढ़ाई जानेवाली छोटी संक्षिप्त पुस्तिका से भी कम है।' उसने १२ अक्तूबर, १८३६ को अपने पिता को एक पत्र लिखा था, जिसमें वह वैदिक शिक्षा के प्रभाव की बात कहते हुए अंग्रेजी लागू किए जाने पर प्रसन्नता व्यक्त करता है, 'इस शिक्षा का प्रभाव हिंदुओं पर चामत्कारिक है। कोई भी हिंदू जिसने अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण कर ली है, अपने धर्म के साथ ईमानदारी से जुड़ा नहीं रह सकता। मेरा विश्वास है कि यदि हमारी शिक्षा नीति को क्रियान्वित किया गया तो आज से ३० वर्ष के पश्चात् बंगाल में कुलीन वर्गों में एक भी मूर्तिपूजक नहीं रह जाएगा।'''मुझे इससे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।'

वैदिक-संस्कृत ज्ञान-परंपरा जन-मन में रक्त की तरह प्रवाहित हो रही थी, उसके प्रवाह को तोड़-मरोड़कर विद्रूप्त करने का प्रयास होता रहा, किंतु भारतीय ज्ञान-परंपरा की अक्षुण्णता हेतु भी निरंतर प्रयास किए गए। १८५७ के पहले स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात् जन-जन की जड़ता टूटनी आरंभ हुई। १८९३ की शिकागो धर्म संसद् से लौटने के बाद स्वामी विवेकानंद ने अपने पहले ही व्याख्यान में जन-जन को झकझोरा, 'यदि पृथ्वी पर ऐसा कोई देश है, जिसे हम धन्य पुण्यभूमि कह सकते हैं'''यदि ऐसा कोई देश है, जहाँ मानव जाति की क्षमा, धृति, दया, शुद्धता आदि सद्गतियों का सर्वाधिक विकास हुआ है और यदि ऐसा कोई देश है, जहाँ अध्यात्मिकता तथा सर्वाधिक आत्मान्वेषण का विकास हुआ है तो वह भूमि भारत ही है। भौतिकवाद की अग्नि को बुझानेवाला जीवनदायी सलिल भारतीय परंपरा में ही विद्यमान है।'

भारतीय ज्ञान-परंपरा को पुनर्जीवित करते हुए १९११ में 'भारत भारती' नामक पुस्तक में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है—

पांडित्य का इस देश में सब और पूर्ण विकास था
बस दुर्गुणों के ग्रहण में ही आज्ञता का वास था,
सब लोग तत्त्वज्ञान में संलग्न रहते थे यहाँ
हाँ, व्याध भी वेदांत के सिद्धांत कहते थे यहाँ।

भारतीय ज्ञान-परंपरा में हमारी समृद्ध संस्कृति भी महत्त्वपूर्ण है। विदेशी चमक-दमक अथवा चकाचौंध में वह छूटती चली गई। 'मेरे सपनों का भारत' नामक पुस्तक में गांधीजी लिखते हैं, 'पहले हम अपनी संस्कृति का सम्मान करना सीखें और उसे आत्मसात् करें।'''मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि हमारी संस्कृति में जैसी मूल्यवान निधियाँ हैं, वैसी किसी दूसरी में नहीं हैं।'''अपने आचरण में उसका व्यवहार करना तो हमने लगभग छोड़ ही दिया है।'''मेरा धर्म मुझे आदेश देता है कि मैं अपनी संस्कृति को सीखूँ और उसके अनुसार चलूँ।'

आज जब भारतवर्ष पुनः नए रूप में विश्व गुरु के सिंहासन पर आरूढ़ होने की ओर अग्रसर हो रहा है, विश्व में अनेक प्रकार की समस्याओं से हाहाकार की स्थिति पैदा हो रही है। ऐसे में युवा पीढ़ी के साथ-साथ पूरे देश को भारतवर्ष की गौरवशाली ज्ञान-परंपरा का पुनः स्मरण निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा। समस्त विश्व के लिए भारत की यह ज्ञान-परंपरा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के भाव के साथ कल्याणकारी सिद्ध होगी।

सा.अ.

सी-२९८, सरिता विहार, नई दिल्ली-११००७६
दूरभाष : ०९८१८१९४४३८

जीवन-झरना

मूल : **एमिलिया पार्डो बाजान**

अनुवाद : **भद्रसैन पुरी**

बीमार ऊँट चालक को झरने के किनारे छोड़कर काफिला चलता रहा। झरने के पानी की प्रसिद्धि के कारण सारे काफिले वहाँ रुकते थे—पानी, जिसकी बाबत बहुत बातें की जाती थीं। कुछ कहते कि इसके एक घूँट से दुर्बल में पुनः शक्ति आ जाती थी और दूसरों का विचार था कि इसके गुण अजीब, भयानक और यहाँ तक कि प्राणनाशक थे।

हजरत मुहम्मद के दामाद हजरत अली के अनुयायी और वह आदमी जिससे हजरत के धार्मिक और राजनैतिक काम को जारी रखना था, झरने के पानी का विशेष आदर करते थे। वे कहते थे कि उदार और अभागा राजकुमार, जो अपने घोषित शत्रु ऐशा या आजा, हजरत की विधवा, की सेना पर विजयी था, ने अपनी निश्चित विजयवाले दिन इसी से अपनी प्यास बुझाई थी। जैसे सभी विश्वासी जानते हैं कि हजरत की विधवा लड़ाई में ऊँट से गिर गई थी, अली ने उसे आदरपूर्वक उठाया तथा क्षमा कर दिया और उसे सुरक्षित मक्का भेज दिया। यह कहा जाता है कि उसी समय से ही जीवन झरने के पानी के गुणों की चर्चा शुरू हुई थी। यह बताया गया है कि ऐशा, जो उन केवल चार अद्वितीय महिलाओं में से एक थी जो इस दुनिया में रहीं, ने अपनी पराजय और कैदी बनाए जाने के बाद, पानी को अपने होंठों से छुआ तो उसने घोषणा की कि उसका स्वाद असह्य था।

ऊँट चालक पानी के स्वाद के बारे में नहीं सोच रहा था। उसने धूल के उस बादल को लुप्त होते देखा जो विदा होता हुआ काफिला छोड़ गया था और अपने आपको मरुस्थल की रेत के समुद्र में टूटे हुए जहाज के यात्री के रूप में पाया।

यह सत्य है कि झरना नखलिस्तान से घिरा हुआ था। दस-बारह खजूर के पेड़ और ऊँटों को पानी पिलानेवाला ईंट-मसाले से बना कठौता और दूर मसजिद में जानेवाले यात्रियों के थोड़े आराम के लिए विश्रामगृह—इतना ही उस एकांत नखलिस्तान में था। गरमी, जिसने उसकी नाड़ियों में रक्त को शुष्क कर दिया था, से भकोसाए किफायती और संयमी ऊँट चालक ने अब खाने—रोटी और खजूर जो उसका सामान्य भोजन था, की ओर ध्यान नहीं दिया; अब उसका सहारा केवल झरने का पानी था।

''वे इसको जीवन का झरना कहकर अच्छा करते हैं। मैं कुछ ही दिनों में अच्छा हो जाऊँगा। मैं इसको पीता रहूँगा।''

दो-तीन दिन बीत गए। त्यागा हुआ व्यक्ति अपना मिट्टी का बरतन पानी की मुश्क से भरता रहा, जो उसके साथी आगे जाने से पहले भरकर उसकी बगल में छोड़ गए थे, और जैसे ही वह पानी पीता था, सोचने लगता—

'मेरी बीमारी जरूर मेरे दिमाग को घुमा देगी। अभी यह पानी कितना मीठा था और अब ऐसा हो गया जैसे कोई कड़वा काढ़ा मिला दिया गया हो।'

तीसरे दिन बौनी जाति के लोगों, जो थोड़ी दूर शुष्क घाटी की ढलान पर ठहरे हुए थे, की लड़कियाँ अपनी पानी की मुश्के भरने के लिए झरने पर आईं। बीमार आदमी ने अपनी मुश्क भरने के लिए याचना की क्योंकि वह स्वयं इतना दुर्बल हो गया था कि मुश्क को झरने में डुबो नहीं सकता था। एक पंद्रह वर्षीया, बारहसिंघे की तरह पतली लड़की ने सिकड़ी को घुमाया और पानी से भरी बालटी ऊपर आ गई। पानी ठंडा और बिल्लौर की तरह साफ था। बीमार आदमी ने घूँट भरने के लिए काँपते हुए हाथ फैलाए। जब लड़की ने चमकीले पानी से भरा, चित्रकारी किया हुआ अपना बरतन उसे दिया तो वह प्रसन्नता से मुसकराया, परंतु कुछ बूँद पानी पीते ही उसने बुरी तरह मुँह बनाया।

''मुश्क के पानी के स्वाद की अपेक्षा इसका स्वाद और अधिक कड़वा है।'' वह व्याकुलता से बड़बड़ाया।

लड़की ने अपने बरतन में थोड़ा पानी लिया और उसको बड़ी प्रसन्नता से धीरे-धीरे स्वाद चखते हुए पीया और बरतन को खाली कर दिया।

''तुम कड़वेपन की क्या बात करते हो?'' उसने हँसते हुए पूछा, ''यह तो पहाड़ों की चोटियों पर पड़ी हुई बर्फ से भी अधिक ताजा और हमारी भेड़ों के दूध से भी अधिक मीठा है। इसने मुझे ताजा कर दिया है और बहुत लाभ पहुँचाया है। मैंने इससे अच्छा पानी कभी नहीं पीया। लड़कियो, इसे चखो और बताओ कि मैं ठीक कह रही हूँ।''

और पानी लेनेवाली लड़कियों के समूह ने अपनी भरी हुई मुश्कें गधों पर पड़े हुए जाल के थैलों में रखने से पहले, झरने के पानी के

लंबे-लंबे घूँट पीए। एक-दूसरी से बरतनों को छीनने का बहाना करते हुए और उनकी कुर्तियों पर पानी के छीटें उड़ाते हुए, उन्होंने परस्पर मजाक किया; ताजा खजूरों की तरह धूप से चमकते जैतूनी रंग के उनके कंधे, उनकी युवा छातियों के आकार मात्र और गोल बाँहें चमक रही थीं; उनकी अंडाकार काली आँखें खोलते समय चमकती थीं और अनार के दानों की तरह उनके दाँत पानी से ताजा हुए लाल होंठों में और भी सफेद नजर आते थे। फिर वे मुश्कों के बीच जमकर गधों पर सवार हो गईं और जीवन एवं यौवन के आनंद के साथ वापस अपने पड़ाव के लिए चल दीं।

ऊँट चालक एक बार फिर अकेला रह गया। जैसे उसने पहले लुप्त होते हुए काफिले के धूल के बादल को देखा था, अब उसी तरह उसने गधों के खुरों से उठती रेतीली धूल के बादल को देखा। मुश्कों के साथ घर जल्दी पहुँचने के लिए, हँसते-हँसाते सवारों को दूर तक जाते देखा—किसी सड़क पर नहीं क्योंकि मरुस्थल स्वयं ही एक विशाल सड़क है, रेतीली समतल भूमि है। ज्वर ने उसको नष्ट कर दिया था; निराशा में उसने पुन: पानी पीया; पानी का स्वाद पहले से भी अधिक कड़वा था!

दिन गुजरते गए। बीमार आदमी ने उनके बीतने को माला के मनकों पर गिना—माला, जो हर धार्मिक मुसलमान अपनी कमर से बाँधता है। वह इसी तरह उनको गिन सकता था क्योंकि सभी दिन एक जैसे होते हैं। प्रतिदिन सूर्य की किरणें पीतल के आकाश को चूर-चूर करती थीं; प्रत्येक चौंधियानेवाली दोपहर वैसी थी जैसी पहले बीती थी—बहुत बड़े नीले निर्दयी आकाश से रोशनी की भड़कीली धन-संपन्नता; हर सायंकाल भुनी रेत से वही प्रतिबिंबित गरम साँस आती थी, जब सूर्य दूर क्षितिज में अस्त होता और जंगली जानवर अपनी मोदों और गुफाओं से रेतीले समतल मरुस्थल में निकलते थे। हर रात पूरबी सितारों की दमक से जड़े आकाश का वही देदीप्यमान सामान्य स्थान। कभी भी ठंडी हवा का झोंका पृथ्वी से नहीं उठा अथवा आकाश से नहीं उतरा। गहरे नीले रंग के अस्तर के साथ ताँबे का चंदवा-सा नजर आ रहा था, सितारे निर्दयता से झाँक रहे थे मानो वे किसी सम्राट् की उदास आँखें हों जो अपनी प्रजा के दु:खों के प्रति लापरवाह हो!

अपनी प्यास, जिसने उसे नष्ट कर दिया था, को रोकने में अक्षम बीमार आदमी ने पानी पीया। हमेशा झरने से पीया जो प्रतिदिन कड़वे-से-कड़वा होता चला गया और स्वाद का प्रतिघाती बनता गया—न केवल प्रतिदिन, बल्कि हर घूँट के बाद अनुक्रम से। ऐसा लगता था कि दुरात्माएँ मानव जाति को यातना देने के लिए कठोरता के थैले, मुट्ठी भर नमक और हर अत्यंत कड़वी औषधि झरने में डाल रही हो, जो स्वाद को अप्रिय बनाते थे। एक ऐसा क्षण आया जब ऊँट चालक की शक्ति ने जवाब दे दिया, जब वह पानी को देखकर काँप जाता था और झरने की बगल में लेटे हुए उसने मृत्यु की प्रतीक्षा करने का निश्चय कर लिया जिसके लिए सहनशीलता और समर्पण त्यागे नहीं जा सकते; वह अपने दु:खों से मुक्त होने के लिए चिंतित भी था।

एक गंभीर आवाज सुनकर उसकी आँखें खुल गईं। उसके सामने एक भद्र आदमी, चाँदी-सी सफेद दाढ़ी के साथ, पैबंद लगे कपड़े पहने जो निर्धनता के प्रतीत थे—खड़ा था। वह चरवाहे की छड़ी पर झुका हुआ था और उसके कंधों पर थैला था जिससे प्रतीत होता था कि वह भिक्षुक था। धूप से भूरा हुआ उसका चेहरा कुलीन आकृति से, अलग पहचाना जा सकता था; और बीमार आदमी पर जमी उसकी आँखों में दया नहीं, बल्कि निर्मल गहरी चिंता दिख रही थी; मन:स्थिति जो पवित्र पुस्तकों को जानती थी और समस्त जीवन के दिल में प्रवेश करने योग्य थी। भद्र अजनबी अपने दाएँ हाथ में प्याला थामे हुए था, मानो उससे पीना चाहता हो।

''मत पीयो, महाराज,'' ऊँट चालक ने कहा, ''यह चिरायते की भाँति कड़वा है, यह तुम्हें नुकसान देगा। मैं इसे और नहीं पी सकता।''

उसको अनसुना करते हुए अजनबी ने पी लिया, परंतु किसी प्रकार की घृणा अथवा खुशी प्रकट नहीं की।

''यह पानी,'' उसने मुँह पर हाथ का पिछला भाग, जो तपते सूर्य से भुन गया था, फेरते हुए कहा, ''न कड़वा है और न ही मीठा। इसका कड़ुवापन या मिठास, इसको पीनेवाले के स्वाद पर निर्भर होती है। जबसे तुम यहाँ लेटे हुए हो, क्या तुमने अपने अतिरिक्त औरों को नहीं देखा? क्या स्वस्थ युवा लोग पानी पीने नहीं आए?''

''हाँ,'' ऊँट चालक ने उत्तर दिया—''कुछ युवा लड़कियाँ आई थीं—बहुत प्रसन्न और आनंदचित्त—अपने डेरे के लिए पानी लेने; उन्होंने पानी के गुणों की प्रशंसा की थी।''

''तो अब तुमने देखा,'' भद्र अजनबी ने शांतिपूर्वक कहा, ''मौत का फरिश्ता तुमपर दया करे और कम-से-कम तुम्हें आज्ञा दे कि तुम झरने का पानी पी सको। मैं तुम्हें अपने साथ ले जाता, परंतु तुम्हें इस दुर्दशा से निकालने के लिए मेरा गधा पहले ही पूरी तरह लदा हुआ है और मुझे किसी काफिले से मिलने की जल्दी है क्योंकि यदि मैं अकेला जाऊँगा तो जंगली जानवर मुझपर झपटकर मुझे फाड़ डालेंगे।''

और अजनबी कुरान शरीफ की आयत पढ़ता हुआ चला गया। जब चमकते क्षितिज में उसका काला आकार लुप्त हो गया तो ऊँट चालक ने सोचा कि उसकी अंतिम आशा भी जाती रही। अपने बढ़ते ज्वर में वह झरने के इर्दगिर्द पत्थरों से बने स्थान पर पहुँचा और अपनी निराशा में उसको दोनों हाथों से थामा, परंतु अपनी शक्ति के लिए किसी विशेष प्रयत्न के बिना, जो मृत्यु को प्राप्त करने के लिए भी पर्याप्त नहीं थी, वह सिर के बल झरने में गिर गया।

□

जब ऊँट चालक ने अपने आपको जीवन झरने में गिरा दिया तो उसके बाद भी झरने से निकाला गया पानी किसी के लिए मीठा एवं स्वादिष्ट था और दूसरे कई के लिए कड़वा। यहाँ यही कहा जा सकता है कि जब लोग उस प्रभेदकारी स्वाद को चखते थे तो वे सोचते थे कि भले ही पानी जीवन झरने से आता था, परंतु वह स्वाद उनके मन में मृत्यु का अनिवार्य विचार पैदा करता था!

सा.अ

('स्पेन की श्रेष्ठ कहानियाँ' पुस्तक से साभार)

मैं तीसरे गाँव का आदमी हूँ

● राजीव रंजन

जेठ-बैसाख की नीम दुपहरिया में मेरा गाँव गपिया रहा है। खटिया पर उठंगकर, सुर्ती मलते हुए, खैनी से भरे हुए लारवाले मुँह को आगे कर पिच्च से थूकते हुए या फिर ताश के पत्ते फेंटते हुए मेरा गाँव गपिया रहा है। गाँव के पूरब पुरनका पोखरा के भीटे पर, लालाजी के बैठका में, पंडीजी के दुआर पर, बाबा के बरगद के नीचे या दक्खिन टोला के नीम के तले जगह-जगह, जहाँ भी ढरकने की, बिलमने की, घड़ी-आध-घड़ी टेक लेने की जगह है, वहाँ टिककर मेरा गाँव गपिया रहा है। कोई ताश फेंट रहा है, कोई ताश बाँट रहा है, कोई बाजी समेटकर उत्साह से सीना चौड़ा कर रहा है और कोई केवल और केवल गपिया रहा है। किसी के पास कहकहे हैं तो किसी के पास अपने रोजमर्रे की बातें, किसी के पास बेटे-बहू की कहानियाँ तो किसी के कूल्हे या घुटने के दर्द और किसी के पास डाँड़-मेढ़, गोतिया-दायाद और भाई-बंधु। सबके पास वक्ता हैं, सबके पास श्रोता हैं और सबके पास अपनी-अपनी कहानियाँ हैं। सब उसे कहने और सुनने में मशगूल हैं।

इस गपियाते हुए गाँव के पीछे भी एक गाँव है। वह दरवाजे के पल्ले भिड़ाकर घर में उठंगा हुआ है। वह दो पहरों की आपाधापी के बाद अब थोड़ा सुस्ता लेना चाहता है। घर-बासन, चूल्हा-चौका और लड़के-बच्चे के बाद अपने लिए थोड़ा-सा समय निकाल लेना चाहता है। गप्प उसे भी पसंद है। वह भी गपियाना चाहता है, लेकिन इस चिलचिलाती हुई दोपहर में सोए हुए बच्चे को भला कैसे जगाया जा सकता है? उसके पंखा झलते हुए हाथों में दर्द होने लगा है, लेकिन बच्चा! पंखे के रुकते ही कुनमुना उठता है। फुसफुसाकर बतियाते हुए भी उसके जगने का डर उसे बोलने नहीं देता। थकान से आँखें झपक रही हैं, लेकिन बच्चे की कुनमुनाहट उसे फिर सचेष्ट कर देती है और वह नींद की शिथिलता में हाथ से छूटे पंखे को फिर सँभालकर और तेजी से झलने लगता है।

इन दोनों से अलग एक तीसरा गाँव भी है। उस गाँव के पाँव दुपहरिया से बहुत पहले ही गाँव की चौहद्दी और सिवान को पार कर सड़क पर जा टिकते हैं। किसी चाय की दुकान के जलते टप्पर या छान के नीचे धूनी रमाए वह अनंत ज्ञान साधना में लीन है। वह दुनिया-जहाँ की हर बात जानता है, हर क्षेत्र में दखल रखता है। वह अपना दुक्खम-सुक्खम नहीं बतियाता। गाँव-जवार की तो उसे फुरसत ही नहीं। वह राष्ट्रनीति का व्याख्याता है, विदेशनीति का परम आचार्य है और ज्ञान-विज्ञान की नाना शाखाओं का प्रकांड पंडित। जो उसकी जद में नहीं है, वह ज्ञान-विज्ञान की किसी दूसरी शाखा-प्रशाखा में भी नहीं है। वह महाअवधूत है। श्मशान-सी सुनसान सड़क के किनारे बैठ पूरी दुपहरिया ज्ञान-साधना करता है। दुपहरिया ही क्यों, तिझरिया और शाम, बल्कि देर रात; जब तक कि कालभैरव का महाप्रसाद पा स्वयं महाभैरव न हो जाए और उसके मुँह से मोहन, उच्चाटन और मारण के मंत्रों का भैरव नाद न होने लगे, तब तक निरंतर यह मसान उससे सेवित ही रहता है।

विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं तथा दैनिक पत्रों में कविताएँ, निबंध और लेख प्रकाशित। सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी पदक तथा स्वर्ण पदक से सम्मानित। संप्रति प्राध्यापक (हिंदी भाषा एवं साहित्य) विदेशी भाषा एवं अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।

पहला गाँव मेरे बचपन के साथ विदा हो गया और दूसरा बंद किवाड़ों के भीतर बंद। कभी-कभी उससे उठती सिसकियाँ, गाली-गलौज के स्वर या कभी-कभार मंगलगान की मधुर आवाजों से अधिक उस गाँव की परिधि में प्रवेश की अनुमति घर के बाहरी आदमी को नहीं है। वह तो दरवाजे पर खड़ा होकर आवाज दे सकता है। उस आवाज का जवाब भी पहले या तीसरे गाँव का आदमी ही देगा, दूसरे गाँव ने तो सनातन चुप्पी साध रखी है; ऐसा लगता है, गोया वह जबान हिलाना ही नहीं जानता। वह जन्मजात गूँगा और बहरा है। या फिर उसकी जबान पहले या तीसरे के पास गिरवी है और उसी के कर्ज की रोटी खाकर सूद में पहले या दूसरे गाँव की पौधें तैयार कर रही है। हाँ, कभी-कभी भूलवश किसी 'खेझरा' धान का बीज इस्तेमाल कर लेने से नर्सरी में दूसरे गाँव की पौध भी तैयार हो जाती है। समझदार किसान उसे रोपाई से पहले ही छाँट देता है। जब ऐसा नहीं होता तो समझदारी इसी में है कि उसे समय से पहले काट-पीटकर गोदाम में रख दो, नहीं तो झरंगा की तरह वह जल्दी पककर झड़ जाएगी और किसान हाथ मलता रहा जाएगा खेत और किसान का हर्जा करेगा सो अलग।

बहरहाल, मैं तीसरे गाँव का आदमी हूँ। इसलिए उसी की बात करूँगा। मेरी ये बहकी-बहकी बातें सुनकर आप पूछ सकते हैं, मेरे इस गाँव का नाम क्या है? गाँव कोई भी हो सकता है। मेरा, आपका, इनका, उनका। किसी का भी। अजी, छोड़िए भी, क्या फर्क पड़ता है? किसी का हो। कहीं का हो। पते की जरूरत डाक पहुँचने तक है। जब यह डाक आप तक पहुँच ही जाएगी तो पते की भला क्या जरूरत। लिफाफे और मजमून तो खिलंदड़ों के भाँपने के लिए होते हैं। अपन को न खिलंदड़ी आती है और न खिलंदड़ों से वास्ता ठहरा। अपन तो ठहरे ठेठ गँवई आदमी। जैसा मेरा गाँव वैसा आपका। वैसा ही इनका और उनका भी। सुबह उठाकर दिशा-फरागत, खैनी-गुटखा और साँझा को ठर्रा। बीच का दौर झक्क उज्जर नील-टिनोपाल पड़े कुरते, चाय की चुस्कियों और आग के गोलों की तरह उछलती बहसों का। भला जेठ की दुपहरिया की धूप में वह ताप कहाँ, जो इन आग के गोलों में है। अमेरिका की बड़ी-बड़ी मिसाइलें हों या चीन और रूस के आणविक हथियार, सब उसके ताप में गलकर तरल और कभी-कभी हवा भी हो जा रहे हैं। बीच-बीच में पान की पिच्च और तांबूल रंजित ठहाकों के कहने ही क्या? वे तो संक्रामक रोग की तरह गाँव के एक ताश अड्डे से दूसरे ताश अड्डे और एक नुक्कड़ से दूसरे नुक्कड़ तक हवा में तैर रहे हैं। यह बात अलग है कि इस घोर दुपहरिया में हवा भी पेड़ों की छाँव में दुबक जाती है, अन्यथा यह बीमारी डेंगू, चिकनगुनिया आदि-आदि से अधिक तेजी से पूरी दुनिया में फैल गई होती।

यह तीसरा गाँव पहले और दूसरे से अधिक पढ़ा-लिखा और होशियार है। अखबार बाँच सकता है, देश-जहान की बातें कर सकता है, बात-बात में देश की राजनीति, विदेशनीति और युद्धनीति पर बहसें कर सकता है, चौराहे पर बैठा-बैठा चाय की चुस्की लेते हुए सीरिया-लेबनान तक टहलकर आ सकता है, (कभी-कभार मंगल और चंद्रमा तक भी उड़ाने भर सकता है, लेकिन उसके लिए एनर्जी ज्यादा लगती है), गाँव-घर की मरनी-जियानी से लेकर दुनिया-जहान की बातें कर सकता है। और तो और, सामनेवाले से कमतर महसूस होते ही दूसरी सूचनाओं की जगह अपनी डिगरियाँ गिनाकर सामनेवाले पर धौंस दिखा सकता है। लब्बोलुआब यह, वह दुनिया में कोई भी करणीय और अकरणीय काम कर सकता है; सिवाय एक काम—घर में दो जून की रोटी के इंतजाम के। सानी-पानी, फावड़ा-कुदाल चलाना कौन कहे, खेत की डाँड़-मेड़ तक उसके लिए अछूत हैं। देश-दुनिया में अस्पृश्यता भले कम हुई हो, उसे क्या, उसके लिए तो ये सब सनातन अस्पृश्य चीजें हैं। भल, सारी पढ़ाई-लिखाई या कलम घिसाई इसी की खातिर की थी! नहीं न! फिर खेती रही होगी बाप-दादों के लिए उत्तम चीज, पर उसके लिए वह अपमानजनक है। खेतिहर भी क्या कोई मनुष्य होता है; दिनभर खेत में घिसाई और रात को मौसम की चिंता में उनींदी आँखें। सो खेती से उसका भावह-भसुर का रिश्ता है। कभी गाहे-बगाहे कुछ कर-करा भी दिया तो पूरा गाँव-गिराँव जान जाएगा कि आज फलाने बाबू रोपनी के खेत की मेंड़ पर खड़े बनिहारिन ताड़ रहे थे या अलाने बाबू खलिहान में ओसावन करनेवाले बनिहार के आगे बोरे का मुँह खोलकर खड़े थे और चार बोरे के बाद पाँचवें में ऑस्ट्रेलिया-भारत का मैच देखने चले गए थे। पर गाँव की खबरनवीसों को इस तरह की सुर्खियाँ बनाने का मौका कम ही मिलता था, अकसर सुर्खियों में हमारे दूसरे कारनामे ही होते, जिनके नाम तो बदल जाते, पर प्रकृति वही रहती। इन सुर्खियों को बनानेवाले, बाँचनेवाले और फिर इसपर गलचौर करनेवाले भी हमारे ही गाँव के वासी थे। हमारे यानी तीसरे गाँव के। पहले गाँव ने हमें पहले ही बहिष्कृत कर रखा था। सच तो यह है कि हमीं उन्हें अपने स्तर का नहीं मानते। इसलिए सबेरे-सबेरे ही सविनय अवज्ञा के साथ चौराहे पर निकल आते। उनसे तो अपना साबका तभी पड़ता जब कोई किसान-क्रेडिट कार्ड या सरकारी लोन की वसूली-तसूली के लिए दरवाजे पर बैन का आदमी आ पहुँचता और पहले गाँव का आदमी लाठी टेकते-टेकते हमारे तीसरे गाँव में आ धमकता। वह आदमी भी हममें से किसी एक का रिश्तेदार होता। उसे दूर से देखते ही उसका संबंधी दिशा-मैदान या बहस-मुसाहिबा के लिए कहीं निकाल लेता और तक दुबारा दर्शन नहीं देता, जब तक वे लोग राह ताकते-ताकते निकल न जाते।

रही बात दूसरे गाँव की, तो वह दिनभर हमारे भूगोल से ही बाहर होता है। हाँ, कभी-कभी इतिहास या साहित्य का हिस्सा जरूर बन जाता, वह भी रीमा भारती और वेद प्रकाश के उपन्यासों का लिबास पहने, क्योंकि दिन के उजाले और लिबास में उसे देखने की हमें आदत ही नहीं रह गई है। हाँ, कभी-कभी कुछ नावाछिटिया मेंबर चायना मोबाइल और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की कृपा से रात्रिकालीन सेवा का दिवस-संस्करण स्क्रीन पर जरूर उतार लाते, लेकिन उसके बाद ही वे पाँत बहिष्कृत हो कोई और बाट पकड़ लेते। इसलिए दूसरे गाँव के समाचार माध्यमों तक हमारी खबरें या तो पहुँचती नहीं या पहुँचतीं भी तो पहले गाँव के आदमी के पुराने लाज-लिहाज से फिल्टर होकर। सो अपनी यह धूनी पूरी तरह सेफ थी। और उस दूसरे गाँव की जगह इस तीसरे गाँव की चौहद्दी में बहुत थी भी नहीं। सो दोनों ने एक अघोषित समझौता सा कर लिया था।

'पिच्च! ई ससुरी सरकार महिलन के आरक्षण देके हमहन के सड़क पर घुमावत ह।' टम्मन काका बड़ा जोर देके बोलते हैं। हैं तो पुरान संघतिया बाकी गाँव के रिश्ता-नाता की बात ठहरी, सो वे एक पुश्त आगे निकल गए। वही क्यों, सब अपने मान-मर्यादा और रिश्ते-नाते के साथ सीधे चले आए हैं पहिले गाँव से। पहिला गाँव से अलग एक नया टापू होने के बावजूद मान-मरजाद से कोई समझौता नहीं है यहाँ। पांडेजी, उपाध्यायजी, तिवारीजी, राय साहब, बाबू साहब, जाधवजी, सींघ साहब, गुप्ताजी, वर्माजी से लगायात चाचा, काका, दादा सब अपने पूरे मान-मरजाद में बरकरार हैं। हाँ खान-पान में सब गोसाईंजी के चेले हैं, माने 'मुखिया मुख सों चाहिए खान-पान को एक'। मुरगा, मुरगी, कालिया, कबाब से लेकर तमाम खाद्य-अखाद्य, पेय-अपेय सब एक ही मुख और एक ही भाव से खाते हैं। इस गाँव के बासिंदे मान-मरजाद और उपाधि-सुपाधि तक भले सामंती हों, अपने व्यवहार में पूरी तरह लोकतांत्रिक और मानवीय हैं। एक ही बोतल और

एक ही पत्तल में शराब और चखने में सब बाँट लेते हैं। उसमें पप्पू पंडित और समशद धोबी या विजय बाबू और झिंदूरी दुसाध में कोई फरक नहीं। पढ़े-लिखे जो ठहरे। ऊँह, निठल्ला पहला गाँव! झूठी शानो-शौकत, झूठा छुआ-छूत। अरे, 'एक बूँद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा। एक जोति थे सब उतपना, कौन बाहमन कौन सूदा।' भारत काका पुराने कबीर पंथी ठहरे। पुराने माने इतने कि इस तीसरे गाँव के सबसे उम्रदराज सदस्य हैं, लेकिन मेंबरी अभी नई है। दरअसल गाँजे से जल्दी ही ठर्रा पर शिफ्ट हुए हैं, सो पहिला गाँव के परभंस बाबावाले पुराने अखाड़े से बेदखल हो इस तीसरे गाँव में हेल आए हैं। सो बात-बात में कबीर बाबा की याद उन्हें सताने लगती है।

इधर इस गाँव के दो टोले हो गए हैं। एक उत्तर और दूसरा दक्खिन। जाहिर है, दक्खिन पर अछूतों का पुराना हक है। सो यह दक्खिन टोला यहाँ भी अछूत है। बात-बात में उसे दक्खिन लगा दिया जाता है, कभी जबान से और कभी आँखों-ही-आँखों में। यह नया टोला अब पहिले और दूसरे गाँव के भूगोल के थोड़ा करीब आ गया है। सड़क से हटकर बारी में। बराइठा के भीटे पर रोहनियावा आम के नीचे सरस साधना में लीन है। इसके पास न छीलम-गाँजा है और न खैनी, न ठर्रा। हो भी कैसे? कहाँ तो रोहिनियावा आम की चटक पीत बैकुंठी आभा और कहाँ नशों का तामसी संसार?

इधर डॉक्टर विद्या विशारद भी इस गाँव के नए सदस्य बने हैं। हिंदी साहित्य में पीएच.डी. हैं और १५-२० साल कई विश्वविद्यालयों और शहर-शहरात की खाक छान चिर बेरोजगार का तगमा लेकर लौटे हैं, सो जब-तब उनका ज्ञान का दौरा पड़ जाता और इसी तरह वे भी बलबला पड़ते। शुरू-शुरू में बलबलाने के बाद मंडली की ओर सिर उठाकर देखते भी पर कोई दाद तो छोड़िए, ध्यान भी तैयार न होता। पढ़े-लिखे शहराती पागल से अधिक की गिनती न थी उनकी। कुछ दिन विचारधारा वगैरह का भी चक्कर काटा था उन्होंने। इसलिए शुरू-शुरू में डी-क्लास-वी, क्लास की भी सोचते थे। पर जल्द ही पता लग गया कि यहाँ कोई क्लास-व्लास से वास्ता नहीं। यह गाँव इन सबसे ऊपर उठे मुमुक्षुओं का गाँव है। दिनभर की बड़बड़ साधना और शाम ढले ठेके पर पहुँच मोक्ष की प्राप्ति ही इनके जीवन का परम लक्ष्य है। उसके बाद तो पान की एक गिलोरी के बाद सारा ज्ञान-विज्ञान, क्लास-व्लास, विचारधारा-सिचारधारा तलवे के नीचे, बचा तो सिर्फ बम भोला। इस ज्ञान के बाद ही विशारदजी ने अपने सब डिगरहिया ज्ञान को एक दिन बस पर लादकर सर्वविद्या की राजधानी भेज दिया, जहाँ से उन्होंने ये विद्याएँ ग्रहण की थीं। अब वे भी निधड़क निरंजन हैं, जो मन आए बोलो-कहो। पर परम ज्ञान की साधना से अभी वंचित हैं, जो शाम ढलने के बाद उनके तमाम सांघतियों को प्रज्ञापेय के पान के बाद प्राप्त होता है।

इधर इस गाँव के दो टोले हो गए हैं। एक उत्तर और दूसरा दक्खिन। जाहिर है, दक्खिन पर अछूतों का पुराना हक है। सो यह दक्खिन टोला यहाँ भी अछूत है। बात-बात में उसे दक्खिन लगा दिया जाता है, कभी जबान से और कभी आँखों-ही-आँखों में। यह नया टोला अब पहिले और दूसरे गाँव के भूगोल के थोड़ा करीब आ गया है। सड़क से हटकर बारी में। बराइठा के भीटे पर रोहनियावा आम के नीचे सरस साधना में लीन है। इसके पास न छीलम-गाँजा है और न खैनी, न ठर्रा। हो भी कैसे? कहाँ तो रोहिनियावा आम की चटक पीत बैकुंठी आभा और कहाँ नशों का तामसी संसार?

यह नए किस्म के अवधूतों का टोला है। इनकी धूनी हर दुपहरिया किसी बगीचे, किसी पोखरे के भीटे या किसी छान-छप्पर या किसी आम या महुए की गाँछ तले जगती है और तिझरिया बिना किसी ताम-झाम के आगली दुपहरिया के लिए बिलम जाती है। इसके लिए न पहला गाँव अनपढ़, गँवार-जाहिल है और न दूसरा गाँव ठेठ उपेक्षणीय। इसकी रस-साधना में इन दोनों की चर्चा अनिवार्य मंत्र हैं। वह इनका जाप कर रहा है, उनपर बहस कर रहा है, उनकी बातें कर रहा है, उनकी चिंताओं-दुश्चिंताओं से सरोकार रख रहा है और हर तिझरिया यह लड़खड़ाते कदमों से नहीं अधिक मजबूत कदमों से गाँव की ओर लौट रहा है। यह न देश की राजनीति से नावाकिफ है और न उसके चरित्र के प्रति आश्वस्त, फिर भी उसकी चिंता का पहला विषय पहला और दूसरा गाँव है; दूसरे गाँव की कोख में पलती और गोद में खेलती तीसरे गाँव की औलादें हैं। यह नया टोला इस गाँव का इतिहास पढ़ रहा है। ताल-पोखर, डाँड़-मेंड से संवाद कर रहा है, पेड़ों के पत्तों-पत्तों से उनका हाल-चाल पूछ रहा है। यह सीख रहा है कि इन सबने कैसे अपनी हवा से, अपने पानी से और अपनी मिट्टी से अपने हरे-भरे आँचल की छाँव में इस गाँव को पाला, पोसा, सँभाला-सहेजा? किस तरह इन्होंने हमें जीवन के पहले पाठ सिखाए? हमें यानी हमारे दादों-परदादों से लेकर हमारी पीढ़ी तक। जी हाँ, हमारी पीढ़ी। हाँ-हाँ खैनी खाकर पिच्च से थूकनेवाली हमारी पीढ़ी, लड़खड़ाते कदमों से चौराहे से घर लौटनेवाली हमारी पीढ़ी, अपने ही बाप-दादों को मूर्ख और जाहिल समझनेवाली हमारी पीढ़ी।

दोष इस पीढ़ी का नहीं, उन पाठशालाओं का था, जहाँ हमने 'सत्यं वद धर्मं चर' की सहज शिक्षा की पोथीबद्ध व्याख्याएँ रट लीं और अपनी सुविधा के अनुसार उनके नए भाष्य भी कर डाले। हमारा यह नया टोला इन पोथियों के बाहर की जीवन की सहज पाठशालाओं की ओर लौट रहा है। यह वह पाठशाला है, जहाँ पेड़ है, नदी है, खेत है और उनमें रमता हुआ सहज निरुज मन है। सहजता की यह पाठशाला ही जीवन की वास्तविक पाठशाला है। मानवता का हर रास्ता इस पाठशाला से होकर ही गुजरता है। यही वह आखिरी रास्ता है, जिससे हमारा तीसरा गाँव चौराहे की मसान-साधना छोड़ पहले गाँव में फिर से दाखिल हो सकता है, रात के बसेरे की तरह नहीं, अपनी पूरी आत्मीयता के साथ। तब किसी विद्या विशारद को अपने ज्ञान की गठरी बस पर लाद किसी

सर्वविद्या की राजधानी नहीं भेजनी होगी, किसी टम्मन काका को स्त्रियाँ के आरक्षण के लिए सरकार को नहीं गरियाना होगा और न एक पत्तल मुरगा और बोतल सदाबरत चलाकर अपने व्यक्तित्व की लोकतांत्रिकता सिद्ध करनी होगी। तब इस रोहनियावा आम की वैष्णव आभा की तरह हमारे गाँव की वैष्णवता पूरे शबाब पर होगी और उसकी रस-साधना का सा आनंद पूरे जहान में कहीं न होगा। न कोई दैन्य होगा न पलायन, न बँटवारा और न टोला। पूरा गाँव, पूरी सरेहि और उसमें बिखरा हुआ सारा कुमकुम-चंदन ही हमारा अंगराग होगा और उसकी शस्यश्यामल धरती ही हमारा आराध्य। हमारे कर्म की स्वर्णाभ आभा ही उसका पीतांबर होगा और तब हम भी चैतन्य महाप्रभु की तरह इस विराट् श्यामलता लीन हो जाएँगे। यह तल्लीनता ही हमारे जीवन का लक्ष्य होगा और तब हम भी अपने गाँव के उस बूढ़े साधू की तरह पूरी तरंग में गा सकेंगे—

ज्यों गूँगो मीठे फल की रस अंतर्गत ही भावै॥
परम स्वादु सबहीं जु निरंतर अमित तोष उपजावै।

यह 'तोष' ही जीवन की चरम साधना और उसकी चरम उपलब्धि है। पुरानी आत्मवादी दार्शनिक शब्दावली इसे ही मोक्ष कहती है और अनात्मवादी शब्दावली निर्वाण। यह मोक्ष या निर्वाण जीवन से परे किसी अज्ञात लोक में लब्ध होनेवाला आनंद या सुख नहीं, इसी जीवन में इसी लोक में मिलनेवाला सुख है। बहुत पहले हमारे गाँव की इन्हीं अमराइयों में रमनेवाले एक मनस्वी कवि के मुँह से किसी निसर्ग सुंदर रूपसी को देखकर अनायास ही फूट पड़े ये शब्द इसके प्रमाण हैं— 'अहो लब्ध नेत्र निर्वाणम्।' नेत्रों को निर्वाण सुख देनेवाला यह रूप किसी नागर कन्या में संभव भी कैसे हो सकता है, अवश्य ही किसी जानपद क्षेत्र की अमराइयों में ही कहीं कवि को उसका साक्षात्कार हुआ होगा और उसकी अभ्यर्थना में उसने पूरा का पूरा नाटक (अभिज्ञान शाकुंतलम्) ही रच डाला और वह भी उस कन्या की तरह ही अपूर्व। यही नहीं, उसके सौंदर्य की अभिव्यक्ति भी ऐसी की, जो समूचे भारतीय साहित्य में विलक्षण है और उसी के दम पर उपमा के क्षेत्र में सदियों से समूचे भारतीय साहित्य में अकेले ताल ठोंके खड़े हैं।

निसर्ग का साहचर्य ही विलक्षण है। सर्जनात्मक है। जीवन में रस और तरंग का संचार करनेवाला है। विश्व में जो भी सर्जनात्मक है, मंगलमय है और सुंदर है; वह निसर्ग के ही सान्निध्य का दाय है। निसर्ग की छाया से दूर जीवन की सहजता ही लुप्त नहीं होती, उसमें अमंगल का बीज भी अपने आप अंकुरित होने लगता है। कृत्रिमता, कुटिलता, व्यभिचार, घृणा, वैमनस्य, रोग, दुःख, सब-के-सब निसर्ग से दूर होते मानस की कलाएँ हैं। जैसे-जैसे हम इससे दूर होते जाएँगे, हमारे भीतर ये कलाएँ वैसे-वैसे अधिक विकसित होती जाएँगी। धीरे-धीरे हम यंत्रीभूत और क्षयग्रस्त हो जाएँगे। आज हमारी संस्कृति और सभ्यता के जो भी उपादान हैं, वे हमें विकास के शीर्ष की ओर तो ले जाते हैं, पर इस शीर्ष के आगे भी कुछ है। भले ही वह आज अज्ञात है, अदृष्ट है और मोहक या आकर्षक है, लेकिन कल? यह प्रश्न अनुत्तरित है। हाँ, इस कल की संकेत भी हमें प्रकृति के माध्यम से ही हमें मिल रहे हैं। पिघलते ग्लेशियर, टूटते हिमशृंग, तप्त होती धरती, बदलता मौसम-चक्र, यह सब हमारे विकास लब्ध भावी जीवन के ही पूर्व संदेश हैं।

साअ

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा-४४२००१ (महाराष्ट्र)
दूरभाष : ९८९११०८४९१

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

आँच

● ऋचा सत्यार्थी

गली-मोहल्ले में धाक है सुलेमान शरीफ की। या यों कहिए कि उसके बारह इंची चाकू की। वैसे शरीफ वह नाम का ही है। असल में तो वह यहाँ का दादा है, माना हुआ। यहीं का क्यों, आसपास के सभी गली-मोहल्लों का। उसे लोग दूर से देखकर ही रास्ता छोड़ देते हैं। कोई उससे उलझता नहीं, क्योंकि उलझनेवालों को वह अच्छी तरह सुलझा देता है। यदा-कदा कोई नया चेहरा सामने पड़ ही गया, तो पलक झपकते बारह इंची चाकू बाहर निकल आता है, चमचमाता हुआ, कसी हुई पेंट की बेल्ट में से। आँखें उसकी पत्थर की हैं—अंधे कुओं की तरह बेजान! देखकर लोग डर जाते हैं। चाकू की धार पर अजीब खूँखार अंदाज में हाथ फिरता देख सामनेवाला भी घबरा जाए कि अब उँगलियाँ लहूलुहान हुईं, अब हुईं, मगर मजाल कि एक खरोंच भी आ जाए। वह उसी तराशे हुए अंदाज में उँगलियाँ फिराता, गुर्राता है, 'अभी तो इसकी चमक दिखा रहा हूँ, अगली बार धार देखेगा, समझा! शरीफ का शराफत से कोई वास्ता नहीं!' सुनकर जिस्म में जैसे एक ठंडी लहर दौड़ जाती है।

शहर में खन्ना की नई-नई पोस्टिंग हुई है। पहले ही दिन बाहर निकला, तो पहले चौराहे पर खूबसूरत शहर के पोस्टरों ने स्वागत किया और दूसरे चौराहे पर सुलेमान से टकरा गया। यानी सामने पड़ गया···चिकनी-गंजी खोपड़ी, लाल रंग की टी-शर्ट और काल रंग की कसी हुई पेंट। यह नहीं कि खन्ना को कुछ बताया न गया हो। सिन्हा साहब ने न उस पड़ोसी के प्रति सबसे पहली फर्ज-अदायगी की थी। मिलते ही सुलेमान का पूरा चरित्र-चित्रण किया और फिर खन्ना को उससे दूर रहने की नेक सलाह दे डाली। सिन्हा क्या, सब यही करते हैं, मौके पर भले ही सब कतराकर निकल जाएँ।

'साला···सीधा चढ़ा आ रहा है, अंधा है? हट सामने से!'

खन्ना जरा भी नहीं डरा। उसका यहाँ के पुलिस सुपरिंटेंडेंट मेहता से अच्छा मेल-मिलाप है। फिर उम्र भी अभी नई-नई है।

'क्यों भाई, क्यों हटें?'

'अच्छा, अच्छा! साले जुबान लड़ाता है? काट के फेंक दूँगा, हटता है या···'

खन्ना बाएँ से आ रहा था, सही हाथ पर। फिर हटने का क्या मतलब!

जानी-मानी डॉक्टर एवं कवयित्री-कथाकार। 'उस पार का सच' बहुचर्चित, पुरस्कृत काव्य-संग्रह। हिंदी की सभी शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में प्राकशन। संप्रति मेडीकल ऑफीसर/ अ. सर्जन उमरिया (म.प्र.)।

'भाई साहब, एक तो आप गलत हाथ पर चल रहे हैं, ऊपर से ख्वामख्वाह नाराज हो रहे हैं। सड़क आपकी है या आपके···'

सुलेमान की आँखें उबल पड़ीं, सामने से आते ट्रक को रास्ता देने के लिए खन्ना साइड हो गया। खन्ना शरीफ आदमी है, प्रतिष्ठित समाज का अंग। यों सरेआम गुंडे-बदमाशों से उलझना उसकी अपनी बेइज्जती है। वह रुका नहीं। ट्रक गुजर गया। तब तक वह भी आगे निकल चुका था। सुलेमान की घूरती आँखें उसकी पीठ पर चिपकी रहीं।

अगले दिन फिर सुलेमान के सामने पड़ गया। खन्ना उलझना नहीं चाहता। क्या फायदा, वह थोड़ा-सा अलग हटकर दूसरी तरफ हो गया। सुलेमान दोनों होंठ फैलाकर मुसकराया। फिर जब खन्ना बगल से निकला, तो उसने एक भद्दी सी गाली उसकी तरफ उछाल दी। खन्ना का खून खौल गया। वह चाहे तो उससे लड़ सकता है, एक से, बीस से नहीं लड़ सकता। और फिर वह चाकू, न-न, भला खन्ना और चाकू!

मगर वह सही हाथ पर होते हुए भी साइड से नहीं निकलेगा। ऐसे तो वह गुंडा हावी हो जाएगा। आज गाली, कल कुछ और। वह अपना रास्ता नहीं बदलेगा। और हुआ भी यही, इस बार खन्ना उसे देखकर भी सीधा बढ़ा। सुलेमान का हाथ लहराया। खन्ना ने पूरी ताकत से अपनी ओर बढ़ा हाथ रोका। सुलेमान के होंठ गोल हो गए। खन्ना ने कुन्ने की पनवाड़ी की दुकान पर खड़े, गेंडे जैसे शरीर को अपनी तरफ झपटते देखा। तो यह इसका आदमी है, वह तो समझा था कि यों ही खड़ा है। तभी दो और गुंडे निकलकर झपटे, एक कुछ ठिगना-सा गिद्ध जैसी आँखोंवाला, दूसरा कुछ···नहीं, दूसरे को वह देख नहीं पाया, दर्द की एक तीखी अनुभूति के सिवा उसे कुछ याद न रहा।

उसका पोर-पोर दु:ख रहा था। दिमाग के सारे तंतु जैसे खिंचे जा रहे थे। उसने सोचा कि पत्नी को सबकुछ बता देना चाहिए। उसकी पत्नी

किचन से सिंकाई के लिए गरम पानी लेने गई थी। लौटकर आई, तो वह पीठ के बल पड़ा कराह रहा था। पत्नी को देखकर वह इस करवट हो गया। और जिन चोटों को उसकी पत्नी स्कूटर-दुर्घटना का परिणाम समझ रही थी, उनकी असली वजह उसे सुनाने लगा। पत्नी आतंक से फट पड़ी। कुछ बोल भी नहीं पाई, बस उसके माथे पर हाथ फेरती रही। खन्ना को चोट पर मरहम का सा अहसास हुआ। वह जानता था कि पत्नी कुछ नहीं कर सकेगी, मगर फिर भी बताकर उसे राहत-सी महसूस हुई।

खन्ना थोड़ा सहमा-सा रहने लगा। नुक्कड़ पर, चौराहों पर लगे खूबसूरत शहर के पोस्टर अब धुँधले पड़ने लगे हैं। कल उसने पत्नी से कहा कि 'ख' अक्षर तो ठीक है, लेकिन खूबसूरत नहीं खतरनाक! पत्नी भला क्या कहती?

अब वह जब भी बाहर निकलता है, अकसर अकेला ही, डरता है कि कहीं वे लोग पत्नी या बच्चे से कुछ न कह दें। कम-से-कम वे दोनों तो घर में सुरक्षित हैं। एक दिन बाहर उसे अचानक खयाल आया कि कहीं वह उसके घर पहुँच गया तो सुलेमान की खोली उसके फ्लैट के करीब ही है! पसीने से तर-बतर हो गया। रगों में आतंक की तेज लहर दौड़ गई। सुरक्षा का खयाल तार-तार हो गया। कसाईखाने वाली गली से होकर लंबे कदम रखता हुआ घर पहुँचा। सब ठीक-ठाक था, पत्नी उसकी उधड़ी हुई पेंट की तुरपन कर रही थी। बच्चा खिलखिलाकर हँस रहा था। पत्नी उसे देखकर शरारत से मुसकराई। वह खुल के हँसना चाहता था, मगर मुसकराकर रह गया।

अब वह काम के अलावा कम बाहर निकलता। और हमेशा मुख्य सड़क की बजाय, कसाईखाने वाली गली से होकर लौटता। अपने फ्लैट पर पहुँचने से पहले आसपास नजर डाल लेता और तब कॉल-बेल पर उँगली रखता।

आज जब पत्नी ने बाजार चलने की बात की, तो पहले वह साफ इनकार करना चाहता था, लेकिन फिर यह सोचकर कि कहीं पत्नी उसे कायर न समझ ले, उसे मजबूरन 'हाँ' करनी पड़ी। पत्नी ने गुलाबी क्रीम सिल्क की साड़ी पहनी। खन्ना को हल्के रंग की साड़ियाँ पसंद हैं।

साड़ियाँ क्या, उसकी हर पसंद हल्के रंग में है, चाहे उसके डबल बैड पर बिछी चादर हो या खिड़कियों पर पड़े परदे या चीनी-मिट्टी के फूलदान, सब हल्के रंगों में हैं। अमीनाबाद पहुँचकर पहले उन्होंने शॉपिंग सेंटर से कुछ कपड़े खरीदे। पत्नी ने उसके लिए एक पैंट-पीस खरीद डाला। उसका दिल गुजरे दिनों की तरह हल्का-फुल्का सा हो गया। फिर वे 'वोलद्द' में जाकर बैठे। कॉफी पी, सेंडविचेज लिये। वहाँ से निकले तो बच्चे के लिए खिलौने खरीदे। सबकुछ ठीक-ठीक हो रहा था। अब वह पूरी तरह नॉर्मल हो गया और पत्नी की बात पर खुलकर मुसकराने लगा। पत्नी ने फलवाले से कुछ फल लिये और अपनी बास्केट में डलवा लिये। उसके पास कपड़ों के पैकेट थे और पत्नी के पास फलों की बास्केट, अभी वे दो कदम ही चले थे कि पीछे से आती एक साइकिल का अगला पहिया पत्नी के हाथ में थमी बास्केट से टकराया और बास्केट उसके हाथ से छिटककर दूर जा गिरी। फल सड़क पर इधर-उधर नाचने लगे···पत्नी की क्रीम सिल्क साड़ी का पल्लू पहिए में उलझकर 'चर्र-से' फटता चला गया।

दूर जाती साइकिल पर खन्ना लाल-टी शर्ट की झलक भर देख पाया। आसपास के लोग अब उनकी तरफ देखने लगे। वह ऐसे रहा, जैसे कुछ न हुआ हो। फिर उसने ठेलेवाले से कुछ और फल खरीदे और पत्नी के साथ घर की तरफ चल दिया। रास्ते में वह पत्नी से मुसकराकर बातें करता रहा। मगर घर जाकर उसने खाना नहीं खाया और बिना खाए-पिए पलंग पर पड़ गया। पत्नी ने भी आग्रह नहीं किया।

फिर चार-छह दिन कोई अप्रिय घटना नहीं हुई। पत्नी ने और उसने चैन की साँस ली। सेकेंड सेटरडे उसकी छुट्टी थी, और वह सुबह से ही अच्छे मूड में था। बाहर लगातार रिमझिम हो रही थी। सुबह पत्नी ने पकौड़ियाँ तल ली थीं और वह गरम-गरम के चक्कर में ज्यादा खा गया। फिर पत्नी से बोला कि आज खाने की छुट्टी, शाम को मन हुआ कि मिस्टर वर्मा के यहाँ तक हो आएँ। यह मौसम और वर्मा साहब की शतरंज की चालें, खासा कांबीनेशन रहेगा। फिर लौटते हुए सेंट्रल लाइब्रेरी भी हो आएगा, नौकरी में तो जैसे सारे शौक राख हो गए हैं। उसने अपना सफेद सफारी निकाला और फटाफट तैयार हो गया। फिर पंप शज पहनते हुए पत्नी से दो घंटे में लौट आने की बात कही और बाहर निकल आया। उसका शानदार सूट वाकई मौसम के मुताबिक नहीं था, लेकिन बॉस के यहाँ जो जाना था, क्या करता। सँभल-सँभलकर कदम रखता वह कच्ची सड़क पार कर मेन रोड तक आ पहुँचा। अभी वह कॉन्वेंट तक ही आ पाया कि फिर कच्ची सड़क शुरू हो गई। आगे एक तरफ गड्ढा होने की वजह से वहाँ गंदा पानी भर गया था। खन्ना को वह किसी खाई से कम नहीं लगा। उसने बचते हुए किनारे से निकलने की कोशिश की, तभी काले रंग की भारी बुलेट छपाक से उसके करीब आकर रुकी और गँदले पानी के छींटे उड़ते हुए उसके पंप शूज और पैंट को ऊपर से नीचे तक रंग गए। उसकी आँखों में खून उतर आया। सुलेमान ने जल्दी से झुकते हुए कहा, गलती से गाड़ी पानी में उतर गई, 'हुजूर, माफी चाहता हूँ···शरीफ का शराफत से···' और पलक झपकते बुलेट आँखों से ओझल हो गई। पिघले हुए सीसे की तरह उसके आखिरी लफ्ज खन्ना के कानों को चीर गए। एक पल को तो जैसे वह क्रोध से पागल हो गया।

फिर उसका उफनता क्रोध बेबसी में बदल गया। मन हुआ कि कहीं जोर से रो दे, अब···अब क्या हो? ऐसी हालत में वह चीफ के यहाँ तो क्या, कहीं भी नहीं जा सकता। कहीं भी नहीं। वह वापस मुड़ गया। फ्लैट पर पहुँचकर उसने कॉल-बेल बजाई। पत्नी उसे इतनी जल्दी वापस आया देखकर पहले तो विस्मित हुई, फिर चेहरे और कपड़ों पर नजर पड़ते ही जम-सी गई। अंदर आकर पति के हाथों से कोट लेते हुए

उसने कहा, 'कौन, वही होगा··· ?' 'हाँ' उसने थके, रो देनेवाले स्वर में कहा और निढाल सा बिस्तर पर गिर पड़ा। पत्नी निरीह आँखों से उसे तकती रही, फिर कॉफी लाने किचन की तरफ बढ़ गई।

□

'सुलेमान तुम्हारा नाम है!' सधी हुई आवाज सुनकर सुलेमान ने चेहरा उठाया, सामने चौखट थामे हुए वह खड़ी थी, खन्ना की बीबी। सुना था खन्ना स्याला किस्मतवाला है, ऊँचे खानदान की, अंग्रेजी पढ़ी खूबसूरत बीबी है पट्ठे की, ठीक सुना था। मगर इस समय तो उसकी आँखों में जैसे खून उतरा हुआ था। घायल शेरनी की तरह चीखते हुए वह बोली, 'तुम समझते हो कि तुम हमें डरा लोगे? तुमने सोचा होगा, तुम्हारी इन रात-दिन की हरकतों से तंग आकर हम शहर छोड देंगे, या तुम्हारे सामने सिर झुका लेंगे। नहीं, उनमें से नहीं हैं हम! हम कहीं नहीं जानेवाले। यहीं रहेंगे, तुम्हारी खोली के सामने सिर उठा के। ऐसे मान जाओगे तो ठीक, नहीं तो और भी रास्ते हैं, और सुनो, हमारी पुलिस में भी जान-पहचान है। अबकी बार तुमने उन्हें कुछ कहा, तो सुन लो, अच्छा नहीं होगा।'

'लो सुन लो, पुलिस की धौंस दे रही है और किसको? पुलिस के बाप को।' इत्मीनान से चाकू की धार पर हाथ फिराता, सुलेमान गुर्राया—'अरे सुन, ज्यादा दिन नहीं जिएगा तेरा...बस, बहुत जी लिया स्याला, शरीफ का शराफत से दूर का वास्ता नहीं, समझी!'

'नहीं नहीं, नहीं' वह एकाएक फूट-फूटकर रो पड़ी। अब तक सँजोई हुई झूठी हिम्मत और बुलंद आवाज के लबादे जैसे तार-तार हो गए, 'उन्हें कुछ मत कहना प्लीज, उन्हें मत···'

तभी खन्ना का चार साल का गोरा-चिट्टा, मासूम-सा बच्चा, जिसे वह बाहर खड़ा कर आई थी, भयभीत-सा अंदर आ गया और एक हाथ से माँ का पल्ला पकड़कर उसे बाहर की तरफ खींचने लगा। वह थकी-थकी सी उसके साथ चल दी। तभी बच्चे ने माँ को सिसकते सुना, दरवाजे तक पहुँचकर वह चौखट थामकर मुड़ा और सुलेमान को देखकर, कुछ इस तरह जैसे कोई बेस्वाद-कड़वी चीज उसके मुँह में आ गई हो, और वह उसे थूक देना चाहता हो, नफरत भरे स्वर में बोला, 'चोल···बदमाछ कहीं का!' और अपनी माँ का पल्ला खींचता वहाँ से चल दिया।

सुलेमान का खून लावे की तरह खौल गया, जिंदा नहीं छोडूँगा साले के बाप को।' वह गला फाड़कर पूरी ताकत से चिल्लाया।

□

खूँटी पर टँगी तहमद बदन पर लपेटते हुए सुलेमान ने दरवाजा खोला। अरे, सुलेमान का खून फिर लावे की तरह खौलने लगा। वही गोरा-चिट्टा खूबसूरत-सा, बित्ते-भर का छोरा सामने खड़ा था। अकेला! दरवाजा खुलते ही वह चौखट को छोड़कर, एकाएक सुलेमान पर टूट पड़ा। नन्हे-नन्हे हाथों को सुलेमान के फौलादी सीने पर बरसाते हुए वह कह रहा था, 'तू चोल है, हाँ···आँ?···तू बदमाछ है···तुझे नहीं झोलूँगा, गोली छे माल दूँगा···ओं···नई छोलूँगा।' और मारते-मारते, चिल्लाते-चिल्लाते थक जाने के बाद खुद ही रोते-रोते बड़बड़ाने लगा, 'तुम गंदे हो···आँ? आँ···मेली मम्मी को लुलाते हो···तुम गंदे हो···'

फटी-फटी आँखों से सुलेमान देख रहा था। खोली के एक कोने में थका-हारा, टूटा-बिखरा-सा खन्ना का मासूम बच्चा रोते-रोते शायद सो गया था और सोते-सोते अब तक बड़बड़ा रहा था। सूजी हुई आँखों से गिरकर आँसुओं की धारें अब तक उसके भीगे हुए गालों पर बह रही थीं और चेहरे से अब तक जैसे एक मासूम-सी शिकायत लिपटी हुई थी।

सुलेमान की पत्थर-सी आँखों में एक आँच-सी भरने लगी, पत्थर में दरार पड़ने लगी और चट्टान को फोड़कर पानी का स्रोत बाहर आने को उछालें मारने लगा, 'अच्छा, इस बार छोड़ दिया स्याले के बाप को, याद रखेगा स्याला, वैसे शरीफ का शराफत से क्या वास्ता?' वह भर्राई आवाज में बोला। अब तक वह आँच आँखों से होकर रगों में होती हुई, उसके सीने के बाईं तरफ, जहाँ फौलाद का एक टुकड़ा रखा हुआ था, भरने लगी। उसे लगा कि वह हार गया है खन्ना से, खन्ना की पत्नी, खन्ना के बच्चे से, सारी दुनिया से हार गया है। हार और अपमान की घनीभूत पीड़ा में वह जलकर रह गया। रगों में खून, अब तक लावे की तरह खौल रहा था।

मगर सीने के बाईं तरफ उस कोने में सदियों से रखा फौलाद का वह टुकड़ा आँच पाकर अब भी अनवरत गति से पिघल रहा था।

सा.अ

शारदा प्रेस, लोहिया बाजार
ग्वालियर-९ (म.प्र.)

दिखावा

लघुकथा

● श्यामसुंदर गर्ग

सेठ चिमनलाल चिल्ला-चिल्लाकर लोगों को पहाड़वाले मंदिर पर चलने के लिए कह रहा था कि वहाँ पर सभी को पेट भर भोजन मिलेगा।

एक असहाय वृद्ध ने कहा, ''बेटा, मुझसे पहाड़ पर चढ़ा नहीं जाएगा। मैं भूखा हूँ और बूढ़ा हूँ। मुझे तो यहीं पर भोजन दे दो। भगवान् आपका भला करे!''

एक आदमी भोजन लेकर पहाड़ पर चढ़ रहा था। वह वृद्ध व्यक्ति पर तरस खाकर रुका और उसे खाना देने लगा।

सेठ ने कहा, ''यह क्या कर रहा है! अपनी दरियादिली बंद कर और चल। हमारी सारी मेहनत पर पानी फेरेगा क्या, यहीं बाँटने लगा, यहाँ कौन देखेगा? यहाँ न भीड़ है और न मीडिया।''

सा.अ

पो.बॉ. नं ६०
भीलवाड़ा-३११००१ (राजस्थान)

द्वारका-सोमनाथ दर्शन

• विनोद शंकर गुप्त

मैं और मेरी पत्नी वसुधा दक्षिण में रामेश्वरम् व पूरब में जगन्नाथ पुरी धामों के दर्शन कर चुके थे। उत्तर में बदरीनाथजी और पश्चिम के दर्शन शेष थे। सन् २००७ में मेरे पुत्र भारतेंदु ने गरमियों में बच्चों की छुट्टियों में द्वारका जाने की इच्छा प्रकट की। हमने साथ चलने की स्वीकृति दे दी। उसने द्वारका के साथ-साथ गुजरात के अन्य पर्यटन-स्थलों पर जाने का कार्यक्रम निश्चित किया। बच्चों पौत्र भव्य व संकल्प तथा पुत्रवधु अंजना की स्कूल की छुट्टियाँ १६ मई से थीं। भारतेंदु ने २० मई को हिसार से दिल्ली तक टैक्सी से, फिर दिल्ली से अमहदाबाद तक उसी दिन हवाई जहाज से जाने का कार्यक्रम बनाया। अहमदाबाद से द्वारका-सोमनाथ आदि जाने का कार्यक्रम टैक्सी से, ताकि हम सभी पर्यटन-स्थल सुविधापूर्वक देख सकें। जहाँ हमें ठहरना था, वहाँ उसने होटलों तथा गेस्ट हाउस में आरक्षण करा लिया था। दिल्ली से अहमदाबाद तथा लौटने का भी अहमदाबाद से दिल्ली तक हवाई जहाज से आरक्षण करा लिया गया।

हम लोग २० मई को सुबह ९ बजे टैक्सी से दिल्ली के लिए चल दिए थे। दिल्ली में इंदिरा गांधी डोमेस्टिक एयरपोर्ट हम लोग लगभग दोपहर में २:०० बजे पहुँच गए थे। हमें किंगफिशर एयरवेज से शाम ४:०० बजे की फ्लाइट से जाना था। खाना हम लोगों ने हिसार से दिल्ली के रास्ते में एक जगह रुककर खा लिया था। एयरपोर्ट पर चैकिंग की सभी औपचारिकताएँ पूरी कर हम लोग लॉज में ४:०० बजे तक प्रतीक्षा करते रहे। मेरे दोनों पौत्र भव्य और संकल्प के लिए हवाई जहाज यात्रा करने का पहला अवसर था। उन्हें बहुत उत्सुकता थी इस हवाई जहाज के सफर की। ४ बजे से कुछ पहले लाउड स्पीकर पर सूचना मिली कि किंगफिशर से अहमदाबाद जानेवाले यात्री चलने के लिए तैयार हों। हम लोग किंगफिशर की बस में हवाई जहाज से गए और आरक्षण के अनुसार अपनी-अपनी सीट पर बैठ गए! हमारे हवाई जहाज ने ४:१५ पर उड़ान भरी और हम लोग ठीक शाम के ५:३० बजे अहमदाबाद एयरपोर्ट पहुँच गए। अपना सामान लेकर बाहर खड़ी टैक्सी, जो हमारी प्रतीक्षा में खड़ी थी, हम बैठ गए। हम लोग होटल ग्रांड भगवती में ठहरे। वहाँ कुछ देर आराम किया, चाय आदि पी।

शाम को हम लोग लगभग ७:०० बजे बच्चों के मनोरंजन के लिए 'थ्रिल राइड्स' देखने गए। यह एक खेल है, जो कंप्यूटर द्वारा एक बड़े परदे पर दिखाया जाता है, जिसमें चलती, दौड़ती कार, अन्य वाहन दिखाई देते हैं। जिन कुरसियों पर बैठकर दर्शक परदे पर चलते-फिरते दृश्य देखते हैं, वे कुरसियों भी हिलती-डुलती हैं और दर्शकों को लगता है कि परदे पर जो भी घटित हो रहा है, वे भी उसमें शामिल हैं। यह बच्चों के लिए बड़ी रोमांचित करने की चीज थी। इसको देखने के

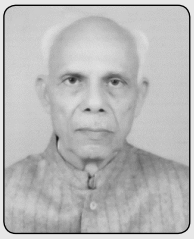

जाने-माने साहित्यकार। 'बाबू गुलाबराय व्यक्तित्व और कृतित्व : एक झलक', 'जीवन पाथेय', 'बाबू गुलाबराय की हास्य-व्यंग्य रचनाएँ', 'बाबू गुलाबराय के विविध निबंध', 'मेरे मानसिक उपादान : बाबू गुलाबराय', 'मेरी कहानी मेरी जुबानी', 'बाबू गुलाबराय विचार-सार' (संपादित ग्रंथ) एवं विविध पत्र-पत्रिकाओं में सामाजिक व पुरातत्त्व विषय पर लेख प्रकाशित।

बाद हम लोग एक गुजराती भोजनालय में गए, जिसे राजोरू कहते हैं। वहाँ गाँव का सा वातावरण था, रात हो चुकी थी, लालटेन की हल्की रोशनी थी। पेड़ थे, झाड़ियाँ थीं, छोटा सा तालाब भी था, इधर-उधर चारपाइयाँ भी पड़ी थीं। लोग चारपाई पर बैठकर वहाँ के लोक-नृत्य तथा लोकगीतों का आनंद ले रहे थे। वहाँ के कार्यकर्ता गुजराती व राजस्थानी कपड़ों में थे। बच्चों के झूलने के लिए पालना था। वहाँ एक जगह कठपुतली व बंदर का तमाशा भी दिखाया जा रहा था। दर्शक पीतल के गिलास में शरबत पी रहे थे। वहाँ चबूतरों के ऊपर झोंपड़ी बनी थीं, उनके भीतर लोग खाना खा रहे थे। हमने भी अपने खाने का ऑर्डर दे दिया था। हमारा नंबर लगभग रात १० बजे आया। पीतल के बरतनों, थाली-कटोरी में खाना परोसा गया। वहाँ हम लोगों ने आसन पर बैठकर भोजन किया। खाना सब गुजरात में जो बनता है वही था, अच्छा लगा। कुछ रोज के खाने से भिन्न था। खाना खाकर हम रात ११:०० बजे होटल वापस आ गए।

दूसरे दिन २१ मई को सुबह होटल में नाश्ता करके टैक्सी में द्वारका के लिए रवाना हुए। हमारा टैक्सी ड्राइवर हिम्मत सिंह राजस्थान का रहनेवाला था। ड्राइवर ने गाइड का भी काम किया। रास्ते में जो कुछ भी आता, उसके बारे में हमें बताता जाता था। हम नेशनल हाईवे एन.एच.-८ ए पर सफर कर रहे थे। रास्ते में हरियाली कहीं नजर नहीं आई। गाँव भी बहुत छोटे-छोटे थे। रास्ते में राजकोट शहर, जहाँ महात्मा गांधीजी रहे थे, वह आया, पर हम रुके नहीं। रास्ते में एक जगह रुककर खाना खाया। द्वारका के रास्ते में जामनगर शहर भी पड़ता है, परंतु हम लोग जामनगर के बाहर-बाहर बाईपास रोड से होकर ४:०० बजे के लगभग द्वारका पहुँच गए। द्वारका में समुद्र के किनारे गायत्री शक्ति (आचार्य श्रीराम शर्मा के गायत्री परिवार द्वारा संचालित) के पहली मंजिल पर बने दो कमरे के एक सेट में रुके। मई के महीने में गरमी तो बहुत होती है, परंतु यहाँ गरमी नहीं लगी, पंखों से काम चल गया। शाम को चाय पीकर हम लोग द्वारकाजी के प्राचीन मंदिर के दर्शन के लिए चल दिए। यह मंदिर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा संरक्षित है, वहाँ मुझे

एक स्मारक परिचार मिल गया। उसको मैंने अपना परिचय दिया कि मैं इस विभाग में अधिकारी के पद पर कार्य कर चुका हूँ। उसने हमें मंदिर के दर्शन अच्छी तरह करा दिए। शाम ७:०० बजे आरती होती है, हमने आरती में भाग लिया और प्रसाद ग्रहण किया। इन दिनों पुरुषोत्तम मास चल रहा था, इसलिए महिलाएँ पूजा-पाठ में व्यस्त थीं। यहाँ इस मंदिर में दिन में ३-४ बार शिखर पर नया झंडा लगाया गया था। मंदिर में दर्शन कर हम लोगों ने रात का खाना पकवान भोजनालय में खाया और अपने अतिथि-गृह में आकर सो गए।

तीसरे दिन २२ मई की सुबह ५:०० बजे उठकर हम लोग द्वारकाधीश मंदिर में पुन: दर्शन करने गए। सुबह की आरती देखी। आरती के बाद हम लोग अपने अतिथि-गृह आए, वहाँ नाश्ता करने के बाद ९:०० बजे टैक्सी से बेट-द्वारका के दर्शन के लिए निकले। रास्ते में रुकमणीजी का मंदिर था यह भी भारतीय पुरातन सर्वेक्षण द्वारा संरक्षित है वहाँ दर्शन किए। दर्शन कर हम बेट-द्वारका पहुँच गए। रास्ते में टाटा केमकिल्स का कारखाना पड़ा, जहाँ नमक बनता है। बेट-द्वारका से ३० किलोमीटर दूर है। बेट-द्वारका एक टापू है, जहाँ स्टीमर से जाया जाता है। स्टीमर से हम लोग बेट-द्वारका जा पहुँचे। १५-२० मिनट का रास्ता है। यहाँ कृष्णजी का मंदिर है। जहाँ सुदामाजी कृष्णजी से भेंट करने आए थे। टापू के दूसरे किनारे पर हनुमानजी का एक मंदिर है, वहाँ मोटरसाइकिल रिक्शा से गए थे। हनुमानजी के मंदिर में दर्शन कर हम फिर स्टीमर से ओखा आ गए, जहाँ टैक्सी हमारी प्रतीक्षा कर रही थी। (ओखा रेलवे स्टेशन है, जो लोग रेल से आते हैं, पहले ओखा ही आते हैं) हम लोग ओखा से द्वारका के लिए एक अन्य रास्ते से आए। रास्ते में नागेश्वर शिवजी का नया मंदिर है। यहाँ दर्शन किए! यहाँ से द्वारका १६ किलोमीटर है। द्वारका ३:३० बजे पहुँचे! रातवाले भोजनालय में ही खाना खाया और फिर अपने अथिति-गृह में आ गए। शाम को समुद्र के किनारे सूर्यास्त तक घूम रहे, बच्चे खेलते रहे। रात को शरशाम होटल में खाना खाकर अपने अतिथि-गृह में आकर सो गए।

द्वारकाधीश मंदिर

चौथे दिन बुधवार २३ मई को सुबह ९:०० बजे हम लोग द्वारका से सोमनाथ के लिए चले। सोमनाथ से पहले रास्ते में पोरबंदर पड़ता है। हम लोग वहाँ कुछ देर रुके। पोरबंदर में पहले हम लोग कृष्णजी के बालसखा सुदामाजी के मंदिर गए, वहाँ दर्शन किए। वहाँ से महात्मा गांधीजी के जन्मस्थान गए, यह एक पुराने जमाने का घर है—यह भी भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा संरक्षित है। यहाँ बहुत सफाई मिली, अच्छा लगा। उस पुराने घर के पास एक संग्रहालय है, जहाँ गांधीजी के चित्र लगे हैं। पोरबंदर में खाना खाकर हम लोग सोमनाथ के लिए चल दिए। सोमनाथ दोपहर में ३:३० बजे पहुँचे।

सोमनाथ मंदिर के निकट ही सोमनाथ ट्रस्ट का कार्यालय है, वहाँ से ट्रस्ट द्वारा निर्मित अथिति-गृह में, जहाँ हमें ठहरना था, परमिट लिया, चाबी ली। दो वातानुकूलित कमरों में हमारा आरक्षण था। सामान रखकर सोमनाथ मंदिर के दर्शन के लिए गए। यह मंदिर समुद्र के किनारे बना है। जो प्राचीन मंदिर था, वह तो महमूद गजनवी ने तोड़ दिया था, सबकुछ सोना-चाँदी लूटकर चला गया था। उसके बाद यह मंदिर कई बार बना और तोड़ दिया गया। देश के स्वतंत्र होने के बाद सरदार वल्लभ भाई पटेल की पहल पर इस मंदिर का पुन: निर्माण करने का निश्चय लिया गया। यह मंदिर उनके सामने तो न बन सका, परंतु मोरारजी देसाई तथा कुछ अन्य लोगों के प्रयत्न से सन् १९९५ में बनकर तैयार हुआ। तत्कालीन प्रधानमंत्री ने उसका उद्घाटन किया। अभी भी शिल्पकार वहाँ कार्य कर रहे थे। उस परिसर में सरदार वल्लभ भाई पटेल की एक मूर्ति लगी है।

सोमनाथ मंदिर

शाम को जब हम मंदिर में गए थे तो शिवलिंग का शृंगार हो रहा था। पूजा-पाठ चल रहा था। ७ बजे आरती हुई, उसे हमने खूब अच्छी तरह देखा। ८:०० से ९:०० बजे तक मंदिर के पीछे लाईट एंड साउंड का कार्यक्रम देखा। उसका टिकट था। उस कार्यक्रम में सोमनाथ मंदिर के बारे में विस्तार से बताया गया। सोमनाथ (शिवजी) के यहाँ स्थापित होने का वर्णन समुद्र के मुख से कहलवाया गया। मंदिर बहुत साफ और सुंदर है। मंदिर की चहारदीवारी पर बैठकर समुद्र की लहरों का आनंद लिया जा सकता है। मंदिर के दर्शन के बाद हम लोग एक रिसोर्ट में खाना खाने गए। वहाँ से लौटकर अथिति-गृह आए और विश्राम किया।

पाँचवें दिन बृहस्पतिवार २४ मई को हम लोग सुबह एक बार पुन: सोमनाथ मंदिर के दर्शन कर चित्र आदि लेकर ९:०० बजे के लगभग (दीव) टापू के लिए टैक्सी से रवाना हुए। डी.यू.आई. में केंद्र सरकार का शासन है। यह एक बहुत अच्छा पर्यटन केंद्र है। द्वारका से सोमनाथ और फिर सोमनाथ से दीव का मार्ग अरब सागर के किनारे चलता है। कहीं समुद्र सड़क के बहुत निकट है, कहीं दूर। रास्ते भर हरियाली-ही-हरियाली मिली। कहीं नारियल के बाग तो कहीं आम के बाग। हमने रास्ते में आम के बाग से आम भी खरीदे। द्वारका से जब पोरबंदर आ रहे थे, रास्ते में एक पहाड़ी घर, जो समुद्र के किनारे है, उस पर हर्षदमाता का मंदिर है। उस पर जाने के लिए ३०० सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ती हैं। हम लोगों ने वहाँ रुककर दर्शन किए।

सोमनाथ और दीव के रास्ते में गिरि फोरेस्ट वाइल्ड लाईफ सेंचुरी में कुछ देर हम रुके। वहाँ हम लोग वन विभाग की बस में बैठकर घूमे। गरमी के कारण वहाँ हरियाली नहीं थी। वहाँ शेर, बारहसिंगा, नीलगाय, मोर आदि देखने को मिले। यह गिर जंगल शेर के लिए विश्व में प्रसिद्ध

है, जहाँ हमें बस द्वारा घुमाया गया था, केवल ५ शेर एक पेड़ के नीचे शांत बैठे थे। पता लगा कि ये अस्वस्थ शेर हैं। जहाँ अधिक शेर रहते हैं, उस भाग में पर्यटकों को नहीं ले जाते। इसको देखकर हम लोग दोपहर में २:१५ पर दीव पहुँच गए थे।

दीव में हमारे ठहरने का प्रबंध राधिका बीच रिजोर्ट में था। यह तीन सितारा होटल है। यह होटल सेमिसर्कुलर बीच के किनारे बना है। इसमें दुमंजले दो-दो कमरों के कई सूट (घर) बने हैं। बहुत सुंदर बाग व तैरने का टैंक हैं, डाइनिंग हॉल अलग है। रात को दीवाली की तरह रोशनी होती है, कुछ लोग यहाँ लंबे समय तक भी रहते हैं। हम लोगों ने वहाँ पहुँचते ही खाना खाया, क्योंकि रेस्टोरेंट दोपहर में ३:०० बजे बंद हो जाता है। खाना खाने के बाद हम लोगों ने अपने-अपने कमरों में कुछ देर आराम किया।

४:३० पर मैं और मेरी पत्नी टैक्सी से टीपू का किला देखने गए। यह किला जहाँ हम ठहरे थे, उससे १२ किलोमीटर दूर है और इस टापू के दूसरे छोर पर है। हमारा टैक्सी ड्राइवर हिम्मत सिंह यहाँ पहले भी पर्यटकों को लेकर आ चुका था। वह हमारे गाइड का कार्य करता रहा, जो भी चीज रास्ते में आती, उसके विषय में बताता जा रहा था। यहाँ का किला भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा संरक्षित है। यह किला तीन ओर से समुद्र से घिरा है और एक ओर खाई है। किला छोटा ही है। यहाँ किले के एक अधिकारी श्री परमार ने हमें किले के सबसे ऊँचे बुर्ज पर ले जाकर यहाँ का इतिहास बताया। पुर्तगाल से पुर्तगीज १६वीं शताब्दी में यहाँ आकर बस गए थे। ये लोग यहाँ व्यापार की दृष्टि से आए थे। किला देखने के बाद हम लोग सेंट पाउल चर्च देखने गए। यह बहुत बड़ा चर्च है। लकड़ी का बहुत सुंदर काम है। यह देखकर हम लोग शाम ६:३० पर होटल वापस आ गए।

बेटा भारतेंदु, बहू अंजना और दोनों पौत्र भव्य और संकल्प होटल के पास, जो नगाओ बीच है, वहाँ चले गए थे, समुद्र में खूब नहाए। यहाँ समुद्र गहरा नहीं है, लहरें खूब ऊँची-ऊँची उठती हैं, बड़ा सुहावना लगता है। हम लोग रात को ८:३० पर टैक्सी से दीव के बाजार गए, वहाँ एक रेस्टोरेंट में खाना खाकर किला देखने गए। किला तो बंद हो चुका था, फ्लूड लाइट में किला सुंदर लग रहा था। फिर हम लोग चर्च भी गए, बाहर से ही बच्चों को दिखाया, क्योंकि वह बंद हो चुका था। रास्ते में छोटा सा झरना जंपा वाटरफॉल देखा, रोशनी में अच्छा लगा। यहाँ के लोग शराब बहुत पीते हैं। शराब यहाँ सस्ती भी मिलती है। वापस होटल आ गए, कुछ देर बाहर बाग में तथा तैरने के टैंक के पास बैठे। सबकुछ बहुत अच्छा लग रहा था। चारों ओर खूब रोशनी जगमगा रही थी। रात ११:०० बजे हम लोग अपने कमरों में आकर सो गए, बहुत थक चुके थे।

छठे दिन शुक्रवार, २५ मई को हम लोग सुबह ९:०० बजे डी.आई. यू. से अहमदाबाद के लिए चले। लगभग तीन घंटे मुख्य मार्ग पर चलने के बाद १० किलोमीटर पर कुछ हटकर एक जगह है प्रलंग, जो पुराने जहाजों का बंदरगाह पोर्ट है, वहाँ पहुँचे। यहाँ पर २० वर्ष से अधिक पुराने जहाजों को तोड़कर उनके कबाड़ को बेचा जाता है। यहाँ पुराने जहाजों का कबाड़ी बाजार है। यहाँ एक पुराने टूटे हुए जहाज को देखा। प्रलंग आने से पहले मुख्य मार्ग पर एक शहर है ऊना, वहाँ हमने दक्षिण भारतीय जलपान गृह में नाश्ता किया था। प्रलंग से हम लोग भावनगर पहुँचे। वहाँ ३ बजे भोजन किया। वहाँ से अहमदाबाद के लिए चले। रास्ते में जगह-जगह नमक के ढेर लगे थे। ऐसा लगता था, जैसे सफेद नमक के पहाड़ हों। हमारे ड्राईवर ने बताया, यहाँ निरमावाले समुद्र के पानी को खेतों में सुखाकर नमक बनाते हैं। अहमदाबाद आने से पहले मुख्य मार्ग से एक रास्ता लोथल के लिए जाता था। यहाँ भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण द्वारा उत्खनन किया गया था, जहाँ हड़प्पा संस्कृति के अवशेष मिले थे। शाम हो चुकी, हम वहाँ न जा सके। वह जगह केवल सात किलोमीटर दूर थी। हम लोग फिर नेशनल हाईवे एन.एच. ८ पर सफर कर रहे थे। शाम को ७ बजे हम लोग अहमदाबाद पहुँच गए थे। यहाँ हम लोग किंग्स्टन होटल में ठहरे थे, जो कुछ दिन पहले एक मई को शुरू हुआ था। रात का खाना खाया और सो गए, बहुत थक चुके थे।

सातवें दिन शनिवार २६ मई को हम लोग अक्षय धाम के लिए चले। रास्ते में तिरुपति बालाजी मंदिर, जो दक्षिण भारत में है, उसका प्रतिरूप मंदिर है, वहाँ रुककर हमने दर्शन किए। प्रसाद प्राप्त कर ११ बजे हम लोग अक्षरधाम पहुँच गए। गुजरात में एक संत हुए हैं स्वामी नारायण, जिनकी बहुत मान्यता है, उन्हीं की स्मृति में अक्षरधाम मंदिर बनवाया है। यह बहुत बड़ा मंदिर है, इस मंदिर की विशेषता है प्रत्येक काम में सफाई और व्यवस्था। भारतेंदु और अंजना दिल्ली का अक्षरधाम, जो यहाँ के मंदिर से भी क्षेत्र में बड़ा है, देख चुके थे। यहाँ स्वामी नारायण के जीवन से संबंधित झाँकियाँ थीं तथा एक बड़े हॉल में परदे पर स्वामी नारायण पर डॉक्यूमेंट्री फिल्म दिखाई गई। यह सब देखकर हम लोग भारतेंदु और अंजना के साथ वहाँ उसी परिसर में बने भोजनालय में गए। वहाँ कूपन लेकर अपनी पसंद का खाना स्वयं लेना होता है काउंटर से। बैठने की अच्छी व्यवस्था है। हमने वहाँ की प्रसिद्ध खिचड़ी, पापड़ व श्रीखंड खाया। सब उचित मूल्य पर था।

खाना खाकर हम साबरमती आश्रम आए। यहाँ गरमी बहुत थी, दोपहर हो चुकी थी, पर्यटक भी बहुत कम थे। यहाँ पर महात्मा गांधीजी रहे थे, उनसे संबधित सब चीजें देखीं, परंतु गांधीजी जितने महान् थे, उसको देखते हुए वहाँ की व्यवस्था बहुत साधारण थी। बस उसे एक स्मारक की दृष्टिकोण से देखा, श्रद्धाजंलि अर्पित की। वहाँ लगभग आधा घंटा ही रुके और होटल वापस आ गए। शाम को अहमदाबाद का बाजार देखा, कुछ खरीदा भी, रात को भोजन कर होटल में आराम किया।

आठवें दिन रविवार २७ मई को होटल में नाश्ता कर सुबह ९:३० बजे एयरपोर्ट पर आ गए। ११:०० बजे एयर सहारा से हमारी बुकिंग थी। ठीक समय पर हवाई जहाज ने उड़ान भरी और १२:३० पर दिल्ली इंदिरा गांधी एयरपोर्ट पर उतर गए। हिसार से टैक्सी हमें लेने आ गई थी। सो हम लोग शाम ५:३० बजे अपने घर हिसार आ गए।

सा.अ.

ए-३, ओल्ड स्टाफ कॉलोनी, जिंदल स्टेनलैस लि.
ओ.पी. जिंदल मार्ग, हिसार-१२५००५
दूरभाष : ९४१६९९५४२२

पहेलियाँ

बताओ तो जानें

● **माणिक तुलसीराम गौड़**

सुपरिचित लेखक। अब तक दस पुस्तकें प्रकाशित। कई पुरस्कारों तथा सम्मानों से सम्मानित। संप्रति सेवानिवृत्त बैंक कार्यपालक। अब स्वतंत्र लेखन।

: एक :

कागज की उसकी है काया
होता है उसमें संदेश,
बिना पंख के वह जाता है
चाहे हो वह देश-विदेश।
इसमें मन की बातें होतीं
अपनेपन का नाता,
टिकट लगी होती है उस पर
जिसे डाकिया लाता।

: दो :

मैं हूँ इक नन्ही-सी चिड़िया
फुदक-फुदककर चलती हूँ,
पेड़ों पर है मेरा बसेरा
घर-आँगन में पलती हूँ।
जहाँ जगह मिल जाती मुझको
वहीं घोंसला बन जाता,
मानव की बस्ती में रहना
मुझको हरदम है भाता।

: तीन :

जिसको बस्ते में रखते हैं
विद्यालय में भी पढ़ते,
जिसको पढ़कर सारे बच्चे
अपना जीवन गढ़ते।
वह है सच्ची जीवनसाथी
उसको मित्र बनाना,
उसकी अच्छी-अच्छी बातें
जीवन में अपनाना।

: चार :

जो जीवन में महक बिखेरे
बनकर केसर क्यारी,
ईश्वर ने है उसे बनाया
जग में सबसे न्यारी।
रहे प्रतीक्षा हरदम जब भी
रक्षाबंधन आता,
उसकी राखी के धागों में
सच्चा प्यार समाता।

: पाँच :

नित्य भोर में उठकर जल्दी
दूर टहलने जाओ,
पियो दूध तुम ताजा-ताजा
चने भिगोकर खाओ।
पिता की वह माँ होती है
अच्छी बात बताती,
हमको अपने बेटे से भी
ज्यादा प्यार जताती।

: छह :

प्रतिवर्ष छुट्टियाँ लगते ही
उनके घर हम जाते,
गाय-भैंस का दूध पिलाती
दही-बाटी भी खाते।
माँ की भी वह माँ होती है
कहती रोज कहानी,
उसके घर में हमने देखी
चीजें कई पुरानी।

: सात :

सर्दी-गरमी-वर्षा में भी
वह खेतों में जाता,
रात-दिवस वह स्वेद बहाकर
है अनाज उपजाता।
सानी-पानी दे बैलों को
फिर टिटकारी देता,
पेट सभी का वह भरता है
जीवन-नैया खेता।

: आठ :

उछल-कूद करता पेड़ों पर
कभी घरों में आता,
चना, चपाती, केले देखे
मन उसका ललचाता।
लेकर डंडा पीछे दौड़ो
बचकर वह भग जाता,
दाँत दिखाता घुड़की देता
बोलो क्या कहलाता?

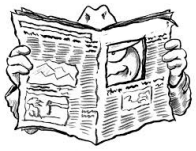

: नौ :

रोज सवेरे जल्दी आकर
तुमको रोज उठाता हूँ,
सारे जग की खबरें लाकर
तुमको रोज सुनाता हूँ।
मुझको पढ़ते रहने से ही
लोगों का बढ़ता है ज्ञान,
बच्चों नाम बताओ मेरा
जरा लगाकर थोड़ा ध्यान?

: दस :

सात रंग का अर्धवृत्त वह
नभ में शोभा देता है,
वर्षा ऋतु में सूरज निकले
वह सम्मुख हो लेता है।
भाँति-भाँति के रंग सँजोना
वह हमको सिखलाता है,
कुछ पल को वह खुशी लुटाकर
दूर कहीं खो जाता है।

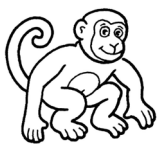

साअ

२४७, दूसरी मंजिल, नौवीं मैन
शांतिनिकेतन लेआउट अरेकेरे,
बेंगलुरु-५६००७६
दूरभाष : ८७५२९१६९२७

उत्तर : १. चिट्ठी, २. गौरैया, ३. पुस्तक, ४. राखी, ५. दादी, ६. नानी, ७. किसान, ८. बंदर, ९. अखबार, १०. इंद्रधनुष

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ। नवसंवत्सर २०७६ तथा नवरात्र पर विशेष आलेख पढ़ा। इस पर्व पर प्रेमपाल शर्माजी ने दिल्ली के तीर्थों के दर्शन पाठकों को कराए, उनका इतिहास बताया, बधाई! रीतारानी पालीवाल का आलेख 'वैश्विक नाट्य नृत्य और लीला में राम' बहुत ही अच्छा लगा। पूरे विश्व में राम की लीला कहाँ और कैसे मनाई जाती है, उसका वर्णन है। भारतीय परंपराओं में वृक्ष पूजा भी विशेष है, हम क्यों वृक्षों की पूजा करते हैं और वृक्ष हमारे जीवन में कितना महत्त्व रखते हैं, इस लेख में दरशाया है। मोपांसा की कहानी 'नकली गहने' बहुत ही अच्छी है; कभी बचपन में 'डायमंड नेकलेस' कहानी पढ़ी थी, यह उसी तरह की है। 'सूरदास और सूरकुटी' आलेख में सतीश चतुर्वेदीजी के अनेक संस्मरण जुड़े हैं। हेमंत शर्मा ने 'भावनाओं के संवेदनशील चितेरे प्रो. नामवर सिंह' के जो संस्मरण दिए हैं, पढ़कर उनके व्यक्तित्व का पता चलता है। सुभाष चंदर की हास्य कथा 'मूँछों की लड़ाई' बहुत ही अच्छी है और एक दरोगा पुलिस कर्मचारी पर व्यंग्य है। शेष कहानियाँ, कविताएँ भी पढ़ी हैं, सभी रचनाकार अपनी-अपनी भावनाओं, विचारों को प्रकट करते हैं। अंत में डॉ. श्रीधर द्विवेदी, जो डॉक्टर होते हुए भी हिंदी के विद्वान् हैं, की रचना 'अटारी पर अभिनंदन' के लिए उन्हें बधाई। 'अभिनंदन' ने देश के लिए जो कार्य किया, उसके लिए उन्हें अपनी कविता द्वारा सम्मानित किया है।

—विनोद शंकर गुप्त, हिसार

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक पढ़ा, आनंदित हुआ। आदरणीय चतुर्वेदीजी का संपादकीय तो प्रासंगिक और सामयिक रहता ही है, शेष सामग्री भी रोचक और स्तरीय है। 'सरस्वती-तट से निकली जय-यात्रा' हमें अपने गौरव की याद दिलाती है। सुभाष चंदर की 'मूँछों की लड़ाई' का वर्णन बहुत जीवंत है और यह अच्छी कहानी है। रीतारानी पालीवाल का नाट्य-नृत्य संबंधी लेख हमारे जातीय एवं सांस्कृतिक गौरव को रेखांकित करता है। आलोचना पुरुष प्रो. नामवर सिंह का हेमंत शर्मा द्वारा पुण्य-स्मरण तो कहूँगा, अंक की उपलब्धि है। एक शिष्य की गुरु के प्रति सच्ची भाव-विह्वल श्रद्धांजलि है। वैसा मर्मस्पर्शी लेखन आजकल कम ही देखने-पढ़ने को मिलता है। कुछ कविताएँ बहुत अच्छी हैं। 'दिल्ली-तीर्थ-दर्शनम्' वास्तव में हमारी जानकारी में इजाफा करता है।

—ओम् प्रकाश शर्मा 'प्रकाश', दिल्ली

'साहित्य अमृत' का मई अंक पढ़ने का मौका मिला। उत्सुकता के चलते सारी पत्रिका एक ही बैठक में पढ़ डाली। सच्चिदानंद जोशी की कहानी 'राम भरोसे' तथा एम.डी. मिश्रा 'आनंद' की 'किस्मत अपनी-अपनी' उन रिश्तों का, उन हालातों का वर्णन करती है, जो हर व्यक्ति अपने-अपने जीवन में देखता है, भोगता है और समझता है। गोपाल चतुर्वेदी द्वारा लिखित व्यंग्य 'भिखमंगों का देश' में किस-किस प्रकार के भिखमंगे इस देश में दिखते या मिलते हैं। यह उन करोड़पतियों, व्यापारियों की कहानी है, जो सरकारी धन, सरकारी बैंकों से पैसा लेकर अपने व्यवसाय में लगाते हैं और उधार के उन पैसों के बल पर या कर्ज लिये हुए धन के बल पर अपने आपको करोड़पति बताते हैं।

—ब्रजमोहन जैन, दिल्ली

'साहित्य अमृत' एक श्रेष्ठ व उच्चस्तरीय पत्रिका है, कई वर्षों से जुड़ी रहने के कारण यह अपनी सी लगती है। अप्रैल अंक में आज के दधीचि श्री देवेंद्र स्वरूपजी का लेख 'सरस्वती तट से निकली सांस्कृतिक जय-यात्रा' ने बहुत प्रभावित किया। 'जनता की गवाहियाँ' अपने देशवासियों पर किए गए अत्याचारों का मार्मिक दस्तावेज है। इसी प्रकार अमृतसर में 'हरमिंदर साहिब' से लगा हुआ बँटवारे के दर्द को शब्दों व चित्रों के माध्यम से व्यक्त करता म्यूजियम भी उस समय अंग्रेजों द्वारा किए गए अत्याचारों का गवाह है, स्वतंत्रता के लिए लाखों देशवासियों के त्याग व बलिदान को याद दिलाता है। 'अटारी पर अभिनंदन' कविता में श्रीधर द्विवेदीजी ने अपने सुंदर भावपूर्ण शब्द देकर अभिनंदन की यशोगाथा को स्वर्णाक्षरों में अंकित कर दिया, जो भावी पीढ़ी को सदा प्रेरणा देती रहेगी। सुभाष चंदर की 'मूँछों की लड़ाई' बहुत मजेदार है। 'मौत दर मौत' मार्मिक कहानी है। 'रेवा तेरे रेत कनों में रमता मन' मिठास भरी रचना है, भले ही कुछ शब्दों के शाब्दिक अर्थ समझ नहीं आए, पर रेवा के रेत कनों में मन तो रम ही गया। हेमा चंदानीजी की कविता 'लड़कियाँ' बहुत अच्छी लगी। सुनील कुमार शर्माजी की 'आधा अधूरा' व अन्य कविताएँ तथा 'महल और झोंपड़ी', 'द्रोपा भाभी', 'नकली गहने' सभी रचनाएँ पत्रिका के सौंदर्य की अभिवृद्धि करती हैं। प्रेमपालजी का यात्रा-संस्मरण हमेशा प्रभावित करता है तथा उन स्थलों को देखने की उत्सुकता जगाता है।

—माला श्रीवास्तव, ग्रेटर नोएडा

'साहित्य अमृत' के अप्रैल अंक के लिए साधुवाद, आपने जहाँ नानी पालखीवाला की जन्मशती वर्ष के महान् विधिवेत्ता के असाधारण बहुपक्षीय व्यक्तित्व से पाठकों को परिचित कराया, साथ ही भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदीजी के मन की बात के आंतरिक तथ्यों का उद्घाटन किया। 'सरस्वती तट से निकली सांस्कृतिक जय-यात्रा' श्री देवेंद्र स्वरूपजी का सारगर्भित आलेख हमें अपनी प्राचीन पृष्ठभूमि से संबद्ध करनेवाला है तो लवलेश दत्त की कहानी 'द्रोपा भाभी' हमारे समाज की स्वार्थपरता से परदा हटानेवाली करुण कथा है। प्रेमपाल शर्माजी का 'दिल्ली तीर्थ-दर्शनम्' दिल्ली भ्रमण करने देश-विदेश से सैलानी लाखों की संख्या में आते रहते हैं, यह लेख उनका मार्गदर्शन करनेवाला है। वह चाहे असुरमर्दिनी कालकाजी का सूर्यकोट पहाड़ी पर स्थित मंदिर हो, बहाई उपासना केंद्र 'कमल मंदिर' हो या पांडवों के राज्य रक्षक भैरव लाल का भैरव मंदिर या देशभक्तों की शहादतों का साक्षी शीशगंज गुरुद्वारा, बँगला साहब गुरुद्वारा, हनुमान् मंदिर, झंडेवाला मंदिर, लक्ष्मीनारायण मंदिर, कात्यायनी मंदिर, आधुनिक युग की वास्तुकला का अन्यतम उदाहरण अक्षरधाम मंदिर आदि का तात्त्विक विवेचन बहुत भली प्रकार बन पड़ा है। गागर में सागर समाए लघुकथाएँ, दिलकश कविताएँ, पैने व्यंग्य, जानकारी से भरपूर आलेख, कुल मिलाकर यह अंक पठनीय और संग्रहणीय बन पड़ा है।

—तुलसी तिवारी, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)

वर्ग पहेली (१६५)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३० जून, २०१९ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते अगस्त २०१९ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली**', **साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१६३) का शुद्ध हल

१ अं	२ ग	ही	३ न	■	४ चो	■	५ ज	स्ता
६ त	ला	■	दि	■	७ टी	प	ना	■
बु	■	८ भ	या	९ न	क	■	१० ना	११ का
१२ रे	१३ ह	न	■	१४ ख	टा	१५ व	■	ज
१६ का	म	क	१७ ला	■	१८ ना	का	१९ बि	ल
बु	■	२० ना	र	२१ दी	■	२२ ल	ड़	की
२३ रा	२४ व	■	२५ ब	द	२६ जा	त	■	को
■	२७ सु	ल	ह	■	नि	■	२८ म	ठ
२९ रा	धा	■	ना	■	३० ब	ढ़ो	त	री

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **सुश्री खुशी खिच्ची**
एस.एम. गीता हाई स्कूल
कनीना मंडी, जि.-महेंद्रगढ़ (हरि.)
दूरभाष: ९४६६२१८१७६

२. **श्री चंदन चौधरी**
द्वारा—बबला आटा चक्की
गुढ़ियारी, रायपुर (छ.ग.)
दूरभाष : ९४२४२२८१००

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १६३ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री ब्रह्मानंद 'खिच्ची' (महेंद्रगढ़), शिवानंद सिंह 'सहयोगी' (मेरठ), शोभा दानी, अशोक श्रीवास्तव (नोएडा), रुक्मणी संगल (पटियाला), जगदीश राय गर्ग (मानसा), मोहन उपाध्याय (अजमेर), रामकिशन पंवार (हनुमानगढ़), सरला लोढ़ा (उदयपुर), दिनकर सहल (दिल्ली), रूपराम सिंह (कटनी), भूपसिंह (हरिद्वार), रामनिवास बिड़ला (इंदौर)।

बाएँ से दाएँ—

२. आठ से विभाजित एक संख्या (३)
५. मिट्टी के पके हुए टुकड़ों से छाई हुई छत (४)
७. माल-असबाब ले जाने का वाहन (४)
९. विस्फोटक चूर्ण (३)
१०. खाने-पीने का संयम (४)
१२. किसी से बहुत परिश्रम लेना(४)
१५. एक प्रकार का बड़ा नीबू (४)
१८. पतंगा (४)
२०. बहुतेरा (३)
२१. साले की पत्नी (४)
२२. छूने योग्य (४)
२४. कुहरा (३)

ऊपर से नीचे—

१. गन्ना (२)
२. धूर्त (४)
३. सत्कार, प्रतिष्ठा (४)
४. सरसों की एक किस्म (२)
६. वेतन (३)
८. गरुड़-संबंधी (३)
१०. पैठ (३)
११. शीतकाल (३)
१३. अभिमान; घमंड (३)
१४. प्रसन्नतापूर्वक उछलना-कूदना (३)
१६. कोयल (३)
१७. लूट-पाट (४)
१८. एक-दूसरे के साथ (४)
१९. सेना (३)
२१. एक-ही माता से उत्पन्न (२)
२३. नेकनामी; ख्याति, प्रसिद्धि (२)

वर्ग पहेली (१६५)

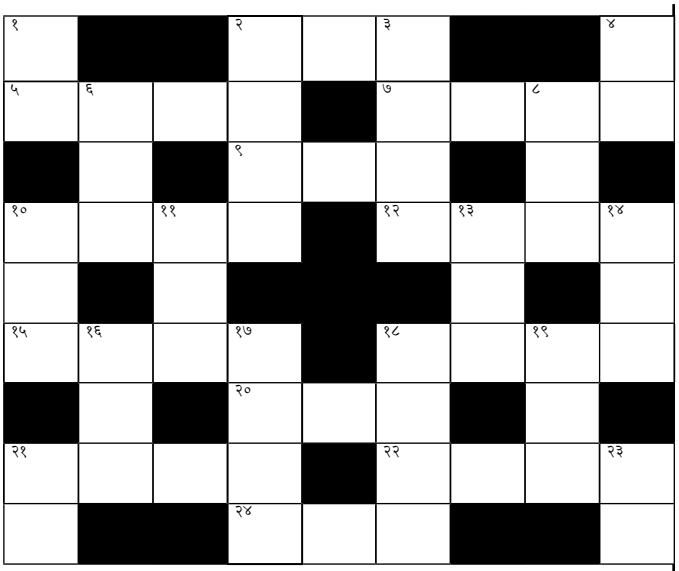

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

वर्ग पहेली (१६३) का हल अगले अंक में।

'सुभद्रा कुमारी चौहान सम्मान' घोषित

९ जून को प्रयागराज की साहित्यिक संस्था 'गुफ्तगू' की ओर से २०१९ का 'सुभद्रा कुमारी चौहान सम्मान' नई दिल्ली की सुविख्यात कवयित्री श्रीमती उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी' को दिया जाएगा। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

१३ अप्रैल को भोपाल में 'श्री विभुगुंज वेलफेयर सोसाइटी' द्वारा 'साहित्य समीर दस्तक' पत्रिका के वार्षिक सम्मान समारोह में श्री दिलजीत सिंह रील की अध्यक्षता एवं सर्वश्री गौरीशंकर शर्मा 'गौरीश', प्रीति प्रवीण खरे, समीर श्रीवास्तव के मुख्य आतिथ्य में श्री आलोक सक्सेना के व्यंग्य-संग्रह 'स्वर्गवासी होने का सुख' को 'शब्द गुंजन सम्मान' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप उन्हें मोतियों की माला, शॉल, श्रीफल, प्रशस्ति-पत्र एवं स्मृति-चिह्न भेंट किया गया। श्री आलोक सक्सेना ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री अरविंद शर्मा ने किया। ☐

संगोष्ठी संपन्न

२७ अप्रैल को नई दिल्ली के भारतीय जन-संचार संस्थान में देहरादून की साहित्यिक संस्था 'कवि-कुंभ' द्वारा साहित्योत्सव का आयोजन डॉ. कमल किशोर गोयनका की अध्यक्षता में किया गया। संगोष्ठी में सर्वश्री श्यामसुंदर दुबे, लीलाधर जगूड़ी, फारूखी, शाहीन खान आदि ने अपने विचार व्यक्त किए। दूसरे सत्र में सर्वश्री अशोक वाजपेयी, लीलाधर मंडलोई, अनामिका आदि ने भी भाग लिया। ☐

सम्मान समारोह संपन्न

इंदौर की हिंदी साहित्य समिति की स्थापना के सौ वर्ष सन् २००० में पूर्ण होने पर प्रतिवर्ष हिंदी साहित्य के दो लेखकों को उनके संपूर्ण साहित्यिक अवदान के लिए सम्मानित किया जाता है। इसी क्रम में वर्ष २०१८ के 'समिति शताब्दी सम्मान' से सम्मानित होनेवाले साहित्यकारों में श्री बलराम (दिल्ली) और श्रीमती कृष्णा अग्निहोत्री (इंदौर) को श्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय की अध्यक्षता में सम्मानित किया जाएगा। ☐

'स्पंदन सम्मान' समारोह संपन्न

विगत दिनों भोपाल की स्पंदन संस्था द्वारा राज्य सग्रहालय में १०वें स्पंदन सम्मान समारोह का आयोजन श्री गोविंद मिश्र की अध्यक्षता में हुआ। सभी रचनाकारों को शॉल, श्रीफल, स्मृति-चिह्न एवं सम्मान निधि देकर 'स्पंदन सम्मान' से सम्मानित किया गया। स्वागत वक्तव्य एवं संयोजन श्रीमती उर्मिला शिरीष ने, रचनाकारों का परिचय प्रो. आनंद कुमार सिंह ने तथा संचालन श्री विनय उपाध्यक्ष ने किया। सर्वश्री असगर वजाहत को स्पंदन कथा शिखर सम्मान, उदयन वाजपेयी को स्पंदन कृति सम्मान, प्रेम जनमेजय को स्पंदन साहित्यिक पत्रकारिता सम्मान, आलोक चटर्जी को स्पंदन कला सम्मान, महेश दर्पण को स्पंदन आलोचना सम्मान, पंकज सुबीर को स्पंदन कृति सम्मान, थवई थियाम को स्पंदन युवा सम्मान से सम्मानित किया गया। श्री असगर वजाहत की अध्यक्षता में सर्वश्री उदयन वाजपेयी, प्रेम जनमेजय, आलोक चटर्जी, महेश दर्पण, पंकज सुबीर एवं थवई थियाम ने अपनी प्रतिनिधि रचनाओं का पाठ किया, जिसमें बड़ी संख्या में साहित्य-प्रेमी श्रोता व संस्कृतिकर्मी उपस्थित थे। ☐

लोकार्पण एवं परिचर्चा संपन्न

विगत दिनों दिल्ली के इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के कला निधि विभाग द्वारा प्रख्यात कथाकार डॉ. सूर्यबाला के नए उपन्यास 'कौन देस को वासी···वेणु की डायरी' एवं उस पर परिचर्चा का लोकार्पण सेवानिवृत्त विंग कमांडर अरुणेंद्र नाथ वर्मा द्वारा किया गया। सर्वश्री सूर्यबाला, ओम निश्चल, विवेक मिश्र, अरुणेंद्र नाथ वर्मा, पद्मा सचदेव ने अपने वक्तव्य दिए। धन्यवाद ज्ञापन श्री सच्चिदानंद जोशी ने एवं आभार डॉ. रमेश गौड़ ने व्यक्त किया। ☐

कार्यक्रम आयोजित

२६ अप्रैल को दिल्ली के हिंदी भवन में प्रख्यात साहित्यकार स्व. शेरजंग गर्ग की स्मृति सभा का आयोजन किया गया, जिसमें अनेक कवियों, व्यंग्यकारों, पत्रकारों, गण्यमान्य व्यक्तियों तथा स्व. शेरजंग गर्गजी के परिजनों ने भाग लिया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. हरीश नवल ने किया। सर्वश्री सुरेंद्र शर्मा, प्रेम जनमेजय, बाल स्वरूप राही, गोविंद व्यास, कीर्ति काले, मंजू गर्ग, रचना गर्ग सहित अनेक विशिष्ट लोगों ने स्व. शेरजंग गर्गजी को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। ☐

जन्मदिन एवं लोकार्पण कार्यक्रम संपन्न

५ मई को नई दिल्ली में प्रसिद्ध चिंतक-विचारक श्री गोविंदाचार्य के ७५वें जन्मदिवस पर इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र द्वारा आयोजित एक समारोह में श्री गोविंदाचार्य का भारतीय रीति-नीति से अभिनंदन किया गया। इसके साथ ही श्री गोविंदाचार्य की जीवन-यात्रा और विचार-यात्रा को समायोजित कर प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'राजनीति की लोक-संस्कृति निमित्त गोविंदाचार्य' का लोकार्पण गुजरात के माननीय राज्यपाल प्रो. ओमप्रकाश कोहली द्वारा किया गया। पुस्तक का संपादन राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष व वरिष्ठ पत्रकार श्री रामबहादुर राय ने किया है। 'संस्कृति संवाद शृंखला' के ११वें संस्करण के तहत श्री गोविंदाचार्य का जन्मदिवस आयोजित किया था। उनके व्यक्तित्व व कृतित्व को केंद्र में रखकर संस्कृति संवाद शृंखला में 'भारत का स्वधर्म और राज्य व्यवस्था' तथा 'प्रकृति केंद्रित विमर्श' विषयों पर दो भागों में एक परिचर्चा भी आयोजित की गई। इन विषयों पर सर्वश्री बी.पी. सिंह, अच्युतानंद मिश्र, जितेंद्र बजाज, आनंद कुमार, मुकेश भारद्वाज, पवन गुप्त, बजरंगलाल गुप्त और किशोर कुणाल ने अपने विचार रखे। कार्यक्रम के अंत में श्री गोविंदाचार्य के जीवन पर आधारित एक लघु फिल्म का प्रदर्शन भी किया गया। ☐

लोकार्पण संपन्न

जाने-माने ट्रेवल ब्लॉगर ऋषि राज की पुस्तक 'सुनो बच्चो, जलियाँवाला बाग की कहानी, बलिदान गाथा के १०० वर्ष' पुस्तक का लोकार्पण ऑक्सफोर्ड बुक सेंटर में किया गया। अध्यक्षता कारगिल युद्ध

में शहीद कैप्टन श्री विजय थापर के पिता कर्नल वी.एन. थापर ने की तथा वक्तव्य श्री यादविंदर सिंह संधु ने दिया। ☐

लोकार्पण संपन्न

डॉ. धुव्र कुमार द्वारा लिखित पुस्तक 'बौद्ध धर्म और पर्यावरण' का लोकार्पण पटना के राजभवन में राज्यपाल श्री लालजी टंडन ने किया। सर्वश्री रास बिहारी प्रसाद सिंह, गुलाबचंद राम जायसवाल, पीयूष कुमार, ओ.पी. जायसवाल, सत्यनारायण ने अपने विचार व्यक्त किए। श्री संजय चौधरी ने धन्यवाद ज्ञापन किया। ☐

बिहारी पुरस्कार घोषित

नई दिल्ली की चर्चित लेखिका मनीषा कुलश्रेष्ठ को वर्ष २०१८ का 'बिहारी पुरस्कार' देने की घोषणा की गई। ढाई लाख रुपए का यह पुरस्कार श्रीमती मनीषा कुलश्रेष्ठ को उनके उपन्यास 'स्वप्नपाश' के लिए दिया जाएगा। के.के. बिड़ला फाउंडेशन की विज्ञप्ति के अनुसार यह पुरस्कार के.के. बिड़ला फाउंडेशन द्वारा प्रवर्तित तीन साहित्य-पुरस्कारों में से एक है। मनीषा कुलश्रेष्ठ को पुरस्कृत करने का निर्णय श्री नंद भारद्वाज की अध्यक्षता वाली एक समिति ने किया है, जिसमें सर्वश्री हेमंत शेष, मुरलीधर वैष्णव, अलका सरावगी, ओम थानवी और फाउंडेशन के निदेशक श्री सुरेश ऋतुपर्ण शामिल थे। ☐

लोकार्पण संपन्न

सुप्रसिद्ध साहित्यिक संस्था साहित्य प्रवाह ट्रस्ट, वडोदरा तथा फैकल्टी ऑफ सोशल वर्क्स, महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, वडोदरा के संयुक्त तत्त्वावधान में सोशल वर्क्स के सभागार में श्रीमती नलिनी पुरोहित द्वारा सृजित दो कृतियों का लोकार्पण समारोह आयोजित हुआ। गुजराती और हिंदी भाषा की प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती नलिनी पुरोहित की चौथी गुजराती कृति 'सरल रामायण' का लोकार्पण सर्वश्री परिमल व्यास, महाराजा सयाजीराव द्वारा किया गया। सर्वश्री परिमल व्यास, नलिनी पुरोहित, हरीश व्यास ने अपने विचार व्यक्त किए। ☐

साहित्यिक क्षति

श्री श्यामसुंदर आचार्य नहीं रहे

११ मई को प्रसिद्ध पत्रकार श्री श्यामसुंदर आचार्य का निधन हो गया। उनका जन्म ७ जुलाई, १९३८ को हुआ था। वर्ष १९५७-५८ से पत्रकारिता में सक्रिय हुए संवाददाता हिंदुस्थान समाचार (संवाद समिति); ब्यूरो प्रमुख हिंदुस्थान समाचार, कलकत्ता, ब्यूरो प्रमुख हिंदुस्थान समाचार, जयपुर; उपमहाप्रबंधक एवं संपादक हिंदुस्थान समाचार, नई दिल्ली; विशेष संवाददाता, दैनिक राष्ट्रदूत, नई दिल्ली; समाचार संपादक, जनसत्ता, नई दिल्ली; स्थानीय संपादक, नवभारत टाइम्स, जयपुर रहे। उनके विभिन्न लेख, कहानी, फीचर एवं कृतियाँ प्रकाशित हुईं। उत्कृष्ट पत्रकारिता के लिए उन्हें 'माणक पुरस्कार', 'तिलक पत्रकारिता पुरस्कार', कलकत्ता एवं राजस्थान के अन्य प्रतिष्ठित पुरस्कार प्राप्त हुए।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से दिवंगत आत्मा को भावभीनी श्रद्धांजलि।

श्रेष्ठ बाल साहित्य

• संपूर्ण बाल कहानियाँ (दो भाग)	विष्णु प्रभाकर	1200.00
• रोचक बाल कथाएँ	श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी	300.00
• रंग-बिरंगी कहानियाँ	रस्किन बॉण्ड	250.00
• परियों के देश में	रस्किन बॉण्ड	250.00
• श्रेष्ठ बाल कहानियाँ	सुधा मूर्ति	300.00
• पंचतंत्र की लोकप्रिय कहानियाँ	महेश दत्त शर्मा	350.00
• हितोपदेश की लोकप्रिय कहानियाँ	महेश दत्त शर्मा	350.00
• लोकप्रिय जातक कथाएँ	महेश दत्त शर्मा	350.00
• नानी का घर और किस्से गोगापुर के	प्रकाश मनु	400.00
• 201 प्रेरक नीति कथाएँ	शिवकुमार गोयल	300.00
• 222 शिक्षाप्रद बोध कथाएँ	शिवकुमार गोयल	400.00
• जंगल बुक	रुडयार्ड किपलिंग	250.00
• पंचतंत्र की कहानियाँ	श्यामजी वर्मा	300.00
• हितोपदेश की कहानियाँ	श्यामजी वर्मा	300.00
• भागवत की कथाएँ	मनुहरि पाठक	400.00
• रामायण की कहानियाँ	हरीश शर्मा	400.00
• महाभारत की कहानियाँ	हरीश शर्मा	400.00
• वेदों की कथाएँ	हरीश शर्मा	400.00
• पुराणों की कथाएँ	हरीश शर्मा	400.00
• उपनिषदों की कथाएँ	हरीश शर्मा	400.00
• चुनी हुई बाल कहानियाँ (दो भाग)	सं. रोहिताश्व अस्थाना	800.00
• चुने हुए बाल एकांकी (दो भाग)	सं. रोहिताश्व अस्थाना	800.00
• सिंहासन बत्तीसी	मुकेश 'नादान'	250.00
• पौराणिक बाल कथाएँ	मुकेश 'नादान'	300.00
• मोगली के कारनामे	मुकेश 'नादान'	300.00
• दादा-दादी की कहानियाँ	मुकेश 'नादान'	300.00
• चरित्र निर्माण की कहानियाँ	मुकेश 'नादान'	400.00
• आचार्य चाणक्य की कहानियाँ	वैदेह	300.00
• पिनोकियो तथा अन्य कहानियाँ	रमन कुमार	300.00
• रॉबिनहुड की कहानियाँ	अजय राज	300.00
• अरेबियन नाइट्स की कहानियाँ	स्वप्नदर्शी	300.00
• हातिमताई की तिलिस्मी कहानियाँ	वैभव विप्लव	300.00
• नन्हे-मुन्नो सुनो कहानी	श्रीनिवास वत्स	400.00
• हमारे बहादुर बच्चे	रजनीकांत शुक्ल	250.00
• नाना-नानी की कहानियाँ	निरुपमा	300.00
• बीरबल की कहानियाँ	निरुपमा	300.00
• तेनालीराम की कथाएँ	राजेश गुप्ता	300.00
• गुलिवर की यात्राएँ	सचिन कुमार	300.00
• शेखचिल्ली के किस्से	संदीप सुशील	300.00
• विक्रम-वेताल की कथाएँ	पूजा शर्मा	300.00
• सिंदबाद की समुद्री यात्रा	हर्षिता	250.00
• चंदामामा की कहानियाँ	स्निग्धा कुमारी	300.00
• वीर शिवाजी की कहानियाँ	अजेय कुमार	250.00
• जंगल की कहानियाँ	नीलकंठ कुंदन	250.00
• महापुरुषों की शिक्षाप्रद बालकथाएँ	सुरेंद्र सिंह नेगी	300.00
• अलीबाबा और चालीस चोर	प्रसून प्रिय	300.00

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001:2015 प्रकाशक
हेल्पलाइन नं. 7827007777